१

ग्रीष्म का मध्याह्न था। सूर्य आकाश मण्डल में पूरी तेजी के साथ चमक रहा था। उसकी किरणें प्रकृति के कण-कण को डस रही थीं। उष्णता के भय से वायु भी किसी शीतल छाँह में बैठकर दोपहरी व्यतीत कर रही थी परन्तु दो अश्वारोही क्षिप्रगति से आगे बढ़रहे थे। उन्हें न भूख की चिंता थी न प्यास की। नदी नालों को पार करते, भयानक तथा बीहड़ बनों में प्रवेश करते और पुनः मैदान में आ जाते। कोई भी बिघ्न-बाधा उनकी गति को विराम न दे पाती। अश्वों की टापों की ध्वनि वन्य पशुओं को चैतन्य कर देती परन्तु जितनी देर में वे गर्दन उठाकर देखते उतनी देर में वे उनकी दृष्टि के बाहर जा चुके होते। विश्राम रहित यात्रा समाप्त करके उन अश्वारोहियों ने ईडर नगर में प्रवेश किया। सूर्यास्त हो चुका था। गगन मण्डल की अरुणिमा शनैः शनैः कालिमा में परिणत हो रही थी। आकाश में एक दो तारे भी दृष्टिगोचर होने लगे थे। विहंगवृन्द भोजन की खोज में सम्पूर्ण दिवस अपने स्वजनों से विलग रहने के कारण अनुभूत दुख-सुखको एक ही सांस में कह डालना चाहते थे। उनका कलरव अपनी चरमसीमा पर था। नगर निवासी भी अपने–अपने गृहों को पहुँच चुके थे। कार्य विशेष के कारण दो एक व्यक्ति इधर-उधर आते-जाते दिखाई दे जाते थे। अश्वारोही क्षीण प्रकाश में नगर की शोभा निरखते हुये मन्दगति से अग्रसर होने लगे। दूर से ही एक सैनिक ने इन लोगों को देख लिया। उसने आगे बढ़कर मार्ग अवरुद्ध करते हुये पूँछा–"आपलोग कौन हैं ?"

एक अश्वारोही ने उत्तर दिया–"हम राजपूत हैं ?"

"इसका संकेत तो आपलोगों की वेशभूषा से ही मिल रहा है परन्तु मेरे प्रश्न के लिये इतना संक्षिप्त उत्तर यथेष्ट नहीं।"

"हम मेवाड़ निवासी हैं।"

"ओह ! तो आपलोग मेवाड़ के राजपूत हैं। कहिये, यहां किस हेतु पधारे हैं ?"

"हमें राणा रायमल से मिलना है।"

"मेवाड़ निवासियों को बहुत दिनों पश्चात् स्मरण आया है राणा जी का।"

"आप कौन हैं ?

"मैं नगर रक्षक हूँ और राणा जी का कृपापात्र।"

"हूँ ! राणा जी से इस समय कहां भेंट होगी ?"

"किले में। आइये, चलिये।" कहकर नगररक्षक ने अपना अश्व बाईं ओर को मोड़ दिया। वे उसका अनुसरण करने लगे। नगर रक्षक ने अपने अश्व को बराबर लाते हुये प्रश्न किया—"क्या मेवाड़ में कोई विशेष घटना हो गई है ?"

"हाँ, यों ही कुछ साधारण सी।"

"फिर भी ?"

"उसका वर्णन इस समय मेरे लिये सम्भव नहीं है। हमलोग तीन दिन की दिन-रात यात्रा करके आ रहे हैं।"

"कोई बात नहीं।" कहकर नगररक्षक शान्त हो गया।

थोड़ी देर में ही असंख्य दीपों से प्रकासित गगन चुम्बी प्रासाद दृष्टिगोचार होने लगा। सहसा अश्वारोहियों की दृष्टि उठ गई और हृदय में आनन्द की लहर दौड़ गई। महल का द्वार कब आगया-इसका उन्हें आभास तब हुआ जब मार्गदर्शक ने उन्हें वहीं रुकने का संकेत किया और स्वयं सिंह द्वार से अन्दर प्रविष्ट हो गया।

दोनों अश्वारोहियों ने एक दूसरे की ओर देखा और क्लान्त चेहरों पर मुस्कान उसी प्रकार विकसित होकर लुप्त हो गई जिस प्रकार सजल मेघों के मध्य विद्युत चमक जाती है। प्रासाद की छटा देखते उनके नेत्र न अघा रहे थे। आवागमन लगभग बन्द था इससे उनकी एकाग्रता भी भंग नहीं हो पा रही थी। सहसा पीछे से किसी ने कन्धे

पर हाँथ रखकर कहा—राघव जी आप यहाँ कैसे ?

"ओह ! राणा जी।" कहकर दोनों नेप्रणाम किया।

आश्चर्य के भाव को कुछ क्षणों के लिये प्रसन्नता के गर्भ में छिपा कर राणा रायमल ने प्रणाम के प्रत्युत्तर में हांथ जोड़ दिये और प्रश्न किया—"मेवाड़ में सब कुशल तो है ?"

"मेवाड़ पर अवसाद के बादल मड़रा रहे हैं राणा जी।"

"क्यों, क्या हुआ ? राणा जी तो स्वस्थ हैं ?"

"वह तो स्वर्ग सिधार गये।" राघव जी के मन्द स्वर में व्यथा का आभास था।

"क्या राणा जी अब इस संसार में नहीं हैं ?

"नहीं।"

"लेकिन मेवाड़ पर यह बजूपात हुआ कब मुझे तो इसकी कोई सूचना भी नहीं मिली ?"

"इसी के लिये तो आपके पास आया हूँ।"

"अच्छा, आइये, अन्दर चलिये।" राणा जी का दोनों अनुसरण करने लगे।

महल विशाल था। स्थान-स्थान पर रक्षकगण उपस्थित थे जो राणा जी को मस्तक झुका-झुकाकर अभिवादन करते परन्तु राणा जी उस पर कोई ध्यान न देते। अनेक भागों को पार करते हुये राणा जी उन लोगों को एक कक्ष में ले गये और बैठाते हुये पूँछा—"क्या अस्वस्थ रहे राणा जी ?"

"अस्वस्थ तो कुछ विशेष नहीं रहे वह। हाँ, इधर कुछ दिनों से उन्हें उन्माद का रोग हो गया था। उनका मस्तिष्क कुछ विक्षिप्त सा रहने लगा था। प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में वह 'कामधेनु ताण्डव करिय' ही कहते थे।"

"'यह कामधेनु ताण्डव करिय' क्या है।

"इससे सम्बन्धित एक घटना इस प्रकार बताई जाती है कि एक दिन वह शिव मन्दिर में दर्शन करने जा रहे थे। उसी मन्दिर के सामने एक गाय, जिसकी मरणासन्नावस्था थी, रम्भा रही थी। उसकी उस दशा का राणा जी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि तब से वह 'कामधेनु ताण्डव करिय' कहने लगे।"

"तो क्या उनकी विक्षिप्तावस्था के लिये यही घटना उत्तरदायी है ?"

"हां, उनका मस्तिष्क कुछ असाधारण अवश्य हो गया था इससे, परन्तु वह पूर्ण विक्षिप्त तो तबसे हुए जब से एक ज्योतिषी ने उन्हें बताया कि उनकी मृत्यु एक चारण के हाथ होगी। यह सुनते ही उन्होंने एक-एक चारण को राज्य से निष्कासित करा दिया। इस कार्य ने उन्हें पूर्ण विक्षिप्त बना दिया। सदैव उन्हें भय बना रहता था।"

"महान दुख की बात है कि उनके प्राण उनकी विक्षिप्तता ने ले लिये।"

"प्राण मानसिक विक्षिप्तता ने नहीं वरन् उदय सिंह ने लिये हैं।"

"क्या कहा, ऊदा ने उनके प्राण लिये हैं।"

"जी हां।"

"कैसे ?"

"राणा जी को मानसिक अशान्ति तो बनी ही रहती थी। इस अशान्तावस्था के कारण वह महल में एक स्थान से दूसरे स्थान को चक्कर लगाया करते थे। इधर कुछ दिनों से वह संध्या समय कुम्भलगढ़ के मामादेव के मन्दिर में जाने लगे थे। सम्भवतः उन्हें वहां कुछ शान्ति मिल जाती थी, क्योंकि आवश्यक से आवश्यक कार्य छोड़कर भी वह वहां अवश्य जाते थे। वहीं एक जलाशय है। उसी की सीढ़ियों पर बैठकर वह लहरों की गति देखा करते थे। आज छठा दिन है। संध्या को वह वहां बैठे थे। उदय सिंह वहां चुपचाप पहुंचे और कटार राणा जी के सीने के पार कर दी। प्रहार इतना तीव्र था कि राणा जी वहीं धराशायी हो गये और तत्काल उनके प्राण पखेरु उड़

गये ।" कहकर राघवजी अपने अश्रुपूरित नेत्रों के कोनों को पोछने लगे ।

राणा जी ने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये कहा—"पुत्र द्वारा पिता की हत्या । ऐसा जघन्य पाप आजतक सिसोदिया वंश में किसी ने न किया था । " राणा जी कुछ रुककर पुनः कहने लगे—"ऊदा के आचरणों को देखकर पहले ही मुझे आभास हो गया था कि ऊदा कृतघ्न है । पता नहीं किस समय क्या कर बैठे । अन्ततोगत्वा राणा जी की हत्या के रूप में उसकी कृतघ्नता का चरम रूप प्रगट ही हो गया ।"

"इस हत्या को ही उसकी कृतघ्नता का चरम रूप न समझिये । इसके पश्चात् उसने मेवाड़ निवासियों पर जो जो अत्याचार किये हैं, वे सब वर्णनातीत हैं । बस इसी से अनुमान कर लीजिये कि मेवाड़ राज्य का एक एक बच्चा उन्हें नरहन्ता और हत्यारे आदि शब्दों से सम्बोधित करता है । जनता में विरोधाग्नि धधक रही है । कोई भी उसका मुँह तक देखना पसन्द नहीं करता जनशक्ति उसके नियन्त्रण के बाहर हो रही हैं । पता नहीं किस क्षण मेवाड़ की जनता क्या कर बैठे । सर्व प्रथम तो उन्होंने सरदारों को अपनी ओर मिलाने का भरसक प्रयास किया परन्तु जब इसमें उन्हें सफलता न मिली और विरोध बढ़ता ही गया तो पड़ोसी राजाओं से सहायता की याचना की । इसके लिये उन्हें साँभर, अजमेर तथा आस पास के कई परगने देने पड़े हैं ।"

"तब तो ऐसा प्रतीत होता है कि एक दिन वह मेवाड़ के अस्तित्व को नष्ट किये बिना न रहेगा ।"

"इसी भय के निवारणार्थ तो हम लोग आप के पास आये हैं ।"

"क्या तात्पर्य ?"

"मातृभूमि आप को पुकार रही है । स्वतन्त्रता आप की ओर दृष्टि लगाये है । प्रत्येक मेवाड़ निवासी आप का साथ देने को तैयार है । आप चलिये और मेवाड़ के गौरव को धूल धूसरित होने से पूर्व ही बचा लीजिये ।"

राणा रायमल ने व्यंग्यात्मक हँसी के साथ कहा—"जिस भूमि से अपमानित होकर निकाला जाऊँ, उसी पर पुनः पैर रखना—क्या मेरे लिये लज्जास्पद बात नहीं है ? क्या आप लोगों को स्मरण नहीं कि राणा जी ने मुझे राज्य से इसलिये निस्कासित किया था कि मैंने उनके आसन ग्रहण करने से पूर्व सिर पर तीन बार खड्ग घुमाने का कारण पूँछा था। इतनी सी बात के लिये इतने बड़े दण्ड को क्या मैं जीवन पर्यन्त भूल सकता हूँ ?"

"आपका कथन सत्य है। आप के स्थान पर जो भी स्वाभिमानी राजपूत होता वह भी यही कहता, परन्तु क्या आप अपनी मातृभूमि के अपमान से अपने अपमान को अधिक महत्व देते हैं।" जो मेवाड़ के नर-नारी, बाल-बृद्ध अभी तक स्वतन्त्रता में सांस ले रहे हैं, क्या उन्हें आप दासता की बेड़ियों में बंधा देखना चाहते हैं ? क्या अपमान को आप कर्तव्य से अधिक महत्व दे रहे हैं ?"

राणा जी मौन थे।

राघव जी अत्यन्त चतुर राजपूत थे। वह अवसर से लाभ उठाना भलीभांति जानते थे। राणा जी की मानसिक अवस्था पर उनकी तीव्र दृष्टि थी। वह भली भांति समझ रहे थे कि इस समय राणा जी के मस्तिष्क में कर्तव्याकर्तव्य का संघर्ष मचा हुआ है। राणा जी की संघर्ष पूर्ण मानसिक अवस्था से लाभ उठाने की दृष्टि से वह पुन: कहने लगे—"क्या भगवान रामने माता कैकई द्वारा राज्य से निष्काषित किये जाने में अपना अपमान समझा था ? और फिर राणा जी ने आपके वहां से चले आने के बाद अपने इस कार्य पर कई बार पश्चाताप भी प्रकट किया परन्तु छूटा हुआ तीर फिर कभी तरकस में नहीं आता आपका भी वापस आना असम्भव था, इसलिये वे चाहकर भी आपको न बुला सके, परन्तु अब तो परिस्थिति पूर्णतया बदल चुकी है। आपका धर्म आपको मेवाड़ वापस चलने के लिये पुकार रहा है.........।"

"बस, राघव जी बस ! बहुत कह चुके। अब आगे कुछ न कहिये।

मैं मेवाड़ चलूँगा और ऊदा को उसकी कृतघ्नता का मजा चखाऊँगा। मैं आपलोगों की आशा पर तुषारापात नहीं होने दूँगा। आपने मेरे नेत्र खोल दिये हैं। मुझे अपने कर्तव्य का ज्ञान हो गया है। मैं अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये सब कुछ सहूँगा—सबकुछ सहूँगा।"

राणा जी सर्व प्रथम तो अत्यन्त उत्तेजित स्वर में बोले, परन्तु ज्यों-ज्यों बोलते गये त्यों-त्यों उनका स्वर मन्द होता गया। राघव को अपने प्रयास में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। सफलता ने आनन्द की सृष्टि की। आनन्दातिरेक से उनका मन-मयूर नर्तन करने लगा। आनन्द की लहर स्वर में परिणत होकर राघव जी के मुँह से निःसृत हुई "राणा जी की' अन्य साथी ने साथ दिया 'जय हो।"

२

राणा कुम्भा द्वारा निष्कासित किये जाने पर रायमल अपनी ससुराल ईडर चले गये और वहीं रहने लगे। अपने मृदुल स्वभाव तथा सहृदयपूर्ण व्यवहार के कारण आपने ईडर में जन प्रियता प्राप्त करली थी। यहाँ निवास करते हुये उन्हें कई वर्ष हो गये थे। इस बीच में आपने ऐसे अनेक वीरतापूर्ण कार्य किये जिनसे ईडर की जनता पर आपकी वीरता की धाक जम गई। राघवजी के आगमन से नगर की सम्पूर्ण जनता अवगत हो गई थी। रायमल शीघ्रातिशीघ्र मेवाड़ के लिये कूँच करना चाहते थे। प्रातः होते ही उनके प्रस्थान की तैयारियाँ होने लगी। हितैषी जन आते और प्रस्थान का कारण ज्ञात होते ही राणा के साथ चलने को प्रस्तुत हो जाते। सम्पूर्ण दिवस तैयारियाँ होती रहीं। राघवजी तथा अन्य सरदार भी दिनभर विश्राम करते रहे। भोजनोपरान्त एक-आध बार मेवाड़ की स्थिति को और

अधिक स्पष्ट करने के लिये राघवजी की राणा जी से वार्तालाप भी हुई। दिन कब समाप्त हुआ ज्ञात ही न हो सका। संध्या समय ईडर की जनता ने असंख्य दीपक जलाकर राणा रायमल जी के प्रति अपना स्नेह प्रदर्शन किया। सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही थोड़ी सेना सहित रायमल ने कूँच कर दिया।

उदयसिंह के कुकृत्यों से जनता उसके विरूद्ध हो गई थी। वह अपने प्रिय शासक राणा कुम्भा के हत्यारे को आंखों भी नहीं देखना चाहती थी। शनै: शनैः उदयसिंह के विरूद्ध वीर राजपूतों में विरोधाग्नि प्रज्वलित होने लगी। ज्यों-ज्यों उदयसिंह इस अग्नि को अत्याचारों द्वारा शान्त करने का प्रयास करते, त्यों-त्यों वह और भभकती, अन्ततः उसने एक सभा का रूप धारण किया। इस सभा में सर्व सम्मत से यही निश्चय किया गया कि ईडर से राणा रायमल को बुला कर मेवाड़ की रक्षा की जाय। उन्हें बुलाने के लिये राघव के साथ एक अन्य सैनिक को भेजा गया। राजपूत राणा के आगमन की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से करने लगे। उदयसिंह के विरुद्ध सभी सम्बद्ध तैयारियां कर ली गई थी। बस, यदि देर थी तो केवल राणा के आगमन की।

पिता के मृत्योपरान्त ऊदा ने दरबार के राजपूतों को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की। राजपूतों के हृदय में ऊदा के प्रति महान घृणा थी। पुत्र द्वारा पिता की हत्या वे महान पाप समझते थे। ऐसा हत्यारा कभी क्षमा का पात्र नहीं हो सकता। वे देश भक्त थे: कृतघ्न व्यक्ति की आधीनता स्वीकार करना उनके स्वभाव के प्रतिकूल था। ऊदा ने जब राजपूतों की प्रतिशोध की ज्वालाको शान्त करने में अपने व्यक्तिगत प्रयासों को असफल देखा तो सर्व प्रथम वह देवड़ा नामक सामन्त राजा के पास सहायतार्थ गया। देवड़ा अत्यन्त चतुर राजा था। ऊदा को विषम परिस्थितियों के चंगुल में फंसा हुआ देखकर उसने अवसर से लाभ उठाना चाहा और आबू की पहाड़ी

मांग ली। ऊदा ने आबू की पहाड़ी देकर देवड़ा की सहानुभूति प्राप्त की।

मेवाड़ के हाथ से आबू की पहाड़ी का निकल जाना राजपूतों के लिये असह्य था। उनकी प्रतिशोध की ज्वाला और अधिक भयकर हो गई। ऊदा को और अधिक सहायता की आवश्यकता प्रतीत हुई। वह जोधपुर के सामन्त जोधाराव के पास सहायतार्थ गये। जोधाराव ने सांभर, अजमेर तथा अन्य कई परगनों के बदले में सहायता देना स्वीकार किया। ज्यों-ज्यों ऊदा सहायतार्थ अन्य राजाओं के समक्ष हांथ फैलाते गये त्यों-त्यों मेवाड़ का एक-एक भाग परतन्त्र होता गया। अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तु स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये राजपूत सरदारों ने आगे बढ़कर बृह्मा को खेड़ा नामक स्थान पर रायमल का स्वागत किया। ऊदा भी इस समाचार से अनभिज्ञ न रह सके। वह अपने सैनिकों सहित आगे बढ़े। जावर नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का खूब डट कर मुकाबला हुआ। ऊदा की खरीदी हुई मित्रता आवश्यकता के समय साथ न दे सकी। यद्यपि ऊदा की सेना में अधिक सैनिक थे, तथापि स्वतन्त्रता की भावना से प्रेरित राणा रायमल के मुट्ठी भर सैनिकों का वह सामना न कर सकी और ऊदा को मुह की खानी पड़ी। ऊदा सेना सहित जावर के मैदान से भाग खड़ा हुआ। रायमल ने उसका पीछा किया। दाड़िमपुर के पास पुन: मुठ-भेड़ हुई। इसमें भी ऊदा को भारी क्षति उठानी पड़ी। जावर और दाड़िमपुर के दोनों युद्धों में विजय प्राप्त करने के पश्चात् रायमल की सेनाओं ने जावी और पानगढ़ नामक दोनों स्थानों पर पुन: क्रमश: ऊदा को परास्त किया। रायमल की सेना को निरन्तर विजय प्राप्त हो रही थी। उनका उत्साह दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा था। वे द्रुतगति से अग्रसर हो रहे थे। ऊदा की लगातार पराजय ने सैनिकों को निरुत्साहित कर दिया। उनका ऊदा पर से विश्वास समाप्त हो गया। वे आ-आ कर रायमल की सेना में मिलने लगे।

ऊदा अपने को शक्तिहीन पाकर चित्तौड़ छोड़कर भाग खड़ा हुआ और कुंभलगढ़ में जा पहुंचा। मेवाड़ के राजपूत सरदार तो उसके रक्त के प्यासे थे ही। वे भला उसे कब छोड़ने वाले थे। यहाँ भी उसे चैन न लेने दी। अन्ततोगत्वा उसे मेवाड़ त्यागना ही पड़ा।

जब मेवाड़ पूर्णतया ऊदा के हाथों से मुक्त हो गया तब राजपूत सरदारों ने चैन की सांस ली। मेवाड़ को सदैव के लिए स्वतन्त्र समझकर निवासियों ने प्रसन्नता सूचक अनेक कार्यक्रमों की योजना की। जन-समूह में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। घर-घर बधाइयाँ बजने लगी। मङ्गल-गान से सम्पूर्ण वातावरण गुञ्जायमान हो उठा। उस रात्रि का असंख्य दीपकों से स्वागत किया गया। सर्वत्र राणा रायमल ही चर्चा के विषय थे। उन्हीं की वीरता का बखान हो रहा था। उनका प्रत्येक क्रिया-कलाप प्रसन्नतापूर्ण क्रियाओं से सिंचित था। अन्त में राणा रायमल का राज्याभिषेक करके ही मेवाड़ के राजपूत सरदारों ने अपने आनन्द का चरमस्वरूप व्यक्त किया। 'महाराणा जी की जय हो' से सम्पूर्ण वायु मण्डल ध्वनित हो उठा।

३

कुम्भलगढ़ से खदेड़े जाने पर ऊदा की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई। उसे चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार प्रतीत होने लगा। एक क्षण के लिए वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया। सभी सुहृदजन शत्रु प्रतीत होने लगे। जिनसे संकट के समय सहायता की आशा थी वे भी विश्वासघाती सिद्ध हो चुके थे। निराशा के अथाह सागर में निमग्न ऊदा ने अपने शत्रुओं की ओर दृष्टि उठाई। कुछ क्षणों में ही समस्त शत्रु एक-एक करके मस्तिष्क में आने लगे। यदि कोई उसके मस्तिष्क

में टिका तो वह था माँडू का सुलतान गयासशाह। सुलतान की स्मृति ने निराशा के अन्धकार में बिजली का कार्य किया। उसके क्षणिक किन्तु तीक्ष्ण प्रकाश ने ऊदा को मार्ग दिखाया। ऊदा प्रसन्नता से उछल पड़ा और अपने नौजवान पुत्रों सिहेशमल और सूरजमल से कहा—"शीघ्र तैयार हो जाओ, अभी मांडू के लिए कूँच करना है।"

"क्यों, माँडू को किसलिए कूँच करना है?" सिहेशमल ने प्रश्न किया।

"मांडू ही एक ऐसा स्थान है जहाँ हमें शरण मिल सकती है।" ऊदा ने समझाते हुए कहा।

"तो आप शरण लेने के लिये माँडू के सुलतान गयासशाह के यहाँ चलना चाहते हैं?" सूरजमल ने आश्चर्य सूचक स्वर में प्रश्न किया।

"हाँ, आपत्ति के समय जो हमारी सहायता कर सके उसके यहाँ जाने में क्या हानि?"

"वह तो हमारा प्राचीन शत्रु है। सिसोदिया वंश के बप्पारावल के समय से ही सुलतान वंश के सम्राटों से शत्रुता चली आ रही है।"

"तुम्हारा कथन उचित है, परन्तु सुलतान गयासशाह मेवाड़ के वर्तमान शासक को शत्रु समझेगा, मुझे नहीं।"

"क्यों, क्या हम सिसोदिया वंश के नहीं हैं?"

"हैं, परन्तु शासक-शासक को शत्रु मानता है। शासक-वंश से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति को नहीं।"

"यह आपका भ्रम है, पिताजी। क्या सांप के बच्चे जहरीले नहीं होते? राजनीति सम्पूर्ण राजवंश को अपना शत्रु मानती है।"

"मैं तुम्हारी बात से सहमत हूँ, लेकिन इसमें मेरी एक चाल है।"

"वह क्या?"

"समय आने पर स्वत: मालूम हो जायेगी।"

"तो क्या हमलोगों पर आपको विश्वास नहीं ?"

"ऐसा कैसे हो सकता है । भला मैं ही अपने पुत्रों पर विश्वास न करूँगा !"

"हमलोगों से बात गुप्त रखने का तो यही तात्पर्य होता है ।"

सूरजमल की बात सुनकर ऊदा असमञ्जस में पड़ गया। उसकी शंकालु प्रवृत्ति थी । स्वयं विश्वासघाती भला कैसे किसी पर विश्वास कर सकता था । यद्यपि अपने पुत्रों पर विश्वास न करने का कोई कारण न था तथापि उन्हें भी शंका पूर्ण दृष्टि से देखता था । अपनी वर्तमान असहायावस्था पर विचार करने पर उसे अपने दोनों पुत्र ही सहायक प्रतीत हुए । अपना मन्तव्य गुप्त रखकर वह स्वयं उनके अविश्वास का पात्र न बनना चाहता था, अतएव ऊदा ने कृत्रिम हास्य बिखेरते हुए कहा—"वास्तव में बात यह है कि दीवालों के भी कान होते हैं ....।"

"परन्तु पिता जी यह तो जङ्गल है । जङ्गल में दीवाल कहाँ ?" सिंहेशमल ने आश्चर्य प्रकट किया ।

"यह एक कहावत है। इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि दीवाल के कान होते हैं । रहस्यपूर्ण बातों के खुल जाने पर उनका महत्व समाप्त हो जाता है । अतएव उन्हें जितना ही गुप्त रखा जाय उतना ही हितकर होता है ।"

"खैर, पिता जी आप कहिये जो कहना चाहते थे । सिंहेश तो यों ही बीच में टाँग अड़ा देता है ।" सूरज ने सिंहेश की ओर कड़ी दृष्टि उठाते हुये कहा ।

"मैं अपने दोनों शत्रुओं को आपस में लड़ाना चाहता हूँ ।" ऊदा ने गम्भीर होकर कहा ।

दोनों शत्रुओं से आपका तात्पर्य ?"

"रायमल और सुलतान गयासशाह दोनों ही हमारे शत्रु हैं । मैं

चाहता हूँ कि सुलतान को मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए उत्साहित करूँ। सुलतान की मैं सहायता करूँगा और रायमल को परास्त करके पुनः राज्य प्राप्त कर लूँगा।"

"ऐसा करके क्या आप मेवाड़ को परतन्त्र देखना चाहते हैं?"

"इसमें मेवाड़ के परतन्त्र होने की कौन सी बात है? रायमल के परास्त होने के पश्चात् मेवाड़ के शासन की बागडोर तो मेरे हांथ में होगी और मैं मेवाड़ की गद्दी पर बैठूंगा।"

"फिर भी आपको सुलतान की आधीनता तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी।"

"आधीनता स्वीकार करने में क्या हानि? जो कुछ वार्षिक चाहेगा, मैं उसे दे दिया करूंगा।"

"अच्छा, मान लीजिये यदि मेवाड़ पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् सुलतान ने स्वयं शासन करना चाहा तो फिर आप क्या करेंगे?"

"ऐसा होना असम्भव हैं।" ऊदा ने बेचैनी से उत्तर दिया।

"पिता जी! संसार में कुछ भी असम्भव नहीं। सुलतान बड़ा ही धूर्त है। किस समय वह क्या सोचता तथा क्या करता है—इसे उसके बिश्वासपात्र सेनापति भी नहीं जान पाते।" सूरजमल ने विश्वासपूर्वक कहा।

"यदि उसने ऐसा किया भी तो रायमल के हाथ में तो मेवाड़ के शासन की बागडोर नहीं रहने पायेगी।"

"तो क्या आप रायमल की अपेक्षा सुलतान के हाथ में मेवाड़ का चला जाना श्रेष्ठ समझते हैं?"

"सुलतान के हाथ में मेवाड़ का चला जाना ठीक तो नहीं है, परन्तु मैं रायमल को मेवाड़ की गद्दी पर बैठ कर शासन करना सहन नहीं कर सकता।"

सूरजमल सोचने लगा। 'पिता जी प्रतिशोध की भावना से आन्दोलित हैं। मेवाड़ के हित-अहित की बात सोच सकना इस समय उनके बस की बात नहीं है। उनकी इस योजना द्वारा मेवाड़ पतन अवश्यम्भावी है।' ऊदा ने सूरजमल की विचारधारा को भंग करते हुए कहा—"क्या सोच रहे हो, सूरज ?"

"मैं सोच रहा हूं कि पिता जी यदि इसके अतिरिक्त रायमल को परास्त करने का कोई अन्य मार्ग निकल आवे तो अधिक श्रेष्ठकर होगा।"

"बेटा ! मैं इस बिषय पर ही कई दिनों से विचार कर रहा हूं. परन्तु अन्य कोई मार्ग दृष्टिगत नहीं होता।" ऊदा ने उड़ती हुई दृष्टि सूरज पर डाल कर पुनः कहना आरम्भ किया—"और फिर क्या मैं मेवाड़ का शासन अपने लिये प्राप्त करना चाहता हूँ ?"

"तो फिर किसके लिये ?" औत्सुक्यपूर्ण स्वर में सूरज ने प्रश्न किया।

"यह तो सब तुम्हारे लिये है। मेरी अब कोई अभिलाषा नहीं रह गई। यदि कोई आकांक्षा शेष है भी तो यही कि तुम्हें मेवाड़ पर शासन करते हुए देखूँ।"

ऊदा की इस बात ने सूरजमल के मन में संघर्ष उत्पन्न कर दिया। एक ओर शासक बनने की कामना पिता की योजनानुसार आचरण करने को बाध्य कर रही थी और दूसरी ओर मातृभूमि की परतन्त्रावस्था की कल्पनामात्र उसके पूर्व विचारों को नष्ट करने का असफल प्रयास कर रही थी। ऊदा को सूरज की मानसिक स्थिति का तनिक भी ज्ञान न था। वह सोच रहा था कि सम्भवतः उसकी बात सूरज को उचित प्रतीत हुई। औचित्य को और अधिक पुष्ट करने के अभिप्राय से ऊदा ने कहा—"और फिर यह तो कल्पनामात्र है कि सुलतान मेवाड़ पर शासन करेगा। सब बातें तो पहले ही सुलतान से निश्चित करली जायेंगी।"

ऊदा का तीर निशाने पर लगा। सूरज के संघर्षपूर्ण विचारों में विराम लग गया। कामना की विजय हुई। पिता के विचारों का समर्थन करते हुए सूरज ने कहा—"तो फिर सुलतान से मिलने कब चलियेगा?"

"शुभ कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये और फिर इस जंगल में हम लोग कब तक गुप्तवास करते रहेंगे?"

"तब तो शीघ्र ही यहाँ से चल देना चाहिये।"

"मुझे भी तुम्हारा विचार उचित प्रतीत होता है।" पुत्र की बात का समर्थन करते हुए ऊदा ने कहा।

सूरज वहाँ से उठा और अन्य लोगों को तैयार होने का आदेश दिया। समस्त सामान गाड़ियों में भरवा लिया गया। कुछ समयोपरान्त अश्वों की एक लम्बी कतार मांडू की ओर अग्रसर होती हुई दृष्टिगोचर होने लगी।

———

४

सुलतान गयासशाह का दरबार लगा हुआ था। अनेक वीर सरदार दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे। भादों का महीना था। मेघ गर्जना कर रहे थे। कभी-कभी विद्युत तड़प कर अपने अस्तित्व का आभास करा देती थी। सुलतान मदिरा के मद में मस्त संगीत स्वर लहरी का रसास्वादन कर रहा था। दरबार के मध्य नृत्य द्रुतगति से चल रहा था। नर्तकी का अंग संचालन इतना मोहक था कि सभी सरदार झूम रहे थे। समस्त वातावरण रसमय था। यह सरसता कभी कभी हास्य के रूप में प्रगट हो जाती, परन्तु सुलतान के भय से यह हास्य कहकहों का रूप न धारण करने पाता। उसी समय एक सरदार ने

आगे बढ़ कर सुलतान का अभिवादन किया परन्तु सुलतान मदिरा के वश में इतना अधिक था कि उसके नेत्र किसी को नहीं देख रहे थे। पास ही बैठे वजीर ने प्रश्न किया—"कहो, बादशाह सलामत की खिदमत में क्या अर्ज करना चाहते हो?"

"हुजूर, मेवाड़ के सुलतान ऊदयसिंह अपने बेटों के साथ तशरीफ लाये हैं।"

"मेवाड़ का राजपूत सुलतान और मांडू के दरबार में! ऐसा नामुमकिन है।" वजीर ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"अगर हुजूर को यकीन न हो रहा हो तो दरबार में ही पेश करने का हुक्म दें।"

"नहीं, उन्हें दरबार में इस वक्त पेश करने की जरूरत नहीं।" सुलतान पर दृष्टि डालते हुए वजीर ने कहा—"चलो मैं खुद ही चल कर देखता हूँ।"

दरबार का प्रत्येक कार्यक्रम सरदार के आने से सहसा बन्द हो गया था। सभी एकाग्र चित्त होकर वार्तालाप सुनने लगे थे। वजीर के दरबार से जाने पर पुनः संगीत की स्वर लहरी प्रवाहित होने लगी। बाहर आकर वजीर ने ऊदा को खड़ा देखा तो सर्वप्रथम उसे विश्वास ही न हुआ, परन्तु ध्यान से देखने पर विश्वास हो गया कि यह ऊदा ही है। आगे बढ़ कर आश्चर्य प्रगट करते हुए वजीर ने कहा—"आप इस हालत में यहाँ?

"हाँ, कुछ आवश्यकता ही ऐसी आ पड़ी।" ऊदा ने उत्तर दिया।
"आने के पहिले कम से कम इत्तला तो करवा दी होती।"

"परिस्थिति ही अचानक ऐसी आ गई कि मैं अपना आगमन सुलतान को सूचित न कर सका।"

"खैर कोई बात नहीं आइये, आप महल में तशरीफ ले चलिये।"

ऊदा तथा उनके दोनों राजकुमारों को वजीर साथ लेकर महल की ओर चल दिया। अतिथियों के लिए प्रत्येक सुविधा का प्रबन्ध कर दिया गया। बहुत दिनों के बाद उन लोगों को आराम करने को मिला था। सूरज के अतिरिक्त दोनों लोग दीर्घ-कालीन यात्रा से क्लान्त होने के कारण निद्रा में निमग्न हो गये। महल नदी के किनारे था, अतएव शीतल मन्द वायु कक्ष के परिव्याप्त सुगन्धित वातावरण को तीव्रतर बना रहीं थीं। सूरज भी निद्रा के आक्रमण से अपनी रक्षा न कर सका।

दूसरे दिन मध्यान्ह के पूर्व सुलतान ने महल के उस भाग में प्रवेश किया जिस भाग में अतिथि ठहराये गये थे। सुलतान को आता हुआ देख कर सभी उठ खड़े हुये।

ऊदा तो आगे स्वागतार्थ लपका। सुलतान ने भी उत्साहित होकर होकर ऊदा की आत्मीयता का स्वागत किया। दोनों लोग इस प्रकार मिले जैसे बहुत दिनों के बिछुड़े प्रेमी हों। सुलतान ने ऊदा को अपने समक्ष बैठाते हुए पूछा—"कहिये उदयसिंह जी राणा जी तो मजे में हैं?"

"राणा जी अब कहां हैं? वह तो स्वर्ग सिधार गये।"

"कब?"

"अभी कुछ ही दिन पूर्व। क्या आपको खबर नहीं?"

"मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम। हाँ, यह जरूर सुना था कि वह कुछ दिनों से खोये-खोये रहते थे।"

"खोये-खोये से क्या, इधर उन्हें काफी मानसिक परेशानी रहती थी। मुझसे उनकी वह परेशानी न देखी गई। और एक शाम को मैंने उनका काम ....।" ऊदा ने अपने वक्षस्थल में कटार मारने का प्रदर्शन किया।

"वाह खूब सदर्यसिंह जी खूब ! क्या कमाल दिखाया आपने। जिस काम को बड़े-बड़े बहादुर न कर सके उसे आपने इतनी आसानी से कर डाला। दरअसल आपका यह काम काबिले तारीफ रहा।" ऊदा ने सुलतान के मुँह से जब अपनी प्रशंसा सुनी तो वह फूला न समाया और अपने अगल-बगल बैठे दोनों पुत्रों पर उड़ती हुई दृष्टि डाली। ऊदा कुछ क्षणों के लिए अपनी वास्तविक स्थिति भूल गया। प्रशंसा के पंखों पर बैठकर अन्य लोक में विचरण करने लगा। सुलतान और ऊदा दोनों को शान्त देखकर वजीर ने दृष्टि मिलाते हुये पूछा।—"अब तो मेवाड़ के राणा आप ही हैं ?"

"इसमें क्या शक है ? अब तो आप की पाँचो अंगली घी में हैं।" सुलतान ने समर्थन किया।

"इसी का तो दुख है।" ऊदा ने दुखी स्वर में कहा।

"किस बात का ?"

"जो मैंने स्वप्न देखा था वह पूरा न हो सका।"

"क्या हो गया ?"

"मेवाड़ की गद्दी न मिल सकी।"

"क्यों ?

"मेवाड़ की जनता ने मेरा साथ न दिया और मेरे विरुद्ध विद्रोह कर दिया।"

"बड़ी बेवकूफ है मेवाड़ की रियाया।" सुलतान ने साश्चर्य कहा।

"अब कुछ न पूछिये। मैंने जितना उसे खुश रखने का प्रयत्न किया वह उतनी ही मेरे विरुद्ध होती गई। आखिर कार वह रायमल से मिल गई और मेरे ऊपर एक दिन आक्रमण कर दिया। अनेक स्थानों पर युद्ध हुआ। जिन राजाओं का भरोसा था वे ऐन मौके पर धोखा दे गये। आखिरकार मुझे आपके दरबार में हाजिर होना पड़ा।"

"तो आपको रायमल्ल के सिपाहियों ने सल्तनत से मार भगाया ?" बजीर ने प्रश्न किया।

"मार भगाया नहीं, बल्कि मैं स्वयं अपने को शक्ति हीन समझकर आप के पास चला आया।"

"खैर बात एक ही है। अब फरमाइये आप मेरे पास किस सबब से तशरीफ लाये हैं ?" सुलतान ने पूछा।

"मैं मेवाड़ पर आक्रमण करने में आपकी सहायता चाहता हूँ।"

"मदद के बदले मुझे क्या हासिल होगा ?"

"आपका नाम रोशन होगा।" ऊदा ने प्रसन्न होकर कहा।

"मैं राजपूत सरदारों की मार से वाखूबी वाकिफ हूं। बिला वजह मैं अपने सिपाही उनसे नहीं कटाना चाहता।"

"मैं आपको अपना समझकर आपके पास आया हूं। मुझे पूरी आशा है कि आप मुझे निराश नहीं करेंगे।" ऊदा ने गिड़-गिड़ाकर कहा।

"मुझे आपकी मौजूदा हालत पर तरस आ रहा है, मगर मैं ऐसा कोई भी कदम नहीं उठाना चाहता जिसमें कोई फायदा न हो।"

"इस समय मेरे पास ये दोनों लड़के और एक लड़की छोड़कर कुछ भी नहीं है।"

"आप अपनी लड़की की शादी सुलतान के साथ क्यों नहीं कर देते ?" बजीर तत्क्षण बोल उठा।

"यह नहीं हो सकता। हम राजपूत अपनी बहिन सुलतान को कभी भी सौंपने को तैयार नहीं।" सूरज ने तपाक से कहा।

"तो फिर हम भी तुम्हारी मदद के लिये तैयार नहीं।" सुलतान ने अपना निर्णय व्यक्त कर दिया।

"अभी ये बच्चे हैं। इन्हें उचित-अनुचित का कुछ भी ज्ञान नहीं। आप उनकी बात का बुरा न मानिये। उस विषय पर विचार करने के लिये कुछ समय की आवश्यकता है। अभी आप सूरज के निर्णय को

अन्तिम निर्णय न समझिये।" बिगड़ती हुई स्थिति को सम्हालने की दृष्टि से ऊदा ने कहा।

"नहीं, पिता जी ! यह मेरा अन्तिम निर्णय है। मैं बहिन का ब्याह सुलतान के साथ कभी न होने दूँगा।" सूरज ने पुनः विरोध प्रदर्शन किया।

"हाँ, हाँ, तुम्हारा निर्णय सुन लिया गया। अभी तुम्हें संसार की बातों का ज्ञान नहीं। किस अवसर पर क्या करना चाहिये—इसका अनुभव प्राप्त करना कोई हँसी खेल नहीं है।"

सुलतान गयासशाह शान्ति पूर्वक पिता-पुत्र के मध्य होने वाले वार्तालाप को सुन रहे थे। उस समय वहां अपनी उपस्थिति अनावश्यक समझकर उठने का उपक्रम करते हुये कहा—"तो फिर मैं चलता हूँ। आप फैसला करके जवाब दे दीजियेगा।"

"हाँ, हाँ, मैं शीघ्र ही आपको अपना निर्णय सुनाऊँगा।" ऊदा ने सुलतान को आशा बँधाते हुये कहा।

सुलतान के साथ वजीर भी वहाँ से चल दिये। उनके चले जाने के पश्चात् उदयसिंह ने कहा—"मनुष्य को अवसर के अनुसार आचरण करना चाहिये। परिस्थिति के विपरीत आचरण कभी-कभी अभद्र हो जाता है।

"मैंने क्या अभद्रता की ?" सूरज ने प्रश्न किया।

"तुम्हें सुलतान की बात का इतने जोरदार शब्दों में विरोध नहीं करना चाहिये था।"

"तो आप मेरे विरोध को अभद्र कहते हैं और जो उस सुलतान ने एक राजपूत के सम्मान पर आक्रमण किया तो वह क्या था ?"

"वह कुछ भी कह सकता है। वे समर्थ हैं। शक्ति सम्पन्न हैं।

"शक्ति सम्पन्न होने का यह अर्थ तो नहीं होता कि किसी की प्रतिष्ठा को कुछ समझा ही न जाय।"

"संसार में शक्ति हीन की कोई प्रतिष्ठा नहीं होती।"

"सम्भव है कि शक्तिशाली की दृष्टि में ऐसा न हो परन्तु यह कहना कि शक्तिहीन प्रतिष्ठाहीन होता है अत्यन्तअनुचित है।"

"विपरीत परिस्थिति में तो हमें यही देखना है कि हम दूसरों की दृष्टि में क्या हैं।"

"यह ठीक है कि दूसरों की दृष्टि में हमारी वर्तमान स्थिति ठीक नहीं है. परन्तु एक सच्चा राजपूत अपने आत्मसम्मान के विरुद्ध एक भी बात सहन नहीं कर सकता। वह अपमानित होकर जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु का आलिगन करना श्रेष्ठ समझता है।"

"अभी राजनैतिक चालों को समझने की तुममें क्षमता नहीं है। चाल ऐसी चलनी चाहिये जिससे लाठी भी न टूटे और सांप भी मर जाय।"

"क्या तात्पर्य ?"

"इसका तात्पर्य यह है कि सुलतान की सहायता भी प्राप्त हो जाय और अपने सम्मान को क्षति भी न पहुँचे।"

"आपकी अभिलाषा की पूर्ति के लिये मैं सुलतान की अभिलाषा को पूरा न होने दूँगा।"

"भविष्य में क्या होगा उसकी चिन्ता अभी से करने में लाभ ?"

"वर्तमान समय में कोई कार्य ऐसा न हो जाय जिसके कारण भविष्य अन्धकारमय हो जाय इसलिये भविष्य की चिंता करनी ही पड़ती है।"

"तुम्हें इसकी चिता करने की आवश्यकता नहीं। मैं कोई भी पग बिना सोचे-समझे नहीं उठाता। तुम यह विश्वास रखो कि मैं जो कुछ करूँगा, वह होगा तुम्हारे भले के लिये ही।"

"मैं आपसे अन्तिमबार कहे देताहूँ कि आप जो चाहें करें परन्तु बहिन का व्याह सुलतान के साथ न होगा।" सूरज ने निश्चयात्मक स्वर में कहा।

"मैं अपने प्रत्येक निर्णय में तुम्हारी इस बात का ध्यान रखूँगा।

अच्छा ! अब तुम विश्रामकरो मैं। एक आवश्यक काम से थोड़ी देर के लिये बाहर जा रहा हूँ।" इतना कहकर ऊदा बाहर चला गया।

उदयसिंह अपने कक्ष में निकलकर किले के उस भाग में गये जहां सुलतान निवास करता था। सुलतान और वजीर दोनों बैठे हुये ऊदा की समस्या पर ही बिचार-विमर्ष कर रहे थे कि ऊदा को समक्ष आते हुये देखकर वजीर ने सुलतान से कहा—"अरे ! यह तो उदयसिंह जो सामने चले आ रहे हैं। इतनी जल्दी इनका आना कुछ अहमियत रखता है।"

"मेरा भी यही खयाल है। शायद उसी मसले पर कुछ और बात करना चाहते होंगे।" सुलतान ने बाहर की ओर देखते हुये कहा।

"काश ! सूरज साथ न आया होता।"

"तो क्या होता ?" सुलतान ने प्रश्न किया।

"आपके हरम में एक और बेगम बढ़ती।"

"अभी क्या कमी है। मुझे तो उनकी तादाद बताना भी मुश्किल है।"

"बेगम का सवाल नहीं है। मेवाड़ के सिसोदिया खानदान की राजपूत लड़की को बेगम बनाना बहुत बड़ी अहमियत रखता है।"

ऊदा इतने पास आचुके थे कि वह दोनों का वार्तालाप को सुन सकते थे। इसी भयसे वजीर ने वार्तालाप को वहीं समाप्त कर देना उचित समझा और ऊदा के स्वागतार्थ आगे बढ़ गया। ऊदा ने कक्ष में प्रवेश किया और सुलतान के समक्ष अपराधी की भांति उपस्थित होकर कहा—"सूरज ने जो कुछ भी आपकी शान के खिलाफ कहा, उसके लिये मैं माफी चाहता हूँ।"

"वाह। आप भी कमाल करते हैं। लड़कों की बातों का कहीं खयाल किया जाता है। वे तो नासमझ होते हैं। मैं तो आपके लड़कों को अपनी ही औलाद समझता हूँ।"

"यह तो आप की कृपा है। मेरी आप से प्रार्थना है कि मेरी समस्या पर आप एक बार फिर विचार करें।"

"आप के मसले पर मैंने काफी गौर फरमाया है और मैं आप की मदद करने को भी तैयार हूँ। .... ।"

"वसर्ते आप अपनी लड़की की शादी हमारे सुलतान के साथ कर दें।" बादशाह की बात को वजीर ने पूरा कर दिया।

"मुझे आप की शर्त मंजूर है, मगर शादी मेवाड़ फतह होने के बाद ही होगी।"

"यह नामुमकिन है। जब तक शादी नहीं हो जाती तब तक हम आपकी मदद करने के लिये कतई तैयार नहीं।" वजीर ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया।

वजीर की बात में आवश्यकता से अधिक कठोरता का आभास अनुभव कर के सुलतान ने कहा—"पहले और बाद में फरक क्या पड़ता है। जो काम होना हो उसे जल्दी ही कर डालना चाहिये।"

"मैं आप की बात को स्वीकार करता हूँ, परन्तु मैं नहीं चाहता कि मेवाड़पर विजय प्राप्त करने के पूर्व ही मेरे लड़के मेरे शत्रु बन जांये।"

"आप दुरुस्त फरमाते हैं। शाहजादों को खिलाफ करना अपनी ताकत कम करना है"

"तो फिर मैं एक ऐसी तरकीब बताऊँ कि सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।" वजीर ने उत्साहपूर्ण स्वर में कहा।

"खामोशी से शादी की रस्म पूरी कर ली जाय। इससे शाहजादों को पता भी न लगेगा और सुलतान के कौल की तौहीनी भी न होगी।"

"हाँ आप की यह तरकीब मुझे भी पसन्द है, मगर मेरे लड़कों को इस विषय में कानो-कान खबर न हो।"

"आप इसकी परवाह मत कीजिये। राणा जी हम तीन के अलावा

इस बात को कोई भी न जान सकेगा।" वजीर का विजयोल्लासपूर्ण स्वर फूट पड़ा।

"तो फिर कब यह रस्म पूरी होगी ?"

"इस वक्त तो होना मुश्किल है। कुछ न कुछ तो इन्तजाम करना ही पड़ेगा। जैसे ही सब तैयारियाँ हो जायेगी मैं आप को इत्तला करूँगा।"

अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ, मगर ध्यान रखियेगा कि सूरज के कान में इसकी भनक भी न पड़ने पावे।"

"इससे आप बेफिकर रहिये, राणा जी। सिर्फ, आप मेरे कहने के मुताबिक काम करते जाइये फिर देखिये कि आप कितनी जल्दी मेवाड़ के तख्त पर रौनक अफरोज होते हैं।"

"यह तो सब आप की मेहेरबानी होगी।" कह कर उदयसिह ने अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

आकाश मेघाच्छादित था। फुहारें पड़ रही थीं। मेघों की गर्जना दिशाओं को प्रकम्पित कर रही थी। सर्वत्र कालिमा परिव्याप्त थी। ऊदा का मन प्रसन्न था। उसे अपने उद्देश्य में सफलता मिली थी। जिस विजयोल्लास का अनुभव अपने पिता की हत्या करने के उपरान्त अनुभव किया था वही आज वह अपनी पुत्री सुलतान को सौंपने का वचन देकर अनुभव कर रहा था। कल्पनाओं के रङ्गीन चित्र बनाता हुआ ऊदा अपने निवास की ओर अग्रसर हो रहा था कि यकायक आकाश में बिजली तड़पी और ऊदा को गोद में लेकर पृथ्वी में धँस गई।

६

ग्रीष्मकाल का मध्यान्ह था। सूर्य की किरणें नागिनों की भांति पृथ्वी के प्रत्येक कण को डस रही थीं। पृथ्वी तवे के समान जल रही थी। गर्म वायु प्रकृति को झुलसे डाल रही थी। राणा जी अपने महल के एकान्त कक्ष में दोपहरी बिताने के उद्देश्य से मसनद के सहारे विश्राम कर रहे थे। उसी समय राघव जी ने कक्ष में प्रवेश किया। राणा जी प्रत्येक राजपूत का सम्मान करते थे। कुछ राजपूत सरदार उनके अत्यन्त स्नेह के पात्र थे। राणा जी को उन पर अटूट विश्वास था। उन्हीं विश्वासपात्र राजपूत सरदारों में राघव जी भी थे। राघव जी को सम्मान पूर्वक बैठाते हुए राणा जी ने पूछा—"कहिये, कुछ नवीन समाचार लाये है ?"

"नवीनता जितनी आकर्षक होती है, भयानक भी उससे कम नहीं होती। समाचार नवीन तो है परन्तु उसकी नवीनता आकर्षक न हो कर भयानक है।"

"फिर भी सुनूँ तो कि वह भयावह समाचार है क्या ?" राणा जी ने औत्सुक्यपूर्ण स्वर में प्रश्न किया।

"माँडू का सुलतान गयासशाह मेवाड़ पर आक्रमण के लिए चल चुका है।"

"मैं तो अब मेवाड़ को सुरक्षित समझता था, परन्तु एक शत्रु की कुदृष्टि अब भी इस ओर है ?"

"इसे आप केवल कुदृष्टि मात्र ही न समझिये वह मेवाड़ की राजगद्दी ऊदा के पुत्रों को दिलाना चाहता है।"

"तो क्या ऊदा वहाँ भी पहुँच गया ?"

"ऊदा वहाँ ही नहीं पहुँचा, बल्कि ईश्वर के यहाँ पहुँच गया है।"

"इसका आशय ?"

"ऊदा सहातार्थ मांडू के सुलतान के पास गया था। सुलतान सिसोदिया वंश का प्राचीन शत्रु है। उसने उसे अपने यहां शरण दी। इसने राजपूतों को नीचा दिखाने का नया मार्ग खोज निकाला • • •।"

"वह क्या ?"

"ऊदा की सहायता करने के लिए वह इस शर्त पर तैयार हुआ कि ऊदा उसे अपनी लड़की ब्याह दे।'

"तो क्या ऊदा ने इसे स्वीकार कर लिया था ?"

"हां, उसने इसे स्वीकार कर लिया था, परन्तु ऐसा होने के पूर्व ही उस पर वज्र-पात हो गया।"

एक राजपूत इतना नीच हो सकता है—ऐसा मैं कल्पना में भी नही सोच सकता।"

"आपका विचार ठीक है। एक राजपूत इतना नीच कभी नहीं हो सकता। ऊदा की तो राजपूती उसी दिन समाप्त हो गई थी जिस दिन उसने महाराणा कुम्भा की हत्या की थी।"

"आप ठीक कहते हैं। ऊदा को राजपूत कहना 'राजपूत' नाम को कलंकित करना है। खैर, हम लोगों को भी तैयारियां करनी चाहिये। शत्रु की गति बड़ी तीव्र होती है। विलम्ब स्वयं पराजय है।,'

राघव जी उत्तर में कुछ कहने ही जा रहे थे कि भागते हुये दासी ने कक्ष में प्रवेश किया और प्रसन्नतासूचक वाणी में कहा - महारानी जी के राजकुमार — — — — —।'

"क्या, राजकुमार हुआ है ?" राणा जी ने आश्चर्य-पूर्ण स्वर में पूछा। दासी ने स्वीकारात्मक सिर हिलाकर कहा—"हां।"

"राणा जी बधाई है।' कहकर राघव जी ने प्रसन्नता व्यक्त की। राणा जी ने मोतियों की माला गले से उतार कर दासी को दिया। दासी वहां से चली गई। राणा जी ने राघव से कहा—"आप राज-

कुमार होने के उपलक्ष में एक भी क्षण नष्ट न करियेगा। आप युद्ध की तैयारियाँ करिये और पड़ोसी राजाओं को भी आमन्त्रित करिये।"

राघव जी को आदेश देकर विदा किया और स्वत: रनिवास की ओर चलदिये। महारानी झाला प्रसूतिका ग्रह में पलंग पर पड़ीं विश्राम कर रहीं थीं। राणा जी को पास आया हुआ देखकर उन्होंने उठने का प्रयास किया। राणा जी ने मुस्कराकर लेटे रहने का संकेत किया। रानी के बगल में पड़े हुये बालक की ओर संकेव करते हुए राणा जी ने कहा—"यह बालक बड़ा ही वीर होगा।"

"क्यों नहीं, बीर पिता की संतान तो है।" रानी ने प्रसन्न मुद्रा में उत्तर दिया।

"नहीं, इसलिए नहीं। इसके जन्म की सूचना मिलने के साथ ही यह भी सूचना प्राप्त हुई है कि—माँडू का सुलतान मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए चल दिया है।"

"तो क्या संग्राम अवश्यम्भावी है?" रानी ने चिन्तित स्वर में पूंछा।

"निस्सन्देह संग्राम होगा ही। इसीलिए तो कहता हूं कि ऐसा प्रतीत होता है कि बालक संग्राम का सन्देश लेकर आया है।"

"तब तो इसका नाम भी संग्रामसिंह ही रखा जाना चाहिए।"

"कमाल कर दिया तुमने रानी। इतना सुन्दर नाम तो आज तक सिसोदिया वंश में किसी का भी नहीं रखा गया है।"

"तब तो सभी लोगों को अच्छा लगेगा।"

"क्यों नहीं। ऐसा कौन है जिसे महारानी का रखा हुआ नाम पसन्द न आये। लोग इस नाम को पसन्द ही नहीं करेंगे बल्कि नाम की उपयुक्तता पर विचार करके आश्चर्यान्वित हो उठेंगे।" कह कर राणा जी हँस पड़े। झाला रानी ने भी हंसी में योग दिया। कक्ष

हास्य से ध्वनित हो उठा। शनैः शनैः हास्य पर नियन्त्रण पाते हुये राणा जी ने कहा—"अच्छा अब मैं चलता हूँ। तुम्हें भी इस समय विश्राम की नितान्त आवश्यकता है।" कह कर राणा जी कक्ष के बाहर हो गये। झाला रानी तब तक उसी ओर टकटकी लगाकर देखती रहीं जब तक राणा जी दृष्टि से ओझल नहीं हो गये।

६

मेवाड़ के राजपूत सरदारों ने रायमल को राजगद्दी पर आसीन होने के लिए आमन्त्रित किया था। राणा रायमल से सभी को स्वाभाविक प्रेम था। उनके अदम्य उत्साह, अतुल पराक्रम, अद्वितीय साहस एवं अद्‌भुत सहिष्णुता ने सभी मेवाड़ निवासियों को इतना प्रभावित किया था कि वे राणा के एक संकेत पर अपने प्राण न्योछावर करने को सदा तत्पर रहते थे। राणा की पताका के नीचे एक–एक करके सम्पूर्ण मेवाड़ सैनिक रूप में एकत्र हो गया। आबू का राजा और गिरनार का नरेश भी युद्ध स्थल में आकर राणा की सेना से आ मिले। दोनों सेनाओं का सामना हुआ। दोनों ओर से तलवारें चमकने लगीं। सैनिक कट-कट कर गिरने लगे। तीन दिन तक घोर संग्राम हुआ। सिहेशमल और सूरजमल दोनों काम आये। भरसक प्रयत्न करने पर भी गयासशाह को सफलता न मिल सकी और युद्ध स्थल से भागना पड़ा। राणा जी की विजय पताका फहराने लगी। राजपूती शान में चार चाँद और लग गये।

समय व्यतीत होते देर नहीं लगती। सुलतान की पराजय के पश्चात् मेवाड़ निवासी सुख की नींद सोने लगे। उनका जीवन सरस

हो उठा। क्रन्दन और चीख, पुकार, आदि का नाम निशान भी न रह गया। सुख और शान्ति का साम्राज्य छा गया। राजपूत वीर होते हैं। वीर यदि एक कान से अस्त्रों-शस्त्रों की झंकार सुन सकता और घोड़े की पीठ पर सो सकता है तो वह सुन्दरी के पैरों के घुंघुरुओं की ध्वनि तथा शैय्या का सुखोपभोग भी कर सकता है। शासक का प्रथम गुण होता था वीरता। वीर शासक अनेक विवाह करते थे। राणा रायमल भी इस प्रथा के अपवाद न बन सके। राणा जी के ग्यारह रानियाँ थीं, जिनसे चौदह राजकुमार और दो राजकुमारियाँ हुई थीं। उन में से तीन राजकुमार पृथ्वीराज, जयमल और सांगा अधिक प्रसिद्ध हुये। पृथ्वीराज और संग्रामसिंह झाला रानी के पुत्र थे। संग्रामसिंह को स्नेहवश रानी तथा राणा साँगा कहकर सम्बोधित करते थे। माता-पिता के सम्बोधन का अनुकरण सभी ने किया। तीनों राजकुमारों में इतना स्नेह था कि वे सर्वत्र एक साथ ही दृष्टिगोचर होते थे। शनैः शनैः तीनों पुत्र बड़े होने लगे। उनके गुण प्रगट होने लगे। सांगा को माता-पिता का विशेष प्रेम प्राप्त था। साँगा का प्रत्येक क्रिया कलाप मानवोचित गुणों से परिपूर्ण होता था। एक दिन राणा जी सांगा को गोद में लिये हुये बैठे थे। पृथ्वीराज कहीं से खेलता हुआ आया और पिता की गोद में साँगा को बैठा हुआ देखा। सांगा की बाँह पकड़ कर उसने घसीटा। राणा ने इसका विरोध किया तो सांगा ने कहा—
"भइया को ही बैठा लीजिये, पिता जी। मैं उठा जाता हूँ।"

"क्यों, तू क्यों उठा जाता हैं ?"

"मैं बहुत देर से बैठा हूं। पृथ्वी थका हुआ कहीं से आ रहा है। इसे पिता जी आपकी गोद में विश्राम की आवश्यकता है।"

"राणा जी मुस्करा दिये और पृथ्वी को गोद में स्थान दे दिया।

इस प्रकार राणा जी के दिन व्यतीत होने लगे। बालक बड़े होने लगे। मेवाड़ निवासी इन्हें देख कर राम लक्ष्मण और भरत की याद करते।

सुलतान गयासशाह पराजय को भूला न था। वह दिन-रात उसी चिन्ता में रहता कि किस तरह राणा से बदला लिया जाय। अपने को शक्तिशाली बनाने के हर सम्भव साधन वह जुटाने लगा। अनेक वर्षों के अविराम प्रयासों के परिणाम स्वरूप सुलतान ने एक शक्तिशाली विशाल सेना का निर्माण किया। यद्यपि वह अपनी पिछली करारी हार के अपमान की कालिमा को राजपूतों के पवित्र रक्त से धोना चाहता था तथापि उसको अब भी राजपूतों का सामना करने का साहस नहीं होता था। जाफरखां उसका प्रधान सेनापति था। उसपर सुलतान को विश्वास था। वह भी अपने को अजेय समझता था। सुलतान ने जाफरखां को बुलाकर पूछा—"अब फौज की तैयारी में क्या कमी रह गई है ?"

"हुजूर, मुझे तो कोई कमी नजर नहीं आती। हमारी फौजी ताकत इतनी ज्यादा हो गई है कि दुनियाँ की कोई भी फौज उसका मुकाबला नहीं कर सकती।"

"और मेवाड़ के राजपूत ?"

"उनकी क्या मजाल जो हमारी फौजीताकत का सामना कर सकें। उनके लिये तो फौज का एक हिस्सा ही काफी है।"

"अभी तुम उनकी बहादुरी से वाकिफ नहीं हो, इसीलिये ऐसा कह रहे हो।"

"हुजूर अगर इजाजत दें तो मैं अबकी बार उन्हें वह शिकस्त दूँ कि फिर कभी वे आपके खिलाफ सिर न उठा सकें।

"तो क्या तुम अकेले ही उनसे लड़ सकते हो ?"

"बेशक ! हाँथ कँगन को आरसी क्या! आपके हुक्म भर की देर है।"

"शाबास बहादुर। मुझे आजतक तुम्हारा ऐसा बहादुर सिपाही नजर नहीं आया। तुम्हारी हिम्मत देखकर मेरा दिल बाग-बाग हो गया।" जाफर खाँ के कन्धे पर हाँथ रखकर ध्यान से उसकी ओर

देखते हुये सुलतान ने कहा – "जाओ, मैं तुम्हें अपनी पूरी फौज सौंपता हूँ। उसकी मदद से तुम मेवाड़ पर हमला करो। तुम्हारे सेनापतित्व में सारी फौज राजपूतों से जंग करेगी। अल्लाह तुम्हें फतह हासिल कराये। फतह के बाद मेवाड़ के तख्तपर मेरा सरदार जाफर खाँ बैठेगा।" जाफरखां की पीठ थपथपाते हुये प्रसन्नमुद्रा में सुलतान ने अपनी अभिलाषा व्यक्त की।

"मैं आपकी उस ख्वाहिश को पूरा करने के लिये जानकी बाजी लगा दूँगा।"

"वाह! जाफर खाँ!! वाह!! तुम तो मेरी दिली तमन्ना से भी वाकिफ हो। राजपूतों से मेरी पुरानी दुस्मनी चली आ रही है। मैंने कई बार उन्हें शिकस्त देने की कोशिश की मगर नाकामयाब रहा। इस दफा मैं भी चाहता हूँ कि मैदाने जंग में चलूँ।"

"आप बेफिक्र रहिये हुजूर। जबतक जाफर खां आपकी खिदमत के लिये हाजिर है आपको मैदाने जंग में जाने की कोई जरूरत नहीं।"

"मुझे तुम्हारी बहादुरी पर फक्र है, जाफर खां! मेरी फौजी ताकत के साथ-साथ मेरी दुआयें भी तुम्हारे साथ हैं। अल्लाह तुम्हें कामयाब बनाये।"

जाफर खां जब वहां से उठकर चलने लगे तब सुलतान उसे थोड़ी दूरतक भेजने आये। वह भी सुलतान से अप्रत्याशित सम्मान पाकर फूला न समाया। शीघ्र ही सेना के प्रमुख सैनिकों को एकत्र किया और तैयारी करने की आज्ञा देदी। सेना की तैयारी तो बहुत दिनों से चल ही रही थी। सेनापति का संकेत पाकर तैयारियां द्रुतगति से होने लगीं। एक सप्ताह तैंयारी में लग गया। अंत में कूँच करते समय जब सुलतान सेनाका निरीक्षण करने आया तो वह अपनी सैनिक शक्ति को देखकर दंग रह गया। इतनी विशाल सेना उसके पास है इसकी उसे कल्पना भी न थी। सैनिक शक्ति-विभाजन देखकर तो उसका दिल बाग-बाग होगया। पास ही खड़े जाफरखाँ को सीने से

लगाते हुये सुलतान ने कहा—"तुम मेरी औलाद से भी ज्यादा हो। मैं तुमसे वही उम्मीद करता हूँ जो एक बादशाह अपने शाहजादे से करता है।"

सुलतान की बात को पास खड़े सभी सेनापतियों ने सुना। सभी के हृदयों में प्रसन्नता की लहर दौड़गई। "सुलतान जिन्दाबाद" के नारों से वायुमण्डल प्रध्वनित हो उठा। उसके पश्चात् सेना मेवाड़ की ओर रेंगने लगी।

———

७

अत्यन्त सघन बन था। चारो ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष खड़े थे। कटीली झाड़ियां इतनी सघन थीं कि पृथ्वी के दर्शन बड़ी कठिनाई से होते थे। बन की नीरवता हृदय को प्रकम्पित किये दे रही थी। एक झाड़ी में किसी के खिसकने की आहट प्रतीत हुई। पृथ्वी ने उस ओर दृष्टिपात किया तो एक सिंह प्रतीत हुआ। उस पर निसाना साधा और भाले से आनुक्रमण कर दिया। भाला लगा परन्तु फिसलगया। सिंह दहाड़ा। बन का सम्पूर्ण वातावरण उसकी दहाड़ से कांप उठा। वह मुड़ा और पास खड़े पृथ्वी पर एक कड़ी दृष्टि डाली। पृथ्वी के पास केवल एक कटार रहगई थी। हाँट में कटार लेकर सिंह के आक्रमण का सामना करने के लिये पृथ्वीराज प्रस्तुत हो गये। सिंह अपने स्थान से उछला परन्तु उसके पूर्व कि वह पृथ्वीराज पर आ सके सांगा के भाला का वह शिकार हो गया। भाला सिंह का मस्तक फाड़कर अन्दर घुसगया। सिंह असहाय होकर पृथ्वी पर पड़ा। क्रोध-पूर्ण नेत्रों से वह अपने शत्रुओं की ओर देखता रहा। उसके नेत्र अधिक

समय तक खुले न रह सके। शरीर ढीला पड़ गया। जयमल भी घूमते-घामते उधर आ निकले। सिंह को मरा हुआ देखकर कहा— "वाह ! पृथ्वी भइया ने तो आज कमाल कर दिया। इतना भयानक सिंह एक ही भाले से मार गिराया। क्या अचूक निशाना लगाते हो तुम भी भइया।"

"सांगा आगया नहीं तो मैं इससे आज कुश्ती लड़ने वाला था।"

"साँगा तो इसी तरह हमेशा आपके काम में अड़ंगा लगा देता है। मुझे इसकी यह आदत पसन्द नहीं।"

"नहीं जयमल भइया, ऐसी बात नहीं है। पृथ्वी भइया निहत्थे थे। इसके पहिले कि वह भइया पर आक्रमण कर सके मैंने अपने भाले का उसे निशाना बना दिया।"

"अरे, यह क्यों नहीं कहता कि सिंह को मारने की तुम भी वाह वाही लूटना चाहते थे। कभी अकेले सिंह को मारकर देखो तो पता चले।" जयमल ने चिढ़कर कहा।

"अवसर पड़ेगा तो ऐसा भी कर के दिखा दूँगा।" सांगा ने शान्तिपूर्वक कहा।

"हाँ, हां जानता हूँ कि तू बड़ा बहादुर है। भइया द्वारा घायल किये गये सिंह को एक भाला मार लिया-इसी में फूले नहीं समा रहे हो।"

"फूले न समाने की बात ही है। सिंह को मारना कोई हँसी खेल नहीं है।"

"अच्छा, अच्छा, शेखी न बघारो। सिंह को तो मेवाड़ की राजपूत स्त्रियाँ भी मार गिराती हैं।" जयमल ने आवेश में आकर कहा।

जयमल सांगा के महत्व को घटाकर पृथ्वी की चापलूसी किया करता था। सिंह के आस-पास खड़े वार्तालाप कर ही रहे थे कि इसी बीच में घोड़े पर सवार एक व्यक्ति आ निकला। उसने इन्हें आपस में

ज्यादती देखकर कहा—"क्यों इन निरीह पशुओं का वध करते हो ? वीरता दिखानी हो तो युद्ध के मैदान में दिखाओ।"

"तुम कौन हो ?" पृथ्वी ने कड़क कर कहा।

"मैं एक सौदागर हूँ।"

"तुम्हें हम भाइयों के बीच में बोलने का क्या अधिकार है ?"

"सम्भवतः आप लोग मेवाड़ के राजकुमार हैं ?"

"हां।" जयमल ने आवेश में स्वीकार किया।

"भावी संकट से सूचित करना मैंने अपना कर्तव्य समझा, इसी लिये मुझे यह अभद्रतापूर्ण व्यवहार करना पड़ा।"

"भावी संकट की सूचना कैसी ?" पृथ्वी ने प्रश्न किया।

"मांडू के सुलतान से तो आपलोग परिचित ही होंगे ?"

"भला, अपने शत्रु से कौन नहीं परिचित होता।"

"उसी का सेनापति जाफर खां एक विशाल सेना के साथ मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिये बढ़ा चला आ रहा है।"

"यह सब आपको कैसे ज्ञात हुआ ?" सांगा ने प्रश्न किया।

"मैं सौदागर हूँ। मेरे पास कई ऊँटों में लदा माल था। सेना मार्ग में मिल गई। मेरा माल ऊँटों सहित लूट लिया। मैं किसी तरह अपने प्राण बचाकर भाग आया हूँ।"

"मुझे आपके साथ किये गये अत्याचार के लिये हार्दिक दुख है। आइये, हमलोगों के साथ चलकर मेवाड़ में निवास कीजिये। हम आपकी हानि को पूरा करने की चेष्टा करेंगे और आततायी को दण्ड देंगे। आपने भावी संकट से सूचित करके मेवाड़ पर बड़ा उपकार किया है। उसका बदला आपको ईश्वर देगा।" सांगा का गम्भीर स्वर बड़ा प्रभावोत्पादक था।

"हां, हां, चलिये मैं आपको पिता जी से भेंट कराऊँगा।" पृथ्वी ने कहा।

"मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।" सौदागर ने कहा

तीनो भाई अपने-अपने अश्वों पर सवार होकर नगर की ओर चल दिये। पीछे पीछे वह सौदागर भी चलने लगा। मार्ग में किसी ने भी किसी से भी बात न की।

राणा रायमल अपने कुछ विश्वस्त राजपूत सरदारों के साथ बैठे वार्तालाप कर रहे थे। अपने पुत्रों को तीव्रगति से अपनी ओर आते हुये देखकर सशंकित हो उठे। पास आकर पृथ्वी ने कहा— "सुलतान मेवाड़ पर अक्रमण करने आरहा है।"

"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

"इस सौदागर ने हमें सूचित किया है।" पृथ्वी ने उत्तर दिया।

राणा रायमल ने उस सौदागर को नीचे से ऊपर तक देखा। उसकी ओर ज्यों-ज्यों देखते त्यों त्यों उनकी मुख मुद्रा में आश्चर्यजनक परिवर्तन होता गया। उनके नेत्र प्रसन्नता से चमक उठें। सहसा मुह ँसे निकल पड़ा—" पँवार जी। आप इस वेष में?" राणाजी ने इतना कहकर पँवार जी को अपनी भुजाओं में कस लिया। दोनो प्रगाढ़ालिगंन में आबद्ध हो गये। कुछ क्षणों तक उसी अवस्था में बने रहने के उपरान्त पँवार जी ने कहा-"आप ने पहिचान लिया मुझे?"

"क्यों नहीं, क्या कभी कोई मित्र भी भूला जा सकता है, लेकिन तुमने यह वेश कब से धारण कर लिया?"

"एक मित्र के निष्कासित किये जाने पर दूसरा कैसे रह सकता था?"

"इसका तात्पर्य?"

"राणा जी द्वारा आप के निष्कासित किये जाने पर मुझे भी मातृभूमि त्यागने की आज्ञा हो गई थी।"

"लेकिन यह सौदागर का वेष क्यों धारण कर लिया?"

"और फिर कर भी की क्या? पेट पालने के लिये कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है। इसके अतिरिक्त मेरे पास अन्य कोई उपाय भी तो न था।"

"ईडर मेरे पास क्यों नहीं चले आये ?"

"मैं किसी का बोझा नहीं बनना चाहता था।"

"वाह ! मित्र भी कभी बोझा हो सकता है ?"

"यदि आप स्वतन्त्र रूप से कहीं निवास करते होते तो मैं अवश्य आप के पास आता।"

"परन्तु मुझे मेवाड़ में तो रहते हुये कई वर्ष हो गये। यहाँ क्यों नहीं चले आये ?

"मैं व्यापार करता हुआ बहुत दूर निकल गया था। दीर्घकाल तक बाहर व्यापार करता रहा। सहसा एक दिन मातृभूमि के दर्शन की लालसा हृदय में जाग्रत हुई। बस, फिर क्या था मैं लौट पड़ा। मार्ग में सुलतान की सेना मिली। बड़ी विशाल सेना है। बड़ी द्रुति गति से इसी ओर बढ़ती चली आ रही है।"

"राघव जी ! सुन रहे हैं सुलतान की करामात। आप के ही सामने तो उसने मेवाड़ पर फिर कभी आक्रमण न करने की शपथ ग्रहण की थी। वह भी क्या मानव है जो अपने बचनों का पालन नहीं करता।" राघव जी की ओर उन्मुख होकर राणा जी ने कहा।

"मैंने तो आप से उसी समय कहा था कि अधिकार में आये हुये शत्रु को छोड़ देना राजनैतिक पराजय है। यदि उसी समय उसके प्राणों का अन्त कर दिया होता आपने तो आज इस परिस्थिति का सामना न करना पड़ता।"

"आप ठीक कहते हैं, राघव जी। मेरा वह कार्य त्रुटिपूर्ण रहा, परन्तु अब त्रुटि के लिये केवल पश्चाताप करते रहें-यह भी उचित नहीं है। शत्रु का सामना तो करना ही पड़ेगा।"

"क्यों नहीं, शत्रु का सामना ही नहीं करेंगे वरन् इस बार उसे आक्रमण करने का वह मजा चखायेंगे कि फिर कभी भविष्य में मेवाड़ पर आक्रमण करने की स्वप्न में भी बात न सोच सके।"

"धन्य है राघव जी आप का साहस। आप जैसे राजपूतों के बल पर ही तो मेवाड़ की स्वतन्त्रता स्थिर है। मातृ भूमि आप जैसे वीरों

को जन्म देकर गौरवान्वित हो गई है। मेवाड़ भूमि का एक-एक कण आप की वीरता के गीत गायेगा।"

"मैं इतनी अधिक प्रशंसा का अधिकारी नहीं हूँ राणा जी।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं आप की प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ, वरन् जो यथार्थ है उसी का वर्णन मात्र कर रहा हूँ।"

"मुझे भय है कि कहीं आप के मुह से अपनी प्रशंसा सुनकर अपनी वीरता पर घमण्ड न करने लगू।"

"आप जैसे विवेकी वीर से मुझे ऐसी आशा नहीं।" और मुझे विश्वास है कि मेरी आशा उचित ही है।"

"यह तो सब आप का ही आशीर्वाद है। हम लोग तो आप के द्वारा निर्देशित मार्ग के अनुयायी मात्र हैं।"

"ऐसा आप क्यों कहते हैं ? हम लोगों मे तो पारस्परिक मित्र भाव है। यह आप लोगों की उदारता है कि निर्देशित मार्ग का आप लोग अनुसरण करते है।"

"उचित निर्देशन सभी को प्रिय होता है। भावी संकट पर विजय प्राप्त करने के लिये हमारा मार्ग प्रदर्शन कीजिये।"

"राजपूत सैनिकों का इस युद्ध में आप प्रतिनिधित्व करेंगे।"

"नहीं, इस युद्ध का नेतृत्व मैं करूँगा।" पृथ्वी ने उत्साहित होकर कहा।

पृथ्वीराज के उत्साह को देखकर सभी लोग दंग रह गये। सभी एक दूसरे की ओर देखने लगे। पृथ्वी ने सभी अपरिचित लोगो पर दृष्टि डाली। सभी को प्रभावित पाकर उसने पुनः कहा—"क्या आप समझते हैं कि मुझमें नेतृत्व करने की क्षमता नहीं ?"

"नहीं, ऐसा कोई नही सोच रहा है, वरन् तुम्हारे अदम्य उत्साह पर आश्चर्य हो रहा हैं।" राघवजी ने कहा।

"इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है ? हम तीनों भाई मिलकर सुलतान की सेना का सामना करेंगे और आप लोगों के आशीर्वाद से

विजय भी प्राप्त करेंगे।" संग्रामसिंह ने शालीनता पूर्वक कहा।

"अवश्य, बेटा अवश्य। तुम लोगों को विजय अवश्य प्राप्त होगी, परन्तु ....।"

"परन्तु क्या राणा जी? कहिये, शान्त क्यों हो गये।" राघव जी ने राणा जी को सहसा सोच में पड़े हुये देखकर कहा।

"सम्भवतः पिता जी को हम लोगों की वीरता पर भरोसा नहीं है।" पृथ्वीराज ने कहा।

"नहीं ऐसी बात नहीं है। मुझे तुम लोगों की वीरता पर पूर्ण विश्वास है,। परन्तु यह सोचकर कि सुलतान बड़ा धूर्त है। अनुभव का अभाव है तुम लोगों में। पता नहीं वह कब क्या रंग बदले।"

"उसके लिये तो हम लोग हैं ही। आप निश्चिन्त होकर राजकुमारों के हाँथ में इस युद्ध का संचालन सौंपिये।" राघव जी ने बल देकर कहा। "यदि आप की भी यही सम्मति है तो फिर ठीक है।"

"जब तक राघव के तन में प्राण हैं तब तक राजकुमारों का कोई बाल बाँका भी न कर सकेगा। और फिर राजकुमारों को शौर्य प्रदर्शन का अवसर भी तो प्राप्त होना चाहिये।" राघव जी ने अपना विश्वास प्रगट किया।

राणा जी ने औचित्य पर गम्भीरता पूर्वक विचार करके अपना अभिमत प्रगट किया—"आज मुझे प्रसन्नता है कि मेवाड़ के राजकुमार मेरे जीवित ही एक विशाल सेना का सामना करने जारहे हैं, परन्तु राघव जी की सम्मति प्राप्त कर ही कोई पग उठाना। तुमलोग उस जाति के सैनिकों का सामना करने लिये जा रहे हो जो बहुत ही चतुर है। जिसकी गति का अनुमान करना कोई हँसी खेल नहीं है। राघव जी उनका कई युद्धों में सामना कर चुके हैं। आप उनकी चालों से भली भांति परिचित हैं। आपकी सम्मति तुमलोगों के लिये बहुमूल्य सिद्ध होगी।"

"पिता जी हमें आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। हम राघव जी की

बिना आज्ञा एक भी पग आगे न बढ़ायेंगे।" संग्रामसिंह ने अपनी शालीनता का परिचय दिया।

"अच्छा! तो अब हमें आज्ञा दीजिये। युद्ध की तैयारी में कई दिन लग जायेंगे।" राघव जी ने कहा।

"हां जाइये और युद्ध की तैयारी करिये। मैं भी आपका सहयोग देने की चेष्टा करूंगा।"

"आपके सहयोग के बिना तो हम लोग पंगु हो जायेंगे।" उठते हुये राघव जी ने कहा। तीनों राजकुमार भी राघव जी के साथ हो लिये।

८

तीनों राजकुमार सेना के साथ आगे बढ़ने लगे। उनमें नया जोश था, अदम्य उत्साह था, मरने मारने की उत्कंठा थी। राजपूती रक्त उफान मार रहा था। शौर्य प्रदर्शन का प्रथम अवसर उन्हें उपलब्ध हुआ था। सेना मंडलगढ़ में पहुंची। सैनिक विश्राम करने लगे। व्यूह रचना होने लगी।

जाफर खां मेवाड़ के पूर्वी भाग में लूट-मार करता हुआ मंडलगढ़ की ओर बढ़ रहा था। राजपूत सेना की उपस्थिति का समाचार पाते ही उसकी गति मन्द पड़ गई। शनैः शनैः सावधानी पूर्वक अग्रसर होने लगा।

यह मंडलगढ़ का विस्तृत मैदान है थोड़ी ही देर में युद्धस्थल रूप में परिणत होने वाला है, क्योंकि दोनों ओर सेनायें तैयार हो रही हैं। सूर्य तेजी से चमक रहा है। वायु तीव्रगति से प्रवाहित हो रही है। धूल उड़ रही है। अरे। यह तो बाजे बजने लगे। सम्भवत: ये युद्ध

के बाजे हैं। ये बीरों का उत्साह बर्धन करते हैं। दोनों ओर से सेनायें बढ़ने लगी हैं। राजपूतों की सेना में आगे-आगे तीनों राजकुमार अश्वों पर अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित उपस्थित हैं। उन्हीं का अनुसरण सैनिक कर रहे हैं।

दूसरी बांर भी तो देखिये। सेना के आगे जाफर खां दिखाई पड़रहा है। क्या वीर वेश धारण किये हुये हैं। तलवार भी हाँथ में हैं। दो तलवारें बगल में भी लटक रही हैं। दूसरे हाँथ में एक भाला भी तो है।

दोनों सेनायें शत्रुओं का आलिंगन करने के लिये निकट आने की चेष्टा कर रही हैं। बीच में थोड़ा अन्तर रह गया है। पृथ्वी कांप रही है। वायुमण्डल प्रकम्पित हो रहा है। अरे! यह क्या!! दोनों ओर के सैनिक तेजी से दौड़ने लगे। ये तो रुक नहीं रहे हैं। दोनों दलों में घुस रहे हैं। ये हांथी घोड़े क्यों गिर रहे हैं? अच्छा! सैनिक सवारों सहित उन्हें भी काट-काट कर धराशायी कर रहे हैं। जय काली, जय रणचण्डी, अल्लाह अकबर की ध्वनि भी कानों में पड़ रही है। जरा ध्यान से तो देखो। धूल का उड़ना बन्द हो गया है। पृथ्वी की प्यास बुझने लगी है। किससे? रक्त से। कहीं रक्त से भी प्यास बुझती है? हाँ, बुझती क्यों नहीं। रक्त से ही तो प्यास बुझती हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत: प्यास शान्त हो गई है। क्यों? रक्त तो बहने लगा है। अरे हाँ! पगड़ियाँ भी बह रही हैं। लाशे तड़फ रही हैं। चारो ओर रुण्ड-मुण्ड दृष्टि गोचर हो रहे हैं। भूमिके तो दर्शन भी नहीं हो रहे हैं। अरे! यह क्या? लाशें तों चलती फिरती नजर आ रही हैं। लाशें चल नहीं रही हैं बह रही हैं। यहाँ कौन सी नदी है? यहां नदी हैं रक्त की। ओह हो। तो रक्त की नदी भी बह चली है। नीचे ही क्यों देख रहे हो। जरा दृष्टि ऊपर तो उठाओ। वह देखो सामने जाफर खां घिर गया है। राजपूत सैनिकों की तलवारें उसके ऊपर बरस रही हैं। परन्तु वाह रे वीर। कितनी

तेजी से उसकी भी तलवार चलरही है। एक भी तलवार उसपर गिरने नहीं पारही है। अरे ! ये कौन लोग आ गये ? इनको नहीं जानते हो ? कुछ-कुछ पहचाने से तो लगते हैं। अरे ! ये तीनों राजकुमार है। ये तो रक्तवर्ण हो रहे हैं। तो क्या पृथ्वीराज भी जाफर खाँ पर तलवार से आक्रमण करने लगे हैं ? हाँ, पृथ्वीराज ही नहीं, वरन् संग्रामसिंह और जयमल भी दूसरी ओर से तलवार चला रहे हैं। अब तो एक भी मुसलमान सैनिक नहीं दिखाई दे रहा है। तो क्या सभी धराशायी हो गये ? हाँ, जाफर खाँ ही अकेला युद्ध कर रहा है। पृथ्वीराज तो अपना भाला सम्हाल रहे हैं। देखो-देखो उन्होंने फेंक भी दिया। अरे यह क्या ? जाफ़र खां के सीने में यह क्या घुस गया। यही तो पृथ्वीराज का भाला है। सम्हालो-सम्हालो वह तो घोड़े से गिरने वाला है। जयमल उसे रोकने के लिये आगे बढ़े हैं। परन्तु यह क्या उन्होंने तो उसका सिर धड़ से अलग कर किया।

राजकुमारों ने अपनी रक्त रंजित तलवारों की ओर देखा और उन्हें चूम लिया। सारंगदेव ने पीछे से आकर कहा—"आज तुम्हारी वीरता देखकर मातृभूमि संतुष्ट हो गई। उसे अब आशा बँध गई है कि तुम उसकी रक्षा कर सकोगे।"

"हां चाचा ! पृथ्वी भइया की तलवार तो उस समय देखते ही बनती थी।" जयमल ने प्रसन्न होकर कहा।

"तुम तीनों भाइयों ने कमाल कर दिया।" सारंगदेव ने कहा।

राजकुमारों के साथ सारंगदेव को बार्तालाप करते हुये देखकर और भी राजपूत वहाँ आकर एकत्र हो गये। सभी सैनिक राजकुमारों के वेशों को देख रहे थे। सारंगदेव ने अधिक समय रणस्थल में रुकना उचित नहीं समझा। अपना घोड़ा मोड़ते हुये कहा—"चलो, चलकर राणा जी को सूचित करें।"

राजकुमारों के साथ सभी सैनिक मुड़ गये। अश्व पुनः हवा से बातें करने लगे।

६

राणा जी महल के बाह्य कक्ष में हाँथ पीछे किये हुये टहल रहे थे। कभी छत की ओर देखते तो कभी द्वार की ओर। युद्ध का समाचार जानने के लिये वह बेचैन थे। जब से तीनों राजकुमार युद्ध-स्थल में भेजे गये थे तब से वह एक क्षण के लिये भी चिन्ता मुक्त न हो सके थे। यद्यपि वीर पुत्रों के युद्ध में जाने की अपार प्रसन्नता थी तथापि उनके अनुभव हीनता के लिए कम बेचैनी भी न थी। उनकी दृष्टि राजपथ तक जाती और टकराकर वापस आ जाती। विलम्ब चिंता में बृद्धि कर रहा था। इसी समय झालारानी ने कक्ष में प्रवेश किया। राणा जी उनका आगमन न जान सके। रानी ने उनकी वर्तमानावस्था का आभास पाकर कहा – "कुछ समाचार प्राप्त हुआ ?"

"नहीं।" घूम कर राणा जी ने उत्तर दिया।

"मैंने उसी समय रोका था कि लड़कों की अभी युद्ध में जाने की अवस्था नहीं है, परन्तु आप मानें तब न।"

"चाहता तो मैं भी नहीं था, परन्तु पृथ्वी अपनी जिद्द के सामने किसी की सुनता भी है। जिस बात की जिद्द पकड़ता है जब तक उसे कर नहीं लेता तब तक शान्त नहीं होता।"

"तो पृथ्वी को अपनी जिद्द का फल भुगतने देते। संग्राम और जयमल को क्यों जाने दिया ?"

"यह तो तुम जानती ही हो कि जयमल पृथ्वी के साथ परछाईं की भाँति रहता है और संग्राम भी अपने दोनों छोटे भाइयों को मृत्यु के मुख में डालकर चैन से बैठने वाला नहीं।" राणा ने बैठते हुये कहा।

"बिपत्ति के समय सभी की मति मारी जाती है। मेरे कहने पर

किसी ने ध्यान न दिया। मेरी तो कोख ही रिक्त हुई जा रही है।" कहते ही रानी के नेत्र-अश्रु पूरित हो गये।

"अभी से ऐसी अशुभ बात अपने मुंह से क्यों निकालती हो?"

"क्या करूँ? कैसे न कहूँ ऐसी बात? कैसे इस हृदय को सान्त्वना दूँ? अब आप ही बताइये कि मैं किनका मुँह देखकर जियूँगी?"

"हम सबका।" संग्राम ने सहसा प्रवेश करते हुये कहा।

पुत्रों को देखते ही राणा तथा रानी के आनन्द की सीमा न रही। एक-एक करके सभी पुत्रों को गले से लगाया और पीठ पर हाँथ फेरा। नीचे से ऊपर तक निरीक्षण करके रानी ने कहा—"अपने आने की सूचना क्यों नहीं दी तुम लोगों ने?"

"सूचना देने का अवसर ही कहां मिला?" पृथ्वी ने कहा।

"क्यों?"

"जाफर खां के गिरते ही हम लोग सीधे आप के पास आये हैं। जिस किसी को भेजते हम से पूर्व न आ पाता।"

"तो हमारे लाल विजय लाभ करके आये हैं?"

"हाँ, मां।" साँगा ने कहा।

"तुम लोग थोड़ी देर यहीं बैठकर पिता जी से बार्तालाप करो। मैं अभी आती हूँ।" कह कर महारानी अन्दर चली गई।

राणा जी को रानी के कारण पुत्रों से वार्तालाप करने का अवसर ही न उपलब्ध हो सका था। अवसर पाते ही उन्होंने पूँछा—"कहो, युद्ध की स्थिति कैसी रही?"

इस समय तक सारङ्गदेव भी आ गये थे। बीच में इसके पूर्व कि राणा जी के प्रश्न का उत्तर कोई राजकुमार दे वह तत्क्षण बोल उठे— "उसका सम्पूर्ण विवरण मैं आपको दूँगा। जीवन में सर्व प्रथम तो इन लोगों को इतना कठिन परिश्रम पड़ा है। थक गये हैं। थोड़ा इन्हें विश्राम करने दीजिये।"

इसी बीच में रानी ने थाल में आरती सजाये हुये कक्ष में प्रवेश किया और तीनों राजकुमारों को पंक्ति में खड़ा करके आरती उतारने लगीं। मस्तक पर विजय चिन्ह अंकित कर दिया। राणा जी भी बैठे न रह सके। रानी के हाँथ से थाल लेते हुये उन्होंने कहा—तुमने यदि अपने पुत्रों की आरती उतारी है तो मैं अपने भाई की आरती उतारूँगा।"

"भइया! यह क्या कर रहे हो?" सारंगदेव ने आश्चर्य प्रकट किया।

"आज तुमने जीवन में मुझे सर्व प्रथम 'भइया' शब्द से सम्बोधित किया है। यदि राजमाता स्वर्ग सिधार गई हैं तो क्या तुम्हारी आरती उतारने का मुझे अधिकार नहीं है।"

"यह आप क्या कह रहे हैं? आपको तो मेरे प्राण भी लेने का अधिकार है।"

"तो फिर तुम मुझे मेरे अधिकार से वचित कर रहे हो।" कह कर राणा जी ने सारंगदेव की आरती उतारी। थाल रखकर ज्यों ही विजय चिन्ह अंकित करने लगे कि दोनों प्रगाढ़ालिगन में आबद्ध हो गये। दोनों के नेत्र अश्रु पूरित हो उठे। राणा तथा राजमाता मातृ–प्रेम का अपूर्व प्रदर्शन देख रहे थे। हृदयों में प्रेम सागर उमड़ रहा था। कुछ क्षणों तक उसी स्थिति में खड़े रहे। शनैः शनैः अन्य लोग चले गये और सारङ्गदेव से अलग होते हुये राणा जी ने कहा - "आज मुझे ज्ञात हो गया कि मेरी अनुपस्थिति में तुम अपने भतीजों की रक्षा कर सकोगे। अब मैं निश्चिन्त हूँ। तुम्हारी संरक्षता में मैं उन्हें छोड़ रहा हूँ। अब तुम्हीं इनका मार्ग प्रदर्शन करो।"

रानी तीनों पुत्रों को लेकर महल के अन्दर चली गई। राणा जी के साथ सारङ्गदेव ने बैठते हुये कहा—"आपकी संरक्षता में तो सम्पूर्ण मेवाड़ पल रहा है। आपकी ही संरक्षता की राजकुमारों को भी आवश्यकता है।"

"तुम जानते हो कि मनुष्य सदैव एक सा नहीं रहता। मेरी अवस्था दिनों-दिन घटती जा रही है। पौरुष भी वह नहीं रह गया। अब तो मैं केवल एक स्थान पर बैठ कर कुछ सम्मति ही दे सकता हूँ।"

"अभी से आप ऐसा क्यों सोचने लगे हैं? अभी आप की भुजाओं पर राजपूत जाति को भरोसा है।"

"मनुष्य का भरोसा तो उसकी अन्तिम स्वाँश तक किया जाता है, परन्तु ऐसा भरोसा मन समझाने भर का होता है। उसका व्यावहारिक जीवन में कुछ भी उपयोग नहीं होता। राजकुमार समर्थ हो गये हैं। मेवाड़ निवासियों को उनके शौर्य पर विश्वास भी हो गया है। मुझे ऐसा विश्वास है कि अब राजपूतों को उनकी संरक्षता अस्वीकार न होगी।"

"इसका आशय ?"

"मैं अब अपना कार्य भार हल्का करना चाहता हूँ। जब पुत्र के कंधे कार्य भार ग्रहण करने योग्य हो जांय तो पिता का कर्तव्य है कि वह अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होने की चेष्टा करे।"

"तो आप किसी युवराज को राजगद्दी सौंपना चाहते हैं।"

"हाँ, यही मैं उचित समझता हूँ।"

"प्रत्येक शासक को चाहिए कि अपने जीवन भर के अनुभवों का निचोड़ अपने उत्तराधिकारी को सीख के रूप में प्रदान करे और उस सीख की व्यावहारिक सफलता को देखने के लिए यह आवश्यक है कि अपने जीवन काल में ही अपनी शक्तियों से उत्तराधिकारी को विभूषित करके उसका मार्ग निर्देशन करे। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मेवाड़ के भावी शासक को एक आदर्श शासक के रूप में देखूँ और उसे आदर्श शासक बनाने का उत्तरदायित्व मुझ पर है।"

"भइया! आपके श्रेष्ठ विचारों से कौन असहमत हो सकता है,

परन्तु किसे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं ?"

"मैं पूर्व परम्परा का निर्वाह करना चाहता हूँ।" ज्येष्ठ राजकुमार ही उत्तराधिकारी होता है।"

"इस दृष्टि से संग्रामसिंह ही उत्तराधिकारी सिद्ध होता है।"

"हां।"

"परन्तु पृथ्वीराज उससे अधिक वीर तथा उत्साही है। इस युद्ध में विजय प्राप्त करने का श्रेय उसी को है।"

"मैं तुम्हारे विचार से सहमत हूँ, परन्तु वीरता एवं उत्साह के अतिरिक्त भी अनेक गुणों की शासक को आवश्यकता होती है जिनका पृथ्वीराज मे अभाव है।

"वे क्या हैं ?"

"दया, क्षमा, विवेक, अवसर के अनुकूल आचरण करने की क्षमता, तत्क्षण निर्णयशक्ति एवं उदारता आदि कुछ ऐसे गुण हैं जिनका एक कुशल शासक के व्यक्तित्व में होना नितान्त वांछनीय हैं।"

"इन गुणों को तो शनैः शनैः प्राप्त भी किया जा सकता है।"

"हाँ, परन्तु उनमें से अधिकांश गुण जन्मजात हैं जिनका कालान्तर में विकास तो होता है परन्तु उत्पन्न नहीं होते। संग्रामसिंह में ये सभी गुण न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान हैं।"

"परन्तु क्या सभी राजकुमार शासक बनने का स्वप्न नहीं देखते होंगे ?"

"स्वप्न सदैव साकार नहीं होते। युवावस्था में व्यक्ति काल्पनिक जगत में बिचरण किया करता है। वास्तविक जीवन से उसका कम परिचय होता है। राजकुमारों की भावी आकाँक्षायें यदि अनुचित हैं तो उन्हें उनका त्याग करना पड़ेगा।"

"यदि उन लोगों ने विद्रोह किया तो ?"

"मुझे पूर्ण विश्वास है उनमें भ्रातृ प्रेम प्रगाढ़ है। वे एक दूसरे का विरोध नहीं करेंगे और यदि ऐसी कोई परिस्थिति आती भी है

तो, मैं अभी इतना बूढ़ा नहीं हो गया हूं कि मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई भी राजकुमार आचरण कर सके।"

"मुझे पृथ्वी के अतिरिक्त और किसी से भी ऐसी आशंका नहीं है।"

"संग्रामसिंह ही परम्परानुसार मेरा उत्तराधिकारी है। पृथ्वी यदि ना समझी करेगा तो उसका फल उसे भुगतना पड़ेगा। इस समय मेवाड़ को सर्व गुण सम्पन्न शासक की आवश्यकता है। अननधकारी के हाँथ में सत्ता जाने से मेवाड़ की स्वतन्त्रता अरक्षित होगी परन्तु यह ध्यान रहे कि अभी मेरे ये विचार आपके अतिरिक्त किसी अन्य को न ज्ञात हों, क्योंकि अवसर आने के पूर्व ही किसी रहस्य का व्यक्त हो जाना उसके महत्व को कम कर देता है।"

"आप विश्वास रखिये। मेरी जिह्वा अन्य किसी के समक्ष न खुलेगी।"

"इसीलिए तो मैंने अपने विचार तुम्हारे समक्ष निःसकोच व्यक्त कर दिये हैं।"

"मैं आप के विश्वास को अक्षुण्य रखने की भरसक चेष्टा करूंगा।"

"अच्छा, तो युद्ध का कुछ भी समाचार नहीं बताया तुमने ?"

"उत्तराधिकार का प्रश्न ही ऐसा छिड़ गया कि युद्ध का विवरण गौण हो गया।"

सारंगदेव के वाक्य को जयमल ने सुन लिया था। उसने कक्ष में प्रवेश करते ही तत्क्षण प्रश्न किया —"पिता जी ! किसके उत्तराधिकार के विषय में वार्तालाप हो रही है। ?"

"तुम्हें इसे जानने की कोई आवश्यकता नहीं। जाओ, विश्राम करो जाकर।" राणा जी ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा।

जयमल कुछ भी न बोल सका। चुप-चाप वहां से उठकर चला

गया। राणा जी ने परिस्थिति प्रतिकूल समझकर सारङ्गदेव से कहा—

"अब तुम भी जाकर विश्राम आदि करो। कल फिर किसी समय युद्ध का विवरण सुनूँगा।"

सारङ्गदेव ने राणा जी की आज्ञानुसार आचरण किया।

१०

जयमल के मस्तिष्क में 'उत्तराधिकार' शब्द चक्कर काटता रहा। काफी सोचने का प्रयास किया, परन्तु किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सका। कुछ-कुछ अनुमान मात्र से ही संतोष करके निद्रा में निमग्न हो गया। प्रातः काल जागने पर भी उसे मानसिक अशान्ति बनी रही। वह शीघ्र ही पृथ्वीराज के पास गया। नगर के बाहर ही एक मन्दिर था। उसी मन्दिर के पास एक तालाब के किनारे बैठकर उसने पृथ्वी से कहा—"कल पिता जी सारंग चाचा से उत्तराधिकार सम्बन्धी कुछ वार्तालाप कर रहे थे।"

"तुम्हें यह कैसे ज्ञात हुआ?"

"मैं भोजनोंपरान्त वहीं पहुँच गया जहाँ वे लोग वार्तालाप कर रहे थे, परन्तु केवल यही आभास पा सका कि उत्तराधिकार सम्बन्धी वार्तालाप हो रही है। मैंने पिता जी से इस विषय पर प्रश्न भी किया, परन्तु उन्होंने डाँटकर यही कहा कि मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं।"

"इसका आशय यह है कि अवश्य ही कोई महत्वपूर्ण बात है।"

"बात तो स्पष्ट ही है। केवल यही सोचना है कि किसके उत्तराधिकार की बात है?"

"मेरा तो अनुमान है कि मेवाड़ राज्य के ही उत्तराधिकारी से सम्बन्धित समस्या है।"

"मेरा भी यही अनुमान है।"

"परन्तु यह सोचना है कि उत्तराधिकारी कौन बनेगा ?"

"पिता जी तो संग्राम को ही अपना उत्तराधिकारी निर्धारित करेंगे।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"हां,क्यों नहीं हो सकता है ? बड़ा राजकुमार ही तो उत्तराधिकारी होता है।"

"मेरे जीते जी ऐसा नहीं होने का। शासक वीर होना चाहिए। वीरता में वह मेरे सामने कभी नहीं टिक सकता और फिर मैंने युद्ध में एक-एक को भी तो पराजित किया।।"

"परन्तु संग्राम के जीते जी आप मेवाड़ के शासक कभी नहीं बन सकते।"

"मैं वह परिस्थिति ही नहीं आने दूँगा ....।"

"कौन सी परिस्थिति नहीं आने देंगे ?" पीछे से आकर सारंगदेव ने सहसा प्रश्न किया।

"यों ही कुछ बात चल रही है।" खड़े होते हुये पृथ्वीराज ने कहा।

"फिर भी मैं भी तो जानूँ कि क्या बात है ?" सारङ्गदेव ने बैठते हुये प्रश्न किया।

"यों ही कल जब आप पिता जी से बात-चीत कर रहे थे, तब जयमल ने कुछ सुन लिया था। वही बता रहा था।"

"क्या सुना था जयमल तुमने ?"

"मैं तो केवल 'उत्तराधिकारी' शब्द ही सुन पाया था।" सिर नीचा किये हुये जयमल ने कहा।

"तो पृथ्वी तुम क्या कह रहे थे इस विषय में ?"

"चाचा बात यह है कि पिता जी के पश्चात् मेवाड़ की गद्दी पर मैं बैठना चाहता हूँ।"

"यह तो बहुत ही अच्छा रहेगा। मेवाड़ को इस समय एक वीर

शासक की आवश्यकता भी है। तुमसे अधिक उपयुक्त शासक और कौन हो सकता है, परन्तु मेरा विचार है कि सभी राजकुमार यही सोचते होंगे।"

"किसी के सोचने से क्या होता है। जिसकी भुजाओं में शक्ति होगी वही तो शासक बनेगा।"

"कभी-कभी शक्तिशाली होने पर भी अभिलषित वस्तु नहीं प्राप्त होती।"

"परन्तु ऐसा क्यों होता है?"

"इसका कारण होता है उनका भाग्य। यदि कोई वस्तु किसी के भाग्य में नहीं है तो अनेक प्रयास करने पर भी प्राप्त नहीं होती।"

"तब तो भाग्य के अनुसार ही आचरण करना चाहिये, परन्तु भाग्य में क्या है—यह कैसे ज्ञात किया जाय?"

"भाग्य के विषय में तो कोई ज्योतिषी ही बता सकता है।"

"तो फिर ज्योतिषी रामदास से क्यों न पूँछ लिया जाय?"

"जैसी इच्छा हो।"

"आइये, आप भी तो साथ चलिये।" पृथ्वीराज ने उठते हुये कहा।

"मुझे साथ ले जाकर क्या करोगे?"

"भाग्य जानने के उपरान्त आपसे सम्मति लूँगा।"

"परन्तु इतनी शीघ्रता की क्या आवश्यकता है?"

"जो कुछ करना है उसे कल के लिए नहीं छोड़ना चाहिये।"

पृथ्वीराज के साथ जयमल और सारङ्गदेव ज्योतिषी के घर की ओर चल दिये। मार्ग में संग्रामसिंह को देख कर सारंगदेव ने कहा—"आओ, संग्राम तुम भी साथ चलो।"

"कहां?

"ज्योतिषी के यहाँ।

"किसलिये ?"

"भाग्य जानने के लिये।"

"तो आपलोग भाग्य जानने के लिये ज्योतिषी के यहाँ जा रहे हैं ?"

"हाँ।"

"इसकी क्या आवश्यकता पड़ गई ?"

"ये लोग जानना चाहते हैं कि मेवाड़ की गद्दी किसके भाग्य में है।"

"इसमें भाग्य में होने न होने से क्या तात्पर्य ? जिसे पिता जी चाहेंगे वही गद्दी पर बैठेगा।"

"पिता जी के चाहने से क्या होता है। यदि मनुष्य की अभिलाषाओं की पूर्ति सम्भव होती तो असफलता को कहीं भी स्थान न होता।"

"मार्ग में खड़े होकर वाद-विवाद करने से क्या लाभ है ? अगर तुम भी अपना भाग्य जान लोगे तो उसमें हानि क्या।" सारंगदेव ने संग्रामसिंह को समझाते हुये कहा।

"अच्छा, चलिये।"

संग्रामसिंह भी उनलोगों के साथ हो लिये। ज्योतिषी का घर थोड़ी ही दूर पर था। चढ़ते हुये दिन का समय था। ज्योतिषी अपने बाहरी कक्ष में ही विराजमान थे। राजकुमारों को अपनी ओर आते हुये देखकर स्वागतार्थ आगे बढ़ आये। उन लोगों ने ज्योतिषी जी को प्रणाम किया और आसन ग्रहण किया। ज्योतिषी ने घबडाहट के स्वर में प्रश्न किया—"कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

"ये राजकुमार अपना-अपना भाग्य जानने आये हैं।" सारंगदेव ने उत्तर दिया।

"अभी कुण्डलियाँ देखकर बताये देता हूँ।" कहकर ज्योतिषी कुण्डली निकालने लगे।

"हमलोगों की कुण्डली आपके पास कैसे आयी ?" संग्राम ने प्रश्न किया।

"आपलोगों की कुण्डलियाँ तो सभी पंडितों के पास होंगी।"

"क्यों।"

"राजकुमारों की कुण्डलियाँ बनाना बड़ा ही हितकर होता है। अवसर पड़ने पर एक ही कुण्डली के द्वारा जीवन भर के भोजन की व्यवस्था हो जाती है।"

"आप शीघ्रता करिये।" पृथ्वी ने पण्डित जी को निर्देश दिया।

"अभी बताता हूँ।" कहकर पण्डित जी कुण्डली की ओर देखने लगे।

ज्योतिषी जी कभी कुण्डली की ओर देखते, कभी कुछ अस्फुट शब्दों का उच्चारण करते, कभी उँगलियों पर कुछ गिनते, कभी मस्तक पर बल डालकर गम्भीर विचार करते-इस प्रकार कुछ क्षणो परान्त आश्वस्त होकर ज्योतिषी ने पूछा—"आपलोगों में से पृथ्वीराज किसका नाम है?"

"मेरा।"

"आपके योग तो अच्छे हैं। आप वीर है। पराक्रमी हैं। आपको शत्रु पर विजय सदैव प्राप्त होगी। समस्त मेवाड़ पर आपकी धाक रहेगी। युगों-युगों तक आपके वीरता पूर्ण कार्यों के गीत गाये जायेंगे।"

"यह सबतो मैं भी जानता हूँ। इसके अतिरिक्त कुछ है या नहीं?"

"इसके अतिरिक्त आप क्या जानना चाहते हैं?"

"मैं जानना चाहता हूँ कि मैं कितने वर्षों मेवाड़ पर राज्य करूँगा?"

"यह तो नहीं कहा जासकता कि आप राज्य करेंगे या नहीं, परन्तु आपके तृतीय स्थान में मंगल, षष्ट मे सूर्य तथा एकादश स्थान में उच्च का शनि विराजमान है, इसलिये आपको युद्धों में कोई परास्त नहीं कर सकेगा। ये ग्रह आपकी अद्वितीय वीरता की ओर ही केवल संकेत करते हैं।"

"आपने भली भाँति देखलिया है?"

"भला आपके कार्य में असावधानी कैसे हो सकती है।" कह कर ज्योतिषी ने पृथ्वीराज की कुण्डली एक ओर रख दी और जयमल की कुण्डली लेकर कुछ क्षणों तक उसमें दृष्टि गड़ाये रहे। तत्पश्चात बोले—"राजकुमार जयमल जी बड़े ही भाग्यशाली हैं।"

"क्या मैं मेवाड़ पर राज्य करूँगा?" जयमल ने उत्सुकता व्यक्त की।

"राज्य करने का योग तो स्पष्ट प्रतीत नहीं होता है, परन्तु आपको जीवन में कभी भी असफलता नहीं मिलेगी। वीरता में भी आप अपने भाई से कम नहीं हैं।"

ज्योतिषी ने संग्रामसिंह की कुण्डली उठाई। उसे ध्यान पूर्वक देखा। प्रसन्नता के चिन्ह ज्योतिषी के मुँह पर प्रतीत होने लगे। संग्रामसिंह की उत्सुकता चरमसीमा पर थी। पृथ्वीराज का चेहरा उदास था। उसकी आशाओं पर तुषारापात हो चुका था परन्तु साँगा के भाग्य को जानने की उत्कण्ठा भी कम नहीं थी, क्योंकि सांगा को ही वह अपना प्रतिद्वन्दी समझता था। ज्योतिषी ने दीर्घनिःश्वास छोड़ते हुये कहा—आप विवेकी हैं। भाई के समान ही आप भी वीर हैं। आपकी आयु भी दीर्घ है।"

ज्योतिषी के इतना कहते ही पृथ्वी की भौंहें तन गईं। कभी वह ज्योतिषी की ओर देखता तो कभी साँगा की ओर। ज्योतिषी साँगा की कुण्डली को बड़े ही मनोयोग से देखरहा था। पृथ्वीराज से न रहा गया। उसने रोषपूर्ण स्वरमें पूछा—"अब उसमें क्या देख रहे हो?"

"योंही एक विशेष बात देखरहा हूँ।" उत्तर देने के उपरान्त भी ज्योतिषी कुण्डली में दृष्टि गड़ाये रहे। कुछ क्षणोपरान्त ज्योतिषी उछल पड़े और बड़े ही नाटकीय ढंग से कहा—"संग्रामसिंह की कुण्डली में राजयोग है। लग्न पञ्चम और नवम् स्थान में शुभ ग्रह उच्चहोकर बैठे हैं। नवांश में बृहस्पति भी हैं। ऐसे ग्रह जिस के जन्मपत्र में हो उसे राजा ही नहीं वरन् चक्रवर्ती सम्राट होना चाहिये।"

ज्योतिषी का इतना कहना था कि जयमल और पृथ्वीराज की त्योरियाँ चढ़गई। नेत्र रक्त वर्ण हो गये। भुजायें फड़क उठीं, परन्तु सारंगदेव का संकेत पाकर तीनों चुप-चाप उठकर चल दिये। साँगा ने दोनों की मानसिक स्थिति का आभास पा लिया था। अतएव वह उनसे कुछ दूर सारंगदेव के साथ-साथ चलने लगा। दिन काफी चढ़ आया था। लगभग दोपहर हो चुकी थी। सूर्य गगन मण्डल में तेजी से चमक रहा था। पृथ्वी तवे के समान जल रही थी। वातावरण अत्यन्त उष्ण था और पृथ्वीराज के हृदय में ईर्ष्याग्नि धधक रही थी। वह सहसा पीछे घूम पड़ा। म्यान से तलवार निकाली और साँगा पर आक्रमण कर दिया। साँगा सचेत न था। तलवार की मुठिया उसके आँख में लगी। आँख से रक्त की धार बह चली। जयमल ने भी तलवार के बार पर वार करने शुरू करदिये। मार्ग में ही भ्रातृ द्रोह का प्रदर्शन होने लगा। दोनों ओर से तलवार चमक रही थी। साँगा अकेला था, परन्तु बड़ी ही कुशलता के साथ दोनों के वारों से अपनी रक्षा कर रहा था। सारंगदेव के बहुत कुछ रोकने पर पृथ्वीराज रुका। सारंगदेव ने उससे कहा—"यह कैसी नासमझी कर रहे हो ? लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?"

'मुझे लोगों के कहने की कोई परवाह नहीं। मै तो इसे अपने मार्ग से हटाना चाहता हूँ।" कहते ही पृथ्वीराज पुन: तलवार के भरपूर वार करने लगा। पुन: किसी तरह पृथ्वीराज को शान्त करके सारंगदेव ने कहा—"अब तुम बच्चे नहीं समझदार हो। क्या भ्रातृ हत्या का पाप करना चाहते हो ? जानते हो पितृ हत्या करने वाले ऊदा की क्या दशा हुई ? क्या तुम भी चाहते हो कि मेवाड़ की जनता तुम्हें भी उसी दृष्टि से देखे जिस दृष्टि से वह ऊदा को देखती थी ?"

"जनता मुझे जिस दृष्टि से चाहे देखे, परन्तु मैं इसे किसी दृष्टि से भी नहीं देखना चाहता। यह मेरे मार्ग का रोड़ा है। मैं इसे हटा कर चैन लूँगा।"

"ज्योतिषी की बात का तुम इतना विश्वास कर गये कि भ्रातृ हत्या पर उतारू हो गये। यदि उसने असत्य कहा हो या भाग्यों की वास्तविक स्थिति को ज्ञान करने में असमर्थ रहा हो तो ?"

"तो फिर भाग्य की वास्तविक स्थिति का ज्ञान कैसे होगा ?"

"इसके लिये भीषम गाँव चलना पड़ेगा।" कुछ सोचकर सारङ्गदेव ने उत्तर दिया।

"भीषम गाँव में क्या है ?"

"वहाँ एक देवी का मन्दिर है। वह बड़ा प्रसिद्ध है। देवी में बड़ी शक्ति है। वहाँ की पुजारिन एक चारण है। वह तन-मन से देवी की उपासना करती है और ऐसा विश्वास किया जाता है कि उसे सिद्धि प्राप्त है। वह जो कुछ बताती है वह सत्य होता है।"

"तो फिर कब चलियेगा भीषम गाँव को ?"

"आज तो अब समय नहीं रहा। दोपहर हो चुकी है। दिन रहते वहाँ पहुँचना कठिन है।"

"तो फिर कल प्रात:काल ही भीषमगाँव चलेंगे।"

"हाँ सूर्य निकलने के पूर्व ही चल देंगे।"

पृथ्वीराज ने अपनी तलवार म्यान में रखली परन्तु उसकी त्योरी चढ़ी ही रहीं। वह साँगा को देखकर मार्ग भर क्रोधित सिंह की तरह गुर्राता ही रहा।

११

देवी का मन्दिर एक अत्यन्त निर्जन स्थान में था। चारों ओर घना जगल था। लम्बे-लम्बे वृक्ष खड़े थे। विशाल पर्वत मध्य में स्थित था। इसी पर्वत में एक भयावह गुफा थी। गुफा पूर्ण अंधकार मय थी। मार्ग दिखाई नहीं देता था। सारंगदेव इसके पूर्व एक बार देवी के दर्शन कर चुके थे, अतएव वहीं मार्ग प्रदर्शन कर रहे थे। गुफा के द्वार पर ही चारों अश्व छोड़ दिये गये। सभी ने धड़कते हृदयों के साथ गुफा में प्रवेश किया। गुफा का अन्धकार बढ़ने लगा। पृथ्वीराज की शंकालु प्रकृति ने प्रश्न किया—"सारंग चाचा हम लोगों को आप कहाँ लिये चल रहे हैं ?" पृथ्वीराज का गम्भीर स्वर निर्जन स्थान में प्रध्वनित हो उठा।

सारंगदेव चुपचाप अग्रसर हो रहे थे। उन्होंने उसका कोई उत्तर न दिया और बराबर आगे बढ़ते रहे। उसका सन्देह विश्वास में परिणत होने लगा। वह तीव्रगति से आगे बढ़ा और मार्ग रोकते हुये कहा—"सर्व प्रथम आप बताइये कि हम लोगों को कहाँ लिये जा रहे हैं ? मैं आपको तब तक अग्रसर न होने दूँगा जब तक मुझे विश्वास नहीं हो जावेगा।"

"किस बात का ?"

"कि हम लोग मन्दिर के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान को तो नहीं जा रहे हैं।"

"निर्मूल शंका से कोई लाभ नहीं। हम लोग देवी के मन्दिर ही चल रहे हैं। बस, अब दाहिने ही घूमना है। समक्ष मन्दिर दिखाई पड़ेगा।"

पृथ्वीराज फिर अनुसरण करने लगे। पचास कदम आगे बढ़ने पर उन्हें दाहिनी ओर मुड़ना पड़ा। आगे ही सहसा एक विशाल मन्दिर दृष्टिगोचर हुआ। मन्दिर की विशालता को देखकर आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक ही था। प्रात:कालीन भगवान भास्कर की स्वर्णिम किरणों से मन्दिर की आभा द्विगुणित हो रही थी। मन्दिर के विषय में ऐसा प्रचलित था कि वह रात्रि में भी इसी भांति चमकता हैं। पृथ्वी की शंका निवारण हो गई। वे मन्दिर के पास पहुँचे। सभी ने नतमस्तक होकर द्वार से ही भक्ति-भावना प्रदर्शित की। नंगे पैर मन्दिर में प्रवेश किया। अन्दर बहुत बड़ा स्थान था। एक ओर दीवाल के सहारे देवी की भव्य प्रतिमा थी। कोई भी दर्शक बिना प्रभावित हुये न रहता था। प्रतिमा के समक्ष लगभग १० गज की दूरी पर एक बड़ी चौकी पड़ी थी उसी चौकी पर पृथ्वीराज और जयमल ने अपना आसन ग्रहण किया। प्रतिमा के निकट ही एक बाघम्बर बिछा हुआ था। साँगा भी उसी पर जाकर बैठ गया। साँगा के पास ही सारंगदेव भी बैठ गये। सभी लोग शांत थे। पुजारिन के आने की प्रतीक्षा करने लगे। काफी देर बैठने के उपरान्त भी जब पुजारिन नहीं आई तो पृथ्वी से न रहा गया। वह व्याकुल हो उठा। उसकी व्याकुलता ने प्रश्न करने पर उसे बाध्य कर दिया—"हम लोगों को कब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ?"

"बस ! आ ही रही होगी।"

"मुझसे तो अब प्रतीक्षा नहीं की जाती।"

"थोड़े समय और प्रतीक्षा करेंगे। यदि वह नहीं आयेगी तो चल कर बुला लायेंगे।"

"क्या यहीं कहीं पास ही रहती है ?"

"हाँ पास तो नहीं रहतीं, परन्तु कोई विशेष दूर भी नहीं है।"

"तो फिर अभी जाकर क्यों नहीं बुला लाते ?"

सारङ्गदेव साँगा को अकेले छोड़ना नहीं चाहते थे और उनके

अरिरिक्त पुजारिन का निवास स्थान भी कोई नहीं जानता था। बात टालने के उद्देश्य से कहा—' लोगों की ऐसी धारणा है कि वह किसी के बुलाने से नहीं आती है।"

"परन्तु अभी तो आप उसे बुलाने की बात कह रहे थे ?"

"यह सोच कर ऐसा कह रहा था कि मेवाड़ के भावी शासक के बुलाने पर अवश्य आयेगी !"

"आप किसे समझते हैं मेवाड़ का भावी शासक ?"

"तुम्हें !"

"तो क्या चलूँ मैं आपके साथ ?"

"यदि आवश्यकता समझूँगा तो अवश्य ले चलूँगा।"

पृथ्वीराज शान्त हो गया।

सारङ्गदेव भी शान्त थे। मन्दिर में पुनः नीरवता व्याप्त होगई। सहसा पुजारिन ने प्रवेश किया। उसके सम्मान में सभी खड़े होगये। पृथ्वी तथा जयमल का खड़ा होना आश्चर्यजनक था, परन्तु पुजारिन का व्यक्तित्व इतना दिव्य था कि उससे प्रभावित हुये बिना वे न रह सके। उनके द्वारा प्रदर्शित किये गये सम्मान की ओर बिना ध्यान दिये वह सीधे देवी के चरणों में नत मस्तक हो गई। दीर्घ काल तक वह उसी स्थिति में खड़ी रही। सभी शान्त थे। कोई भी बोलने का साहस नहीं कर रहा था।

पुजारिन ने मस्तक उठाया। दृष्टि खोली। उपस्थित लोगों की ओर देखकर बैठने का संकेत किया। उनके बैठने के उपरान्त उसने प्रश्न किया—"आप लोग कौन हैं ?"

प्रश्न सुन कर सारङ्गदेव ने शिष्टता पूर्वक उत्तर दिया—ये तीनों महाराणा रायमल के पुत्र चित्तौड़ के राजकुमार हैं।"

"क्या जानने की अभिलाषा लेकर आपलोग देवी जी की शरण में आये हैं ?"

"ये जानना चाहते हैं कि चितौड़ की गद्दी किसे प्राप्त होगी ?"

प्रश्न सुनकर पुजारिन स्तब्ध होगई। उसके नेत्र बन्द हो गये। कुछ समयोपरान्त उसके ओंठ हिले और कुछ अस्फुट शब्द भी निकले। सम्भवतः वह स्तुति कर रही थी। सभी की दृष्टि पुजारिन पर थी। नेत्र बन्द किए ही वह बोली—"सर्व प्रथम कौन जानना चाहता है ?"

"मैं !" खड़े होकर पृथ्वीराज ने कहा।

"तुम्हारा नाम पृथ्वीराज है ?"

"हाँ, ।" पुजारिन मुँह से नाम सुन कर पृथ्वीराज आश्चर्य में पड़ गया। उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि पुजारिन जो कुछ भी कहेगी वह सत्य होगा।

"तुम मेवाड़ के शासक नहीं बन सकोगे। किसी सम्बन्धी के हाँथ से तुम्हारी मृत्यु है।"

पुजारिन के ये शब्द सुनकर पृथ्वी सन्न रह गया। वह कुछ भी न बोल सका। पुजारिन ने कहा—"जयमल तुम्हारे भाग्य में भी चित्तौड़ का शासन नहीं है। तुम भी शत्रु द्वारा ही मारे जाओगे।"

जयमल भी सम्बोधित किए जाने पर खड़ा रोकर सुन रहा था। साँगा को सम्बोधित करती हुये बोली—"तुम दीर्घकाल तक चित्तौड़ की गद्दी पर शासन कर सकोगे। तुम्हारे साथ बैठा हुआ सारंगदेव भी अल्पकाल के लिए राज्य सुखोपभोग करेगा।"

पुजारिन ने नेत्र खोल दिये। उसकी मुद्रा बड़ी ही भयावह हो गई थी। वह साक्षात् देवी का स्वरूप प्रतीत हो रही थी। सारंगदेव ने तत्क्षण तलवार से उँगली काटी और रक्त पुजारिन पर छिड़क दिया। रक्त गिरते ही वह शान्त हो गई।

साँगा के विषय में पुजारिन की बात सुनते ही पृथ्वी के नेत्र लाल हो गये। उसके नथुने फड़कने लगे। स्वांस की गति तीव्र हो गई। उसका रौद्र रूप देखते सारंगदेव ने भावी

संकट की कल्पना कर ली। वह सचेष्ट हो गये। सांगा भी पिछली घटना से सचेष्ट रहने लगा था। वह भावी संकट के लिए प्रस्तुत था। पृथ्वीराज की लम्बी और भारी तलवार के वार पर वार सांगा पर होने लगे। सांगा भी कम न था। उसकी तलवार भी द्रुतवेग से मन्दिर में चल रही थी। जयमल भी पृथ्वी का साथ देने लगा। सारंगदेव इस स्थिति से घबड़ा गये परन्तु शीघ्र ही मानसिक संतुलन ठीक करते हुये अपनी तलवार सम्हाली और सांगा के रक्षार्थ युद्ध करने लगे। पृथ्वी दाँत पीसता और भारी तलवार से वार करता। उसकी दहाड़ मन्दिर में प्रध्वनित हो रही थी। चारो रक्तवर्ण हो रहे थे। पुजारिन भय से कांप रही थी। वह धीरे से दीवाल के सहारे वहां से खिसक गई।

तलवारें चमक रहीं थीं। कभी-कभी आपस में टकराने की ध्वनि भी हो रही थी। दोनों ओर से प्राण घातक वार हो रहे थे। रक्त की धारा बह निकली थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि आज महाकाली कपाली का खप्पर राजपूतों के रक्त से बिना भरे हुये न रहेगा। नर-मुण्ड चढ़ने की स्थिति निकट थी। सारंगदेव की स्थिति भयंकर थी। वह जयमल तथा पृथ्वीराज के आक्रमणों से साँगा की रक्षा करते और बीच-बीच में यह भी कहते—"यह क्या नादानी कर हो। तुम एक ही पिता की सन्तान हो। एक दूसरे की हत्या करने पर क्यों तुले हुए हो ? ये तलवारें भाई-भाई के लिये नहीं हैं। इनसे तो शत्रुओं के सिर कटने चाहिये। मातृ स्नेह को क्यों कलंकित कर रहे हो ? जरा सोचो, विवेक से काम लो। राम लक्ष्मण का पारस्पिरिक भ्रातृ-स्नेह स्मरण करो। भरत का त्याग मत विस्मरण करो। तुम लोग उसी देश की संतान हो। मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता तुम्हें पुकार रही है। देश शत्रुओं से अरक्षित है। उसकी रक्षा करो।"

"पहले मैं अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करलूँगा तब मातृ-भूमि की

चिन्ता करूँगा ।" पृथ्वी ने कहा और पुनः द्रुतवेग से प्रहार करने लगा ।

सारङ्गदेव की वाणी का कोई प्रभाव नहीं हो रहा था । तलवारें एक दूसरे पर गिर रही थीं । सारङ्गदेव की व्याकुलता बढ़ रही थी । उसे क्रोध आ गया । फुफकारते हुये बोला नहीं मानोगे मेरी बात । तो लो, आज मैं ही अपनी बलि देवी के चरणों पर चढ़ा दूँ ।" कह कर सारङ्गदेव पृथ्वीराज से घमासान युद्ध करने लगे ।

दूसरी ओर सांगा और जयमल संघर्ष कर रहे थे । साँगा के पाँच घातक चोटें लग चुकी थीं । उसके वस्त्र रक्त से तर थे । जीवन के अंतिम क्षण समझ कर वह भयंकर तलवार चलाने लगा । नेत्र बन्द थे । घमासान प्रहार कर रहा था । जयमल की ओर से हटकर वह पृथ्वी के सामने आ गया । पृथ्वी भी अपने शत्रुओं को समक्ष पाकर दहाड़ा और अचूक प्रहार किया परन्तु भाग्यवश सांगा पीछे हट गया और सारङ्गदेव सामने आ गया । वह वहीं धराशायी हो गये । उनके गिरते ही एक क्षण के लिये तलवारें रुकी, परन्तु पुनः चलने लगीं । अपने रक्षक को गिरते हुये देख कर साँगा ने अपने प्राणों का मोह त्याग दिया और अचूक प्रहार करने लगा । पृथ्वी पीछे हट रहा था । साँगा की मार विकट थी । वह पीछे हटता गया । साँगा बढ़ता गया । अन्ततोगत्वा सांगा का एक ऐसा प्रहार हुआ कि पृथ्वीराज भी धराशायी हो गया । पृथ्वीराज के गिरते ही जयमल किंकर्तव्य बिमूढ़ हो गया । उसकी तलवार रुक गई । इसी बीच में सांगा वहां से भागा और बाहर आकर घोड़े पर सवार हुआ । घोड़ा उसे लेकर द्रुतवेग से उड़ चला ।

कुछ समय पश्चात् जयमल की कर्तव्य बुद्धि जाग्रत हुई । उसने चारो ओर दृष्टि दौड़ाई परन्तु साँगा कहीं भी दिखाई न पड़ा । वह तत्क्षण बाहर निकला और अश्व पर सवार हुआ । परन्तु किस ओर जायें

यह सोच ही रहा था कि पृथ्वी पर रक्त की बूँदें दिखाई पड़ीं । उसने उसी ओर अपना घोड़ा बढ़ा दिया ।

सेवंती ग्राम के बाहर कुछ शिविर लगे हुये थे । शिविर के पास ही एक विशाल वट वृक्ष था । उसके नीचे कुछ सैनिक बैठे वार्तालाप कर रहे थे । उनमें से कुछ की दृष्टि अपनी ओर द्रुतवेग से आते हुये अश्व पर पड़ी । अश्व पर रक्त रञ्जित मनुष्य को देखकर वे उठ खड़े हुये और आगे बढ़ कर घोड़े को पकड़ लिया । घोड़े से अचेत व्यक्ति को उतारा और वट वृक्ष के नीचे चबूतरे पर लिटाया । पानी मँगाकर उसका मुँह धोया । उसे कुछ चेतना आई । विस्फरित नेत्रों से वह सबको देखने लगा । उसे भयातुर देख कर एक सैनिक ने कहा—"घबड़ाओ नहीं, हम तुम्हारी सहायता करना चाहते हैं । तुम कौन हो ?"

उस सवार ने अपना मुँह खोल दिया ।

उसके मुँह में पानी डाल दिया गया । पानी की एक घूँट निगलते ही उसके मुँह से निकला—"मैं·········मैं··········।"

"हाँ, हाँ, बोलो । तुम अपने को यहाँ निर्भय समझो ।"

"मैं साँगा हूँ ।"

"साँगा ।·················मैं ठीक नहीं समझ सका ।"

"मेरा नाम संग्रामसिंह है ।" लेटे ही साँगा ने उत्तर दिया ।

"तो आप मेवाड़ के राणा रायमल के पुत्र हैं ?"

"हाँ, मैं उन्हीं का अभागा पुत्र हूँ ।"

"परन्तु तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ?"

संग्राम ने पुनः जल माँगा । जल पीने के उपरान्त कुछ अस्वस्थ हुये और उठने का उपक्रम किया । परन्तु रक्तश्राव इतना अधिक हो चुका था कि उठ न सके । प्रमुख आश्रयदाता राजपूत राठौर मोकल

का पुत्र बीदा जतमल था। उसने साँगा की जब यह दशा देखी तो उसका हृदय करुणा से भर गया। नेत्र सजल हो उठे। असहाय की सेवा करना अपना धर्म समझ कर बीदा ने उसके घावों को धोया। पट्टी बांधी गई। सभी उपलब्ध औषधियों का प्रयोग किया गया। साँगा भी रुक-रुक कर अपनी करुण कथा सुना रहा था। सभी घावों पर पट्टियां बँध चुकी थीं। साँगा को विशेष आराम मिला था। उसकी झपकी लगने को थी कि सहसा जयमल का तीव्र स्वर उसके कानों में पड़ा। वह कह रहा था—"मुझे इसे सौंप दो।"

"तुम कौन हो?" बीदा पूँछ रहा था।

"इससे तुम्हारा तात्पर्य ?"

"शरण में आये अतिथि को मैं अरक्षित हाँथों में नहीं सौंप सकता।"

"मैं उसके रक्त का प्यासा हूँ। आप उसको मुझे सौंप दीजिये।"

"इतना रक्त बहा कर अभी आपकी प्यास नहीं बुझ सकी है ?"

"हृदय की प्यास रक्त से नहीं प्राण से बुझती है। मैं जब तक उसे यमलोक नहीं पहुँचाऊँगा तब तक मेरा क्रोध शान्त नहीं होगा।"

बीदा जयमल का रक्त-रञ्जित वेश देखकर समझ गया कि यह सारंग का भाई ही उसे खोजता हुआ इधर आ निकला है और यदि वह उसे सौंप देगा तो साँगा अपने प्राणों से हाँथ धो बैठेगा। अतएव उसने कुछ सोच कर कहा—"मैं अपने धर्म से बिमुख न होऊँगा।"

"तो आप को मेरा कोप भाजन बनना पड़ेगा।"

"उन्हें कोप भाजन नहीं बनना पड़ेगा। मैं आता हूँ।" सांगा ने जयमल को ललकारा और लपक कर उसके पास आ गया। कोई यह सोच भी न सकता था कि एक सैनिक जो अभी तक अर्धमृतप्राय पड़ा पानी मांग रहा था वह इतनी शीघ्र संग्राम के लिये प्रस्तुत हो जायेगा।

अरण्य के क्षुधातुर केहरी की भाँति साँगा गरजा और तलवार चमकने लगी। जयमल तो पहले से ही प्रस्तुत था। प्रहार पर प्रहार हो रहे थे। दोनों क्रोध से पागल हो रहे थे। बीदा उस नाटकीय परिवर्तन पर आश्चर्य प्रकट कर रहा था। उसने सांगा को शान्त करने के उद्देश्य से कहा -"तुम बहुत घायल हो चुके हो। शरीर रक्त से अधिक निकल चुका है। तुम शान्त हो जाओ। मैं इन्हें अभी शान्त कर दूँगा।"

"आप इसे नहीं जानते हैं। यह मेरा भाई जयमल है। जब तक दो में से एक नहीं समाप्त हो जाता तब तक झगड़ा नहीं शान्त होने का।" पैंतरे बदलते हुये साँगा ने कहा।

"आश्चर्य की बात है कि आप लोग एक ही पिता की संतान हैं और फिर भी एक दूसरे के रक्त के प्यासे। जयमल जी आप क्यों ऐसा अन्याय कर रहे हैं?"

"मैं अन्याय कर रहा हूँ?"

"और नहीं तो क्या? मृतप्राय भाई पर हाँथ उठाना अन्याय ही कहा जायेगा।"

"मृतप्राय मनुष्य की तलवार में इतनी शक्ति नहीं होती।"

"यह तलवार की शक्ति नहीं जीवन की निराशा है जो इतने वेग से युद्ध के लिये प्रेरित कर रही है।"

"राजपूत शत्रु को समक्ष पाकर कभी नहीं छोड़ता है।" जयमल की तलवार चल रही थी और वह बीदा से वाद-विवाद भी कर रहा था।

बीदा ने समझ लिया कि जयमल नहीं मानने का। उसने पुनः साँगा की ओर मुड़कर कहा—"जयमल तुम्हारा छोटा भाई है। छोटे की चार बातें सह लेना बड़ों का धर्म है। छोटों पर क्रोध करना नादानी है। यदि कुछ हो गया तो संसार तुम्हें ही दोष देगा।"

बीदा की बात का सांगा पर प्रभाव पड़ा। उसने अपनी तलवार

रोक दी और मुड़ कर कहा---"बीदा जी मुझे आप की बात स्वीकार है, परन्तु जयमल अपनी आदत से बाज नहीं आयेगा।"

जयमल भी कुछ सोचकर रुक गया और बीदा को अपनी ओर आने का संकेत किया। बीदा ने उसे शान्त समझा और उसके पास आ गया। जयमल उसे लेकर थोड़ी दूर और हट गया और धीरे से कहने लगा--"मैं अभी तक आपको पहचान नहीं पाया था। आप तो मोकल के पुत्र हैं। वे तो बड़े बीर थे। राजपूत उनका बड़ा सम्मान करते थे। मैं चाहता हूं कि आप इस समय मेरी कुछ सहायता करिये।"

"मैं तो आप की सेवा करने को सदैव तत्पर हूँ। मेरे योग्य जो सेवा हो मुझे आज्ञा दीजिये।"

"देखिये ! दूसरों के झगड़े में पड़ना बुद्धिमानी नहीं है। आप इस अवसर से लाभ उठाइये।"

"आपके कहने का आशय ?"

"मेरा तात्पर्य है कि मेरा साथ दो……साँगा को यहीं समाप्त कर दो। उसके बाद मेवाड़ का राज्य हमारा और एक बड़ी जागीर आपकी।"

जयमल की बात सुनते ही बीदा आपे के बाहर हो गया, नेत्र रक्त-वर्ण हो गये, भुजायें फड़कने लगीं और क्रोध से शरीर प्रकम्पित हो उठा। वह दो पग पीछे हटे और मस्तक पर बल डालते हुये उन्होंने पूछा—"जयमल ! होश में तो हो ?"

"क्यों ?"

"आप जानते हैं कि किससे बात कर रहे हैं ?"

"हाँ, जानता हूँ और भली भाँति जानता हूँ।"

"यदि जानते होते तो ऐसी बात मुँह से कभी न निकालते। मैं राठौर हूँ। राठौर कभी इतना नीच नहीं हो सकता कि एक जागीर के लालच में अपने धर्म से बिमुख हो जाय। मैं सदैव अपने प्राण हथेली पर लिये रहता हूँ। मुझे मरने-मारने की कोई चिंता नहीं।"

"तो फिर लो सम्हालो वार।" कहकर जयमल ने तलवार का भरपूर वार बीदा पर कर दिया। वार अचानक तथा अचूक था। बीदा उसे सह न सका। इसके पूर्व कि उसके सैनिक जयमल के ऊपर टूट सकें जयमल भाग खड़ा हुआ। बीदा का शरीर जल विहीन मछली कीभाँति तड़फता रहा। कुछ क्षणोपरान्त बीदा के अतिथि रक्षाधर्म पर बलिदान होने की सूचना देने के लिये सूर्य देवलोक को प्रस्थान कर गये।

१२

सारंगदेव की मूर्छा जब दूर हुई तो उन्होंने चारो ओर दृष्टि दौड़ाई। पृथ्वीराज के अतिरिक्त कोई दृष्टिगत न हुआ वह धीरे से उठे और पृथ्वीराज के पास तक गये। वह भी अचेतनावस्था में था। ध्यान से उसकी ओर देखकर साँरगदेव मन्दिर के बाहर हो गये, घोड़े पर सवार हुये और चित्तौड़ की ओर चल दिये।

राणा जी अपने कक्ष में उपस्थित थे। पास ही झालारानी भी बैठीं थी। सारङ्गदेव को रक्तरंजित वस्त्रों एवं विकृतावस्था में देखकर राणा जी आश्चर्यान्वित हो उठे और पूँछा—"यह तुम्हारी क्या दशा हो गई है ?"

"आपको कुछ भी ज्ञात नहीं ?"

"नहीं तो।"

सारङ्गदेव समझ गये कि अभी तक कोई भी राजकुमार वापस नहीं आया है। स्थान ग्रहण करते हुये मन्दस्वर में कहना प्रारम्भ किया—

"तीनों राजकुमारों के साथ मैं भी प्रात:काल भीषम गाँव के मन्दिर में गया था।"

"किसलिये ?"

"वे तीनों यह जानना चाहते थे कि आपके पश्चात् मेवाड़ पर किसका राज्य होगा।"

"अच्छा, तो राजा बनने के स्वप्न आज से ही देखे जाने लगे।"

"आज से ही नहीं, राजा बनने का स्वप्न तो उसी दिन से देखा जारहा है जिस दिन पृथ्वी ने सुलतान की सेना को परास्त किया था।"

" तो यों कहो कि पृथ्वी अधिक उतावला प्रतीत होता है।"

"जी हाँ ? पृथ्वी में ही व्यग्रता अधिक है।" सारङ्ग ने पीड़ा को पीते हुये उत्तर दिया।

राणा जी को सारंगदेव के कष्ट की अनुभूति हो गई। उन्होंने सहानुभूति प्रदर्शित करते हुये कहा—"सम्भवत: इस समय तुम्हें बोलने में विशेष कष्ट हो रहा है। मन्दिर की घटना का संक्षेप में वर्णन करके आप विश्राम करिये।"

"आपका अनुमान सही है। घावों में इतनी पीड़ा हो रही है कि बैठा नहीं जाता, फिर भी पुजारिन ने बताया है कि साँगा ही मेवाड़ का शासक बनेगा। इसे सुनते ही पृथ्वी और जयमल दोनों साँगा पर टूट पड़े। मैं उन्हें समझाता और साँगा की रक्षा करता रहा। उसी बीच में पृथ्वी ने अनेक वार मुझपर किये। मैं उन्हें सहता गया। एक वारमें मैं धराशायी होगया। इसके पश्चात् क्या हुआ-मुझे कुछ भी ज्ञात नही। काफी देर के पश्चात् जब मेरी चेतना वापस आई तब मैंने पृथ्वी को वहीं पास ही अचेतनावस्था में पाया।"

"और साँगा तथा जयमल का क्या हुआ ?"

"उनके विषय में मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं।" सारङ्गदेव ने सिर नीचा किये ही उत्तर दिया।

सारङ्गदेव अपने को ही इस घटना का उत्तरदायी समझते थे। उनकी आत्मा ग्लानि अनुभवकर रही थी। राणा एक क्षण तक मौन होकर कुछ सोचते रहे फिर बोले—"अच्छा, अब जाओ। तुम्हें इस समय विश्राम और उपचार की आवश्यकता है।"

"परन्तु राजकुमारों का क्या होगा ?"

"उसकी चिन्ता न करो। उसका सब प्रबन्ध मैं कर लूँगा।"

सारङ्गदेव के चले जाने के पश्चात् रानी की ओर उन्मुख होते हुये राणा ने कहा—"सुना, अपने पुत्रों की करतूत।"

"सारंग की करतूत मेरे पुत्रों के मत्थे क्यों मढ़ रहे हैं आप ?"

"तो तुम्हारा तात्पर्य है कि इस घटना के लिये सारङ्ग दोषी है?"

"आप उसे केवल दोषी ही ठहराते हैं ? वह हत्यारा है, हत्यारा।"

"क्या तात्पर्य ?"

"उसी ने मेरे पुत्रों की हत्या की है।"

"सारङ्ग के प्रति ऐसी धारणा बनाने का आधार ?"

"आधार है गद्दी का लालच।"

"सारङ्ग ऐसा कभी नहीं कर सकता।"

"सारङ्ग पर आपको इतना विश्वास है और मेरे पुत्रों के पारस्परिक भ्रातृ प्रेम-पर तनिक भी नहीं ?"

"हाँ, विश्वास न होने का कारण है।"

"क्या, तनिक मैं भी तो सुनूँ वह कारण ?"

"पृथ्वी को पहले ही अपने पराक्रम पर गर्व था और सुलतान की सेना को परास्त करने के पश्चात् तो उसे अपने शौर्य पर विश्वास भी हो गया। ऐसी स्थिति में राजा बनने का स्वप्न स्वाभाविक ही है। और प्रत्येक नवयुवक राजकुमार अपने स्वप्नों को साकार रूप में देखने के लिये हर सम्भव प्रयास करता है।"

"तो आपके कहने का आशय है कि इस संघर्ष का कारण पृथ्वी है ?"

"मुझे तो यही प्रतीत होता है।"

"हो सकता है कि आपका कथन सत्य हो परन्तु साँगा और जयमल का भी तो कुछ पता नहीं।"

"उसी की तो मुझे भी चिन्ता है। हो सकता है कि साँगा ने पृथ्वी राज को धराशायी करदिया हो।"

"यदि ऐसा हुआ होता तो वह सीधे यहाँ आता।"

"जयमल कहीं उससे संघर्ष न कर बैठा हो।"

"जयमल से तो ऐसी आशा नहीं है। वह तो अपने दोनों ही भाइयों के प्रति पूज्यभाव रखता है।"

"यह ठीक है, परन्तु वह पृथ्वी के शत्रु को फूटी आँखों भी नहीं देख सकता।"

"कहीं ऐसा न हो कि उन दोनों की भी पृथ्वी की ही दशा हुई हो।"

"सम्भव है।"

"तब तो मेरी कोख ही सूनी हो जायेगी। आप, शीघ्र ही उनकी खोज कराइये।"

"इस अँधेरीरात में और फिर यह भी तो ज्ञात नहीं कि वे दोनों गये कहाँ ?"

"पृथ्वी तो मन्दिर में ही मिल जावेगा और वे भी दोनों कहीं पास में ही होंगे।"

राणा जी राजकुमारों की खोज के प्रबन्धार्थ उठने ही वाले थे कि द्वार पर जयमल खड़ा दिखाई दिया। उसकी साँसें तीव्रता से चल रहीं थीं। रानी तत्क्षण उठकर उसके पास गई और कण्ठ से लगाते हुये पूँछा—

"साँगा कहाँ है ?"

"....... ....।"

"बोलता क्यों नहीं ? सांगा को तूने कहां छोड़ा ?"

"........................।"

"तेरी खामोशी बता रही है कि सांगा को कुछ हो गया है।"

"पृथ्वी भइया ही तो उनसे लड़े थे।"

"तो क्या सांगा भी इस संसार में नहीं है।"

"नहीं, वह अभी जीवित हैं।"

"तो फिर कहां है ?"

"सेवंत्री ग्राम में।"

"तो क्या तू भी उसी के साथ गया था ?"

"हाँ।"

"अपने साथ उसे भी क्यों नहीं लाया ?"

"मैं तो उन्हें वापस लाना चाहता था, मगर मोकल के पुत्र बा?. के कारण ऐसा न कर सका।"

"क्यों ?"

"उसने समझा कि मैं साँगा भइया का पीछा कर रहा हूँ, इस लिये उसने मेरे ऊपर आक्रमण कर दिया।"

"फिर क्या हुआ ?"

"अब तुम्हीं बताओ मैं अपने ऊपर आक्रण करने वाले को कैसे छोड़ता ?"

"तो क्या तुमने उसे मार डाला ?" राणा ने व्यग्र होकर प्रश्न किया।

"हां।"

"बहुत बुरा हुआ।"

"इसमें बुराई की क्या बात है ?" रानी ने प्रश्न किया।

"मोकल बड़ा प्रतापी राठौर था। उसने एक मोकल नगर बसाया था। उसका पुत्र भी मेरा बड़ा आदर करता था। सकट के समय सदैव सहायता के लिये तैयार रहता था।"

"परन्तु आक्रमणकारी को कैसे छोड़ा जा सकता है ?"

"मुझे तो कुछ दाल में काला नजर आ रहा है।"

"तो क्या पिता जी मैं झूठ बोल रहा हूँ ?" जयमल ने प्रश्न किया।

"यदि तू झूँठ नहीं बोल रहा है तो क्या तेरी बीदा से कोई बात चीत नहीं हुई ?"

"..................।"

"मौन क्यों हो गया ? बोलता क्यों नहीं ?,'

"बता बेटा, सही-सही बतादे । जब कर नहीं तो डर किस बात का ?" रानी ने जयमल को धैर्य बंधाने की दृष्टि से कहा ।

"बोलेगा क्या, झूंठ बोलने वाले में कहीं साहस होता है । मुझे तो साँगा के हत्यारे के लक्षण इसमें दृष्टिगोचर हो रहे हैं ।"

"क्या राणा जी का कथन सत्य है ? " रानी ने कड़े स्वर में प्रश्न किया । जयमल ने नकारात्मक उत्तर सिर हिलाकर प्रगट किया ।

"स्वर क्यों नहीं फूट रहा है ? क्या गूंगा हो गया है ?" रानी ने क्रोध में ही कहा । तो बता साँगा कहां है ?"

"वहीं सेवंत्री ग्राम में ।"

"बीदा को मारने के बाद तो साँगा को साथ ला सकता था ?"

"बीदा के गिरते ही उसके सैनिक मेरी ओर झपटे। मैं अपनी जान बचा कर भाग आया ।"

"और बड़े भाई को उन्हीं को सौंप आया ?" रानी ने कहा

"वे साँगा को कोई भी हानि नहीं पहुँचायेंगे । उसी की रक्षा के लिये तो उन्होंने मेरे ऊपर आक्रमण किया था । "

"सुन लिया, जो मैं कहता था वही बात सच निकली न । छिपाने का बहुत प्रयास किया परन्तु छिपा न सका । यह सांगा के रक्त का प्यासा वहां पहुँचा होगा । बीदा ने साँगा के रक्षार्थ इसे रोका होगा । इस पर इसने उसे मार डाला । धन्य है राठौर मोकल ! जिसने कर्तव्य पर मर मिटने वाले पुत्र को जन्म दिया । "कह कर राणा शान्त हो गये ।"

"राणा जी का कथन सत्य है ?" रानी ने अत्यन्त कड़े स्वर में

पूछा।

"वह भी तो पृथ्वी भइया को मार कर भागे थे।"

"तो तूने पृथ्वी का बदला लेने के लिए साँगा का पीछा किया था?" रानी ने फुफकारते हुये कहा।

जयमल मौन था। उसका अपराध स्पष्ट हो चुका था। अब भी वह सिर नीचा किये हुये खड़ा था। झालारानी का शरीर क्रोध से काँप रहा था। उनके दोनों पुत्रों साँगा और पृथ्वी की स्थिति संदिग्ध थी। वह निश्चय नहीं कर पा रहीं थी कि क्या करें। वह वहां से हट कर राणा जी के पास गई और कहा -"अब क्या होगा?"

"प्रात: होते ही साँगा की खोज करवाऊँगा।"

रानी तथा राणा के हृदय की नैराश्य-कालिमा उस रात्रि की कालिमा गहनतर थी।

१३

सांगा ने सेवंत्री ग्राम में अधिक ठहरना उचित न समझा। बीदा भी जो उसका वास्तविक रक्षक था, इस असार संसार से बिदा हो चुका था। यद्यपि उसका शरीर साथ नहीं दे रहा था तथापि अपने को अरक्षित समझकर वह वहां से चल दिया। सांगा के दो ही साथी थे। एक घोड़ा और दूसरी तलवार। घोड़े की पीठ थपथपाई और सवार हो गया। घोड़ा मन्द गति से चल दिया। रात्रि बन के एक चट्टान पर जाकर व्यतीत की, क्योंकि एक तो शारीरिक पीड़ा थी और दूसरे वन्य पशुओं का भी भय था। घोड़ा और वह स्वयं भूखे थे। स्वयं तो क्षुधा का कष्ट सह सकते थे, परन्तु अपने प्रिय अश्व की यह दशा उनके

लिए असह्य थी। प्रातः उसके भोजन की व्यवस्था के लिये इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई, परन्तु घास के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न दिया। वह उसी कटार से घास काटने लगे, जिससे शत्रुओं के अंगों को काटते थे। घास लाकर घोड़े के सामने डाल दी परन्तु एक मुंह से अधिक वह न खा सका और वह भी सम्भवतः इसलिए कि उसके स्वामी लाये थे। साँगा मन ही मन सोचने लगे कि राजमहल में बढ़िया भोजन पाने वाला केवल घास कैसे खा सकता है ? स्वयं साँगा की क्षुधाग्नि तीव्र हो रही थी। पास ही कुछ वृक्ष थे। जिनके फल खाकर किसी प्रकार मन बहलाया और घोड़े पर सवार हो आगे चल दिये। उसी प्रकार अनेक दिन और अनेक रात काट कर वह गोड़वाड़ पहुँचे। वहाँ रुक कर अपना ठीक से उपचार कराया और जब पूर्ण स्वस्थ हो गये तो वहाँ से भी चल दिये।

सांगा का जीवन बड़ा कष्टमय था। कभी भोजन मिलता और कभी-कभी कई दिन तक कुछ जंगली फलों के सहारे ही मन बहलाना पड़ता। ऐसी स्थिति में घोड़ा भारस्वरूप प्रतीत हो रहा था। उसे भूखा रखकर वह कुछ भी न खा पाते थे। अतएव घोड़े को त्यागने का विचार किया। इस विचार के आते ही साँगा भी एक बार काँप उठे। जिस घोड़े ने उनका युद्ध-स्थल में साथ न छोड़ा और जिसने जयमल से रक्षा की उसी को त्यागने का विचार अतीव वेदनामय था, परन्तु परिस्थिति ही ऐसी आ पड़ी थी कि त्यागने का विचार पक्का हो गया।

सूर्य अस्ताचल की ओर चल दिया था। संध्या नायिका अपनी काली साड़ी पहिन कर पृथ्वी पर शनैः शनैः उतरने लगी थी। साँगा ने घोड़े को एक पेड़ से बाँध दिया। पीठ पर हाँथ फेरा और थप-थपाया। स्वामी का प्यार पाकर वह भी हिनहिना उठा। साँगा पग बढ़ाना चाहते परन्तु पग न उठता। वे पृथ्वी में गड़ से गये थे। अन्ततोगत्वा मोह त्यागकर साँगा आगे बढ़े। घोड़ा कातर दृष्टि से उस

की ओर टकटकी लगाकर देख रहा था। वह भी पीछे घूम-घूम कर देख लेता था। परन्तु पग आगे बढ़ रहे थे। घोड़े की हिनहिनाहट साँगा के कान में पड़ी। सहसा पैर रुक गये परन्तु परिस्थिति ने मोह का बन्धन तोड़ दिया और पुन: आगे बढ़ने लगे। घोड़े की हिनहिनाहट शनै: शनै: मन्दतर होती गई।

१४

तारा अपनी अन्तरंग सहेली रत्ना के साथ जलाशय के तट पर बैठी विकसित कमलों के ऊपर मँडराते भँवरों को देख रही थी। रत्ना ने विचारों में खोई हुई तारा से कहा—"राजकुमारी जी तो ऐसे खो गई हैं जैसे इनके पास कोई है ही नहीं।"

"ऐसा क्यों सोचती है री? तू तो मेरे साथ सदैव रहती है। भला, मैं कहीं तेरी उपेक्षा कर सकती हूँ?"

"और उपेक्षा किसे कहते हैं? इतनी देर से पास बैठी हूँ, एक भी बात नहीं की।" रत्ना ने तुनुक कर कहा।

"अच्छा बता क्या बात करूँ?"

"यह भी कोई पूँछने की बात है। कोई ऐसी चर्चा छेड़ो जिससे यह उदासी दूर हो।"

"अच्छा, तो अब तुझे अकेलापन अखरने लगा है?"

"सम्भवत: अपने दिल की ही बात पूँछ रही हैं।" कहकर रत्ना हँस पड़ी। परन्तु तारा हँसी में साथ न दे सकी और गम्भीरता पूर्वक कहा—"रत्ना, इस उम्र में सभी को एक साथी की आवश्यकता होती है, परन्तु कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं जिनके लिए वैयक्तिक सुखों का

त्याग करना पड़ता है ।"

',ऐसी कौन सी चिन्ता मेरी सखी के सिर सवार है ?"

"मैं अपने पिता को सदैव चिन्तित देखकर सोचा करती हूँ कि कौन सा ऐसा कार्य करूं जिससे उनकी चिन्ता दूर हो ।"

"राव जी को अब किस बात की चिन्ता है ?"

"टोड़ा की ।"

"टोड़ा पर तो लल्ला खाँ का अधिकार हो गया है। उसके मिलने की क्या अब भी कोई आशा है ? "

"आशा तो मनुष्य अपनी अंतिम साँस का भी करता है ......।"

"और फिर जिसकी पुत्री इतनी बहादुर हो उसका ....।"

"मैं क्या खाक बहादुर हूँ । अकारण मरी प्रशसा न किया करो ।"

"वाह, बड़े-बड़े भयानक शेरों को एक ही तीर से मार गिराना कोई साधारण बात है ?"

"और नहीं तो क्या कोई बड़ी बहादुरी का कार्य है ?"

"क्यों नहीं ! जिनके सामने बड़-बड़ वीर सरदार जाने में भय खाते हैं, उन्हें मारना कोई हंसी खेल है ?"

"मुझे तो उनका मारना खेल ही जान पड़ता है ।"

"इसीलिये तो कहती हूँ कि तुमने बड़े-बड़ वीर सरदारों के कान काट लिये हैं ।"

"लेकिन लल्ला खाँ के कान तो न काट सकीं !"

"वह तो राव जी के कारण हुआ ।"

"क्यों ?"

"वे तुम्हें युद्ध में साथ ले ही न गये, नहीं तो तुम जरूर उसे परास्त कर देतीं ।"

"सच ।" प्रसन्नता से तारा उछल पड़ी ।

"और नहींतो क्या झूँठ ? मुझेतो पूरा विश्वास है कि यदि रावजी

के साथ तुम होती तो तोड़ा पर कभी भी पठान का अधिकार न होता।"

"तब तो मैं प्रतीज्ञा करती हूँ कि जब तक टोड़ा को स्वतन्त्र न करा लूँगी तब तक ब्याह ही न करूँगी।"

"अरे यह क्या प्रतिज्ञा कर डाली तुमने?" रत्ना ने आश्चर्य पूर्वक प्रश्न किया।

"मैंने ठीक ही प्रतिज्ञा की है।"

"क्या प्रतीज्ञा की है मेरी पुत्री ने? राव जी ने पीछे से आकर प्रश्न किया। राव जी के स्वर को सुनते ही दोनों घूम कर खड़ी हो गईं।

सहसा सन्नाटा छा गया। सारा उत्साह न जाने कहाँ बिलीन हो गया।

"बोलो न, शान्त क्यों हो गईं ?" राव जी ने प्रश्न किया।

"उन्होंने प्रतीज्ञा की है कि जब तक टोड़ा को पठान के हाथों से मुक्त नहीं करा लेंगी तब तक ब्याह नहीं करेंगी।"

"यह कैसी प्रतिज्ञा कर डाली तुमने? जानती हो यह कितना कठिन काम है?"

"हाँ जानती हूँ पिता जी।"

"अभी तुम अबोध हो। जिसकी रक्षा मेरे चार सहस्त्र बीर सैनिक भी न कर सके उसको दूसरे के अधिकार से मुक्त करना कितना कठिन है—इसकी तुम कल्पना नहीं कर सकतीं।"

"पिता जी मुझे मातृभूमि से बढ़ कर किसी से प्रेम नहीं।"

"मातृभूमि से इतना प्रेम होना स्वाभाविक ही है ... ...।"

"तो फिर उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा करना क्या मेरा धर्म नहीं?"

"क्यों नहीं, बेटी! मातृ भूमि की शत्रु से रक्षा करना प्रत्येक का धर्म है, परन्तु जहाँ उतने सैनिक अपने प्राणों की आहुति देकर भी

जिसकी रक्षा न कर सके, वहाँ बेटी, तू अकेले क्या कर सकती है ?"

"जब अग्नि की एक चिनगारी सम्पूर्ण बनको स्वाहा कर सकती है तो मैं अकेले कुछ क्यों नहीं कर सकती ?"

तो क्या तू एक चिनगारी बन कर पठानों को भगा सकती है ?"

"क्यों नहीं कर सकती। जहाँ चाह होती है वहाँ राह स्वतः निकल आती है।"

"अरे ! यह तो रतनसिंह इधर आते हुए दिखाई दे रहे हैं।" तारा दूर से ही आते हुये रतनसिंह को देख लिया था। सभी लोग उसी ओर देखने लगे। रतनसिंह ने पास आकर राव जी के हाथ में एक पत्र दिया। पत्र लेकर वह पढ़ने लगे। पत्र पढ़ते ही उनके चेहरे पर प्रसन्नता सूचक भाव दृष्टिगोचर होने लगे। तारा अपनी उत्सुकता न छिपा सकी और जिज्ञासा व्यक्त की —"किसका पत्र है पिता जी ?"

"जयमल जी का ?"

"क्या लिखा है इसमें उन्होंने ?" जयमल का नाम सुनते ही तारा की उत्सुकता और भी अधिक बढ़ गई।

"तेरे ही सम्बन्ध में लिखा है।"

"मेरे सम्बन्ध में ?"

"हाँ, ले स्वयँ पढ़ ले।" राव जी ने तारा को पत्र देते हुए कहा।

तारा एक साँस में सम्पूर्ण पत्र पढ़ गई और आवेश में आकर बोली—"मैं नहीं समझती थी कि जयमल जी ऐसे संकट के समय भी अपमान करने में नहीं चूकेंगे।"

"इसमें अपमान की कौन सी बात है बेटी ?"

"बिवाह के पूर्व राजपूत की बेटी को देखना अपमान करना नहीं तो और क्या है ?"

राव जी स्तब्ध रह गये। पत्र पढ़ कर उन्होंने सोचा था कि तारा के लिये जयमल से श्रेष्ठ वर और कौन हो सकता है ? मेवाड़ के

भावी शासक को अपनी पुत्री सौंपने की कल्पना ने उन्हें आनन्दित कर दिया था, परन्तु तारा की बात सुनकर उन्होंने भी इस बात पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया और बोले—"तेरा कथन उचित ही है। मैं अभी राणा जी को इसका उत्तर लिखे देता हूँ।" इतना कहकर राव जी वहाँ से चले गये।

राव जी के चले जाने के पश्चात् दोनों पुनः अकेली रह गईं। रत्ना ने गम्भीर होकर कहा—"क्यों नहीं स्वीकार कर लेती ?"

"क्या ?"

"जयमल जी का प्रस्ताव।"

"प्रस्ताव स्वीकार करके अपना अपमान कराऊँ ?"

"तुम्हें हर वस्तु में अपना अपमान ही दृष्टिगोचर होता है।"

"जहाँ इसकी सम्भावना होती है वहाँ ध्यान रखना ही पड़ता है।"

"लेकिन इसमें अपमान की कौन सी बात है ?"

"किसी राजपूत लड़की का विवाह के पूर्व देखा जाना।"

"देखने में क्या बुराई है ?" पहिले तो स्वयंवर हुआ करते थे जिसमें सभी लोग विवाह से पूर्व देखते थे।"

"स्वयम्बर में स्वयं लड़की वर का चुनाव करती थी और इसमें वर महाशय लड़की को पसन्द करने आवेंगे।"

"तो पसन्द करने में कौन सा अपमान हुआ जाता है ?"

"और यदि न पसन्द आई तो ?"

"तुम भी कैसी बातें करती हो। ऐसा भला कौन होगा जो तुम जैसी सर्वगुण सम्पन्न सुन्दरी को न पसन्द करेगा।"

"ऐसा न कहो। संसार में सब प्रकार के प्राणी होते हैं और फिर मैं जयमल के साथ विवाह भी करना नहीं चाहती।"

"यह तुम क्या कह रही हो ? चित्तौड़ के भावी शासक के साथ ब्याह नहीं करना चाहती हो ?"

"नहीं भ्रातृघाती के साथ मैं किसी भी मूल्य पर ब्याह नहीं कर सकती।"

'तुम्हें समझ सकना बड़ा कठिन है। किस बात के गर्भ में क्या रहस्य है इसका जान सकना सब के बस की बात नहीं। अच्छा अब चलो चलें। बहुत देर होगई यहाँ बैठे हुये।"

रत्ना के साथ तारा वहाँ से चलदी

१५

प्रात:कालीन-बाल रवि की स्वर्णिम किरणें सृष्टि के कण-कण का स्पर्श कर रही थीं। सम्पूर्ण प्रकृति खिल उठी थी। किसान अपने कर्मक्षेत्र खेतों की ओर चल चुके थे। एक गड़रिया भी एक हाँथ में भोजन की पुटकिया लिये दूसरे हांथ के डंडे से भेड़ों को बाड़े से निकाल रहा था। भेड़ें उन्मुक्त वातावरण में विचरण के लिये उछलती-कूदती बाहर आरही थीं। जैसे ही गड़रिया भेड़ों को बाहर करने के पश्चात आगे बढ़ा वैसे ही एक लम्बे-चौड़े आदमी को सामने खड़े देखा। नीचे से ऊपर तक भली भाँति देखने के पश्चात् गड़रिये ने पूछा—"तुम कौन हो?"

"एक राजपूत।"

"यह तो मैं भी देख रहा हूँ कि तुमएक राजपूत हो, लेकिन मेरा मतलब है यहाँ किसलिये खड़े हो?"

"काम की खोज में?"

"क्या मतलब?"

"मैं काम करना चाहता हूँ।"

"काम के लिये तो सारा संसार पड़ा है जितना चाहो कामकरो।"

"लेकिन मैं उसके बदले में भी कुछ चाहता हूँ।"

"वह क्या?"

"पेट भर रोटी।"

"पेट भरने के लिये इस गांव में मारे-मारे फिरते हो? भगवान ने लम्बा-चौड़ा शरीर दिया है। चित्तौड़ क्यों नहीं चले जाते? राणा जी तुम्हारे जैसे नौजवानों को देखकर बहुत खुश होते हैं। वहाँ तुम्हें वह सेना में भर्ती करलेंगे।"

"लेकिन मैं सेना में नहीं भर्ती होना चाहता।"

"क्यों, क्या मरने से डरते हो?"

"मरने से तो नहीं डरता लेकिन मुझे लड़ना-झगड़ना पसन्द नहीं।"

"तब तो शान्ति के पुजारी प्रतीत होते हो।"

"ऐसा ही समझ लो।"

"लेकिन समझने से तो काम चल नहीं जायेगा। यहां भेड़ें चराने के अलावा और कौन सा काम रखा है?"

"मेरे लिये यही काफी है।"

"तुम भेड़ें चरा सकोगे?" गड़रिये ने आश्चर्य प्रकट किया।

"क्यों नहीं, समय जो करायेगा करूँगा।"

"मैं एकबार फिर तुम्हें समझाता हूँ कि क्यों इस काम में अपना जीवन नष्ट करोगे?"

मुझे तुम्हारी सलाह की जरूरत नहीं। अगर रख सको तो रखो वरना जवाब दो, कोई दूसरा दरवाजा देखूँ।"

"भाई, बड़े जबर्दस्त मालूम होते हो। मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे यहाँ से निराश लौटो। लो, ये भेड़ें और ये रोटियाँ।" रोटियों की पुटकी वाला हाँथ बढ़ाते हुये कहा— 'इधर उत्तर की ओर अच्छा-खासा जंगल है, वहीं चले जाओ, मगर जंगल के अन्दर न घुसना। वहाँ बड़े-बड़े जगली जानवर रहते हैं। एक भी भेड़ जिन्दा वापस न आयेगी।"

"आप उसकी फिकर न करिये।" कहकर साँगा ने रोटियाँ ली और भेड़ लेकर चलदिये।"

"भाग्य का मारा मालूम होता है बेचारा। भगवान न क़रे किसी को ऐसे दिन दिखाये।" कहकर गड़रिया द्वार पर खड़ा काफी देर तक उसी ओर देखता रहा जिस ओर उसकी भेड़े नये आदमी की देख-रेख में जा रही थी।

१६

जयमल ने राव जी का पत्र खोलकर पढ़ा तो उसमें लिखा था-

जयमल जी,

सादर प्रणाम,

यह सत्य है कि जिस चित्तौड़ से मुझे एक जागीर प्राप्त हुई है उसी के आप एक राजकुमार हैं और यह मेरा सौभाग्य होगा जो आप मेरी पुत्री के साथ विवाह करेंगे, परन्तु क्षमा करियेगा मेरी भी कुछ परम्परायें हैं। लड़की का विवाह के पूर्व किसी को दिखाना अपना अपमान कराना है। आपने जो पत्र में लिखा है कि मेरी पुत्री के विषय में जिन गुणों की प्रशंसा आपने सुनी है उनकी आप जाँच करना चाहते हैं कि मेरी पुत्री में वे गुण वास्तव में है या नहीं—"इसकी जाँच तो ब्याह के पश्चात् ही हो सकेगी। धृष्टता के लिये क्षमा।

आपका

रावसुरताण हरराजोत

पत्र पढ़ते ही जयमल आगबबूला हो गया। क्रोधाग्नि भभक उठी। नेत्र रक्तवर्ण हो गये। हाँथ तलवार की मूँठ पर चला गया। दाँती पीसते

हुये उसने कहा—"मेरे ही टुकड़ों पर पलने वाले सरदार की इतनी हिम्मत। मेरी आज्ञा ठुकरा दी। मालूम होता है कि जागीर मिलते ही घमण्ड हो गया है।"

"इसकी सजा तो उसे मिलनी ही चाहिये।" पत्र वाहक ने कहा।

"अवश्य मिलेगी। अंतिम समय में चींटी के भी पर उग आते हैं। उसके सिर मौत मँड़रा रही है।" कहता हुआ वह कक्ष के बाहर निकल गया।

जयमल को अपनी शक्ति पर आवश्यकता से अधिक भरोसा था। रावसुरताण द्वारा आज्ञा उल्लंघन में उसने अपना अपमान समझा। प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर वह बदनौर पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा।

जयमल को पत्रोत्तर लिखने के पश्चात् रावसुरताण ने अपने साले रतनसिंह को बुलाया और समझा कर जयमल के पास परिस्थिति स्पष्ट करने के लिये भेजा। रतनसिंह चित्तौड़ गये और जयमल से कहा—" यदि पत्र में राव जी ने कोई कड़ी बात लिख दी हो तो उसका आप बुरा न मानियेगा।"

"घाव पर नमक छिड़कने आये हो?" क्रोध में तमतमाकर जयमल ने कहा—"मैंने राव को सज्जन समझकर पत्र लिखा था। यदि उनके स्थान पर और कोई होता तो मैं सीधे जाकर लड़की देख लेता। लेकिन उन्होंने जो मेरा अपमान किया है उसका मजा मैं उन्हें अवश्य चखाऊँगा। अगर बदनौर के एक-एक सरदार का सफाया न कर दिया तो मेरा नाम नहीं।"

रतनसिंह ने आगे कुछ कहना उचित न समझा और चुप-चाप वहाँ से चल दिये।

रावसुरताण को जब रतनसिंह ने सम्पूर्ण वृतान्त कह सुनाया तो वह विचार में डूबगये। रतनसिंह ने राव जी को विचाराधीन देखकर कहा—"क्या सोच रहे हैं राव जी ?"

"सोच रहा हूँ कि संकट के समय जिसने शरण दी उसके साथ ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिये ?"

'इसमें सोचने की कौन सी बात है ? शरण तो हमें राणा जी ने दी है। हमें उनका अहसान मानना चाहिये। यदि जयमल बदनौर पर आक्रमण करता है तो हमें उसका सामना करना चाहिये।"

"नहीं, यह हमारी परीक्षा का समय है। हम जो भी पग उठायें अत्यन्त न्यायोचित होना चाहिये।"

"आक्रमणकारी से बिना संघर्ष किये अपनी रक्षा भी तो नहीं हो सकती।"

"हो सकती है।"

"कैसे ?"

"हम अपने आश्रयदाता के विरुद्ध शस्त्र नहीं उठायेंगे।"

"तो क्या आप प्राण देना चाहते हैं ?"

"यदि कर्तव्य पालन के लिये प्राण भी देने पड़ें तो हमें सहर्ष प्रस्तुत रहना चाहिये।"

"लेकिन यह तो सरासर अन्याय है। अन्यायी के विरुद्ध शान्त रहना कौन सा धर्म पालन करना है ? इससे आततायी को बढ़ावा मिलेगा और एक दिन वह अत्याचारी के रूप में परिणत हो जावेगा।"

"तुम्हारा कथन ठीक है, परन्तु जब अन्यायी अपने ही घर का होता है तो बड़े-बूढ़ों का कर्तव्य हो जाता है कि उसे दण्ड दें।"

"तो आपके कहने का तात्पर्य है कि राणा जी उसे कुकृत्य के लिये दण्ड देगें।"

"यह तो मैं नहीं कह सकता कि वह क्या करेंगे, परन्तु यह कार्य उन्हीं को शोभा देता है।"

"परन्तु दूसरों के कर्तव्य-पालन की प्रतीक्षा में अपने प्राणों से हाँथ धो बैठना भी तो बुद्धिमानी नहीं है ।"

"इसके लिये मैंने एक मार्ग सोच लिया है ।"

"वह क्या ?"

"हम यह बदनौर त्याग देंगे ।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ? खटमलों के पीछे कहीं कथरी का त्याग किया जाता है ?"

"मेरा राजपूत धर्म यही कह रहा है ।"

"आप तो अपना सर्वनाश अपने ही हाँथों करने पर तुले हैं ।"

"नहीं रतन ! तुम इस समय प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर ऐसा कह रहे हो । यदि शान्त मस्तिष्क से विचार करोगे तो मेरे निर्णय को उचित ठहराओगे ।"

"लेकिन जाइयेगा कहाँ ?"

"ईश्वर की दी हुई इतनी बिशाल पृथ्वी पड़ी है । क्या हमें थोड़ा सा स्थान कहीं न मिल सकेगा ?"

"जैसी आपकी इच्छा ।" कहकर रतनसिंह शान्त हो गये ।

"तो फिर जाओ और चलने की तैयारी करो ।" राव जी की आज्ञा सिर आँखों पर रख कर रतन वहाँ से चल दिये ।

राव जी के बदनौर त्यागकर जाने का समाचार सपूर्ण जनता में फैल गया । वास्तविक कारण ज्ञात होते देर न लगी । राव जी अत्यन्त सहृदय एवं धर्म भीरु थे । उनके इस निर्णय ने जनता के हृदय में उनके प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न कर दी । उसने भी राव जी के साथ ही बदनौर त्यागने का निर्णय कर लिया । निर्णय को व्यवहारिक स्वरूप मिलने लगा । देखते ही देखते दो दिनों के भीतर पूरा कस्बा खाली हो गया । रावजी कस्बे की सीमा को अन्तिम प्रणाम करके चल दिये । जनता उनका अनुसरण करने लगी ।

१७

संध्या समय साँगा भेड़ें चरा कर काफी देर से लौटा। गड़रिया चबूतरे पर बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। भेड़ों को आते देख वह उठकर खड़ा हो गया और आगे बढ़ कर बोला—"बहुत देर कर दी लौटने में ?"

"हाँ कुछ देर अवश्य हो गई है।"

"कल से सूरज डूबते डूबते आ जाया करो।"

"बहुत अच्छा।" साँगा ने अपने मालिक की बात स्वीकार करली।

गड़रिया भेड़ों को बाड़े में बन्द करके बाहर निकला और साँगा के पास जाकर बोला—"लौटते समय गिनली थी भेड़ें ?"

"गिनी तो नहीं थी, मगर खोने एक भी नहीं पाई है। दिन-भर खड़ा-खड़ा चराता रहा हूँ।"

"इस तरह तो थक जाओगे। दोपहर के समय किसी पेड़ की छाया में बैठकर थोड़ा आराम कर लिया करो।"

"अगर आराम करूँगा तो आज ही की तरह रोज भेड़ें कम होती जायेंगी।"

"तो क्या कोइ भेड़ गायब हो गई है ?"

साँगा जिस बात को छिपाना चाहते थे वही बात उनके मुँह से निकल गई, परन्तु अब असमर्थ थे। छूटा हुआ तीर तो वापस आता नहीं। अपराधी की भाँति सिर झुका कर साँगा ने कहना प्रारम्भ किया—"बात यह हुई कि तालाब के किनारे मन्दिर की दीवार पर बैठकर मैं भोजन करने लगा तो एक भेड़ चरती-चरती जंगल के भीतर घुस गई।"

"फिर क्या हुआ ?" गड़रिये ने उचकते हुये पूँछा।

"मैंने उसे जंगल में घुसते हुये देख लिया। आपने रोका था न कि भेड़ों को उस ओर न जाने देना ···।"

"हाँ, हाँ।"

"मैं फौरन भोजन छोड़ कर उस ओर दौड़ा। तो क्या देखता हूँ········।"

"क्या देखा ?"

"एक भेड़िया तीर की तरह सनसनाता चला आ रहा है।"

"और भेड़ कहाँ थी ?"

"भेड़ ही की ओर तो वह आ रहा था।"

"तो फिर तुमने क्या किया ?"

"मैंने किया क्या, जो मुझे करना चाहिये था वही मैंने किया। मैंने अपनी जान की परवाह नहीं की।"

"तो क्या तुम वहाँ से भागे नहीं ?"

"यह कैसे हो सकता था कि जिसका नमक खाऊँ उसी की हानि अपने सामने देखता रहूँ।"

"शाबास ! आदमी तो ऐसा ही होना चाहिये, लेकिन फिर क्या हुआ ?"

"भेड़िये ने जैसे ही मुझे देखा वैसे ही वह ठिठका लेकिन मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि वह कई बार का परका हुआ था।"

"हाँ, मेरी कई भेड़ें गायब हो चुकी हैं। हो सकता है कि वही खा जाया करता हो।"

"तो फिर बस समझ लीजिये कि वह इस बार भी झपटा।"

"तुम्हारे ऊपर ?"

"नहीं, भेड़ के ऊपर लेकिन मैंने यह कटार पहिले ही हाँथ में पकड़ रखी थी।" कटार निकाल कर उस की ओर संकेत करते हुये साँगा ने कहा।

साँगा के हाँथ में नंगी कटार देखकर गड़रिये ने कहा—

"इस पर तो खून लगा है।"

"हाँ, यह उसी भेड़िये का खून है।"

"तो क्या तुमने भेड़िये को मार डाला ?"

"और नहीं तो क्या मैं अपनी हानि करने वाले को छोड़ देता ?"

"वाकई, तुमने किया तो बड़ी बहादुरी का काम, मगर इस तरह का खतरा मोल न लिया करो ?"

"तो क्या भेड़ों को इसी तरह नष्ट होने दूँ ?"

"लेकिन एक भेड़ के लिये अपनी जान पर खेलना भी तो ठीक नहीं है।"

"आप बड़े हैं। आपकी सलाह मानना तो मेरा धर्म है।"

"अच्छा जाओ, दिन-भरके भूखे होगे। बुढ़िया भीतर बैठी काफी देर से तुम्हारा इन्तजार कर रही है।"

"अच्छा।" कहकर साँगा अन्दर चला गया।

गड़रिया वहाँ से उठा। हर एक के पास थोड़ी देर रुकता और साँगा की वीरता की प्रशंसा करता। इस तरह सम्पूर्ण गांव को उस घटना से अवगत कराकर वह दो घड़ी रात बीते घर लौटा। साँगा दिन भर के थके थे। वहीं चबूतरे पर बैठे जमुहाई ले रहे थे। साँगा को बैठा देखकर उसने एक चारपाई की ओर सकेत करते हुये कहा—"उस पर जाकर लेट रहो।" कह कर वह अन्दर चलागया।

उसकी स्त्री, जो बृद्ध हो चली थी, गड़रिया के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। प्रसन्न मुद्रा में आया हुआ देखकर उसने स्नेहसिक्त शब्दों में उलाहना दिया—"बड़ी देर लगा दी, कहाँ रहे इतनी रात गये तक ?"

"अभी थोड़ी देर हुये तो गया हूँ यहाँ से।"

"न जाने कब से बैठी इन्तजार कर रही हूँ।" कृत्रिम क्रोध प्रगट करते हुये बृद्धा बोली।

"अरी ! आज तो दिन भर ही घर पर तेरे पास रहा हूँ। अगर थोड़ी देर के लिये गांव में चला गया तो तेरी इन्तजारी की घड़ियां लम्बी हो गईं।" कपड़े उतार कर चारपाई पर बैठते हुये गड़रिये ने कहा।

"अब इस उम्र में ऐसे नहीं रहगये हो कि तुम्हारा भी कोई इन्तजार करे।

"कोई करे या न करे तुम तो करती हो।"

"मैं कोई इन्तजार थोड़े ही कर रही थी। मैं तो एक बात कहना चाहती थी।"

"क्या है वह बात जिसके सुनाने के लिये तू इतनी बेचैन थी ?"

"नहीं सुनना चाहते हो तो न सुनो। मुझे क्या गरज पड़ी है सुनाने की।"

"बस, नाराज हो गई इतनी जल्दी ? अच्छा सुना। भला तेरी बात न सुनूँगा तो फिर किस की सुनूँगा। तेरा ही तो इस बुढ़ापे में एक सहारा है।" चारपाई में पैर फैलाते हुये कहा।

वृद्धा अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो गई और स्नेहाधिकार प्रदर्शित करते हुये बोली "गृहस्थी की बनी-बिगड़ी बात तुमसे न कहूँ तो किससे कहूँ ?"

"क्या हो गया ?"

"हो नहीं गया है होने वाला है।" पास खिसकते हुये वृद्धा ने कहा

"इस उमर में ?"

"जाओ, नहीं बताती।" वृद्धा ने कृत्रिम क्रोध प्रदर्शित किया और तुनुक कर दूर हट गई।

गड़रिये ने वृद्धा का हाँथ पकड़कर पास खींचते हुये स्नेह पूर्ण स्वर में कहा—"तुम्हीं से तो दो बोल हँस लेता हूँ, वरना गांव की किसी औरत ने कभी यह मेरी बत्तीसी नहीं देखी है।"

"जिसके हो वह दिखाये। यह पोपला मुँह लेकर किसके सामने हँसोगे ?" बूढ़ा के चेहरे पर मुस्कराहट बिखर गई।

"खैर, छोड़ो इन बातों को। अब बताओ कहना क्या चाहती थी ?"

"भेड़ों के साथ यह साँड़ क्यों पाल लिया है ?"

"कैसा सांड़ ? मैंने तो कोई साँड़-वाँड़ नहीं पाला है।"

"साँड़ से मतलब उस चरवाहे से है।"

"तुम उसे साँड़ कहती हो ?"

"और नहीं तो क्या बछड़ा कहूँ ? सारी रोटियाँ खा गया और शायद अब भी वह भूखा है।"

"तो और बना कर खिला देती।"

"मैं इस साँड़ को कहाँ तक बना-बना कर खिलाती रहूँगी ?"

"साँड़ नहीं शेर कहो शेर।"

"ऐसा कौन सा बहादुरी का काम कर दिखाया है जिसके लिये उसे शेर कहलवाना चाहते हो ?"

"अरे, तुमसे तो बताना भूल ही गया।" तनिक उचक कर कोहनी के बल बैठते हुए कहा—उसने आज एक भेड़िया मार डाला है।"

"तो कौन बड़ी बहादुरी का काम कर डाला है ?"

"छोटी सी कटार से भेड़िये का सामना करना मामूली बात नहीं ?"

"तो शायद इसी गुण का बखान गाँव भर में करते फिरते रहे हो ?"

"हाँ !" गड़रिये के मुँह पर सरल हँसी खेल गई।

"अच्छा तो शेर ही सही, लेकिन अपना तो दिवाला निकल जायेगा।"

"जब तक है तब तक खायेंगे और खिलायेंगे और जब नहीं होगा तब का भगवान मालिक जिसने मुँह दिया है। वह खाना भी देगा।"

"मैं यह सब कुछ नहीं जानती। इतना समझ लो कि चौमास आने वाला है। भूखों मरना पड़ेगा।"

"तब की तब देखी जायेगी। उसकी अभी से चिन्ता क्यों?"

"पहले से सोच-समझ कर काम करने वाला सुखी रहता है।"

"यह तो ठीक है, लेकिन द्वार पर आये हुये आदमी को वापस भी तो नहीं किया जा सकता।"

"तो फिर क्या है, खूब दान करो। ऐसे ही एक आध को और रख लो। बस! फिर बेड़ा पार हो जायेगा।"

"अच्छा अब रात काफी हो गई है। कल सुबह बातें करेंगे।" कह कर गड़रिये ने करवट ले ली।

वृद्धा को काफी देर तक नींद नहीं आई। अपनी चारपाई पर करवटें बदलती रही। वही समस्या उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थी। अन्ततोगत्वा विचार करते-करते वह भी निद्रा में लीन हो गई।

१०

जयमल ने देखा कि सम्पूर्ण कस्बा खाली हो गया है। सब घर खाली पड़े हैं। गलियों में कुत्ते भों-भों करते घूम रहे हैं। जयमल ने उसमें अपनी पराजय समझी। अपराजित व्यक्ति जब अपनी पराजय अनुभव करता है तो उसकी क्रोधाग्नि द्विगुणित हो जाती है। यही स्थिति जयमल की भी थी। वह क्रोध से पागल हो रहा था। उसने दीर्घ नि:स्वास छोड़ते हुये कहा—"देखता हूँ मुझ से बच के कहाँ जाता है।"

उसने चारो ओर दृष्टि दौड़ाई लेकिन कोई भी व्यक्ति दृष्टिगोचर न हुआ। पृथ्वी पर दृष्टि डालने पर पद चिन्हों द्वारा दिशा का ज्ञान हो गया। उसने अपना घोड़ा मोड़ा और नंगी तलवार हवा में घुमाते हुये कहा—"आओ वीरों! शत्रु इस ओर गया है। हमें उसका पीछा करना है।" ध्वनि के साथ ही समस्त अश्वारोही सरदार का पीछा करने लगे।

निशा नायिका का आगमन हो चुका था। गगनांगन में शशि अपनी अनुचर बाहिनी उद्गणों के साथ स्वागतार्थ आ उपस्थित हुए थे। बन सघन था। बृक्षों की सघनता चन्द्रमा के प्रकाश को पृथ्वी तक आने से रोक रही थी। मार्ग दिखाई न देता था। राव जी ने इस घनान्धकार में आगे बढ़ना उचित न समझ यहीं पड़ाव डाल दिया। पास ही अकड़सादा नामक ग्राम था। आवश्यकतानुकूल वस्तु भी प्राप्त की जा सकती थी। स्थान को सुरक्षित समझ कर सभी लोग विश्राम करने लगे। परन्तु तारा अत्यन्त उदास थी। उसे भी पिता का यह निर्णय न्यायोचित न लगा था। माँ साखली तारा को बहुत स्नेह करती थीं। उसे उदास बैठा हुआ देख कर पूँछा—"क्यों बेटी इतनी उदास क्यों है?"

"कुछ नहीं माँ, यों ही चुप-चाप बैठी हूँ।"

"मैं यह तेरी बात कभी नहीं मान सकती। तू भला यों ही बैठेगी! जरूर कुछ न कुछ सोच रही होगी।"

"कुछ नहीं माँ! मुझे तंग न करो।"

"तब तो अवश्य कोई बात है। तुझे बतानी ही पड़ेगी।"

"यों ही माँ भाग्य की बिडंबना पर सोच रही थी।"

"धैर्य रख बेटी,, अगर वे दिन नहीं रहे हैं तो ये दिन भी नहीं रहेंगे।"

"मुझे यह खानाबदोसों का जीवन पसन्द नहीं।"

"सब भाग्य का फेर है ....।"

"इसी भाग्य ने तो हमारा बण्टाढार कर दिया हैं। जब देखो तब भाग्य-भाग्य। मुझे भाग्य वाग्य पर विश्वास नहीं।"

"तो फिर तुझे किस पर विश्वास है?"

"कर्म पर।"

"कर्म भी तो भाग्य के संकेत पर संचालित होते हैं।"

"यह धारणा मनुष्य को अकर्मण्य बनाती है। जीवन में कर्तव्य को प्रधानता देनी चाहिये।" कुछ रुक कर तारा ने फिर कहना प्रारम्भ किया —"और भाग्य भी तो पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है। यदि मनुष्य भाग्य के सहारे बैठा रहेगा तो उसका अगला जन्म भी व्यर्थ होगा। तब वह फिर भाग्य को बैठकर रोयेगा।"

"तू तो हर बात में मीन-मेख निकालती है। जिसे हमारे पूर्वज जिस रूप में स्वीकार करते आये हैं, हमें भी चाहिये कि उसे उसी रूप में स्वीकार करें।"

"उससे मानव जीवन प्रगति हीन बन जायेगा।"

"काल और स्थान के अनुसार प्रत्येक परम्परा में परिवर्तन परमावश्यक है।"

"तो तेरे कहने का तात्पर्य है कि परम्परा का बिरोध किया जाय?"

"परिवर्तन का तात्पर्य विरोध नहीं होता है और यदि कोई प्रिय से प्रिय वस्तु कष्टकारक हो तो उसे भी समूल उखाड़ फेंकने में हानि नहीं समझनी चाहिये।"

"ये तेरी बातें मेरी समझ में नहीं आती हैं। जो तेरी समझ में आये किया कर। तूने तो बचपन से ही मेरी बात का खण्डन किया है।"

"तो क्या माँ मैं अब बूढ़ी हो गई?"

"बूढ़ी नहीं तो बच्ची भी तो नहीं रही।"

"जाओ माँ, तुम भी बड़ी वो हो।" कह कर तारा उठ खड़ी हुई।

तारा को तम्बू के बाहर जाते हुए देखकर माँ ने कहा—"इस अन्धेरी रात में कहाँ चल दी?"

"चन्द्रमा की चाँदनी में स्नान करने।" तम्बू के बाहर से तारा की ध्वनि आई।

"आयी।

"अभी इसका बचपना नहीं गया।" कहकर साखली विस्तर पर लेटने ही वाली थी कि बाहर से तारा ने 'मां' 'माँ' कहकर पुकारा।

"क्या है बेटी?" घबड़ाकर साखली बाहर आई।

"देख माँ, उस ओर कितने मशाल जलते हुए दिखाई दे रहे हैं।" तारा ने माँ के पास जाकर दूर जलते हुये मशालों की ओर संकेत किया।

"किसी पास की बस्ती के चिराग होंगे बेटी।" उपेक्षित भाव से माँ ने कहा।

"नहीं माँ, जरा ध्यान से देखो। मुझे कुछ दाल में काला नजर आ रहा है।"

"तेरा तो शकी स्वभाव बन गया है।"

"शकी स्वभाव की बात नहीं है माँ। यह रोशनी तो अपनी ओर बढ़ती चली आ रही है।"

"हाँ, मालूम तो मुझे भी कुछ ऐसा ही पड़ रहा है।" ध्यान से देखते हुये मां ने कहा।

"अरे मां! यह अश्वारोही सैनिक हैं। टापों की ध्वनि आरही है।"

"जा शीघ्र जाकर रतन को सूचित कर।" घबराहट के स्वर में माँ ने कहा।

"बापू को भी तो सूचित करना चाहिये।"

"अभी तू रतन को ही बता आ। वह जैसा उचित समझेगा कर लेगा।"

तारा वहां से भागती हुई रतनसिंह के तम्बू में गई और 'मामा'

शब्द से रतनसिंह को पुकारा। स्वर पहचान कर रतनसिंह ने कहा—

"क्या है तारा ?"

"अरे जरा बाहर तो आइये।"

"क्यों क्या बात है ?" तम्बू के बाहर आकर रतनसिंह ने पूँछा।

"शत्रु।"

"शत्रु, कौन शत्रु, कहाँ शत्रु ?"

"वह देखो इसी ओर बढ़ता चला आ रहा है।"

"हां मालूम तो मुझे भी देता है लेकिन यह कौन हो सकता है ?" कहकर रतनसिंह सोच में पड़ गये।

"अरे कौन होगा ? जयमल ही होगा।" तारा ने कहा।

"हो सकता है कि जयमल ही लोगों का पीछा कर रहा हो।"

"मामा जी शीघ्रता कीजिये। शत्रु तीव्र गति से बढ़ रहा है।"

"चिन्ता मत करो। हम लोग ऐसे स्थान में हैं जहां पर पहुचने में उन्हें काफी समय लगेगा। फिर भी मैं मोर्चे की तैयारी करता हूँ।" कहकर रतनसिंह राव जी के तम्बू की ओर चल दिये।

तारा इस ओर अपने को सुसज्जित करने लगी। अपनी तलवार और ढाल बांधी। भाला हाँथ में लिया। माँ ने तारा के इस वेष को देखकर पूँछा—

"यह क्या वेष बनाया है ?"

"वीर वेष।"

"किस लिये ?"

"युद्ध करने के लिये।"

"तो तू भी युद्ध में सम्मिलित होगी ?"

"तो क्या हुआ ? प्रत्येक राजपूत लड़की को अपनी रक्षा में स्वयं समर्थ होना चाहिये।"

"तेरी माया बड़ी विचित्र है। तू किस समय क्या करेगी—इसे

समझना बड़ा कठिन है ।"

"मां मैं कोई ऐसा काम तो नहीं करती जो समझ में न आने वाला हो।"

"यही क्या कम विचित्र बात है ।"

"कौन सी ?

"युद्ध में तेरा सम्मिलित होना ।"

"माँ, उसमें विचित्रता की कौन सी बात है ? शत्रु से अपनी रक्षा करना तो प्रत्येक का कर्तव्य है ।"

"हाँ' अब तू पुरुषों के कर्तव्यों को अपना कर्तव्य समझने लगी है ।"

"माँ ! रक्षा सम्बन्धी कर्तव्य का विभाजन उचित नहीं । जब तक एक-एक बच्चा अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ न होगा तब तक किसी राज्य की स्वतन्त्रता को सुरक्षित न समझो ।" कोलाहल की ओर देखते हुये—"देख माँ ! सब लोग शत्रु से लड़ने के लिए जा रहे हैं । मुझे भी आशीर्वाद दो मां ।" कह कर तारा ने सिर झुका दिया । मां ने बेटी के सिर पर हांथ फेरते हुये कहा—"जा बेटी ! तू मेरा बेटा और बेटी दोनों ही है । तेरी जगह अगर मेरा बेटा होता तो उसे भी मैं इसी तरह बिदा करती । जा ! तेरी कामना पूरी हो ।"

तारा भी सैनिकों में जा मिली । रतनसिंह ने तारा को पहचान लिया और आश्चर्य प्रकट किया—"तुम कहां तारा ?"

"जहां आप मामा ।"

"जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुम्हें यह वेष धारण करने की क्या आवश्यकता ?"

"जिसके कारण यह सब हो रहा हो, वह शान्त रहे—यह कैसे हो सकता है ?"

"राव जी जो सुनेंगे तो मेरी लम्बी खबर लेंगे ।"

"मगर वह तो दिखलाई नहीं पड़ रहे हैं। वह हैं कहाँ ?" रत्ना ने इधर-उधर दृष्टि उठाते हुये प्रश्न किया।

"डेरे में विश्राम कर रहे होंगे।"

"और आप मामा..........।"

"हाँ बेटी ! मैंने उन्हें कष्ट देना उचित नहीं समझा। मैं ही जयमल के लिये यथेष्ट हूँ और फिर तुम भी तो अब मेरे साथ हो, लेकिन तुम इन सैनिकों को आवश्यक निर्देश दो, तब तक मैं जरा आगे बढ़कर शत्रु की खबर लेता हूँ।"

"लेकिन आप अकेले..............।"

"तुम उसकी चिन्ता न करो। मैं कोई युद्ध करने थोड़े ही जा रहा हूँ।"

"अच्छा।" कह कर तारा सैनिकों की ओर उन्मुख हो गई।

बन की सघनता के कारण जयमल की प्रगति कुछ मन्द पड़ गई थी। उस गहन तिमिर में मार्ग नहीं सूझ रहा था। सैनिक घास–फूस एकत्र करते और आग लगा देते, जिसके प्रकाश में थोड़ा मार्ग तय कर लेते। इस क्रिया के सहारे वे अग्रसर हो रहे थे। रतनसिंह का घोड़ा आगे बढ़ रहा था। वह निर्भय था। जयमल की सेना में वह घुसता चला गया। उसकी वायु के समान गति को कोई रोक न सका। समक्ष जयमल को देखकर वह रुका और "कुँवर जी, साखला रतना का मुजरा पहुँचे।" कह कर अपना बरछा छाती में घुसेड़ दिया। जयमल की तीव्र चीख नीरवता में गूँज उठी। समस्त सैनिक ठगे से रह गये। परन्तु शीघ्र ही रतनसिंह पर चारो ओर से आक्रमण होने लगे। थोड़ी ही देर में उसकी धज्जी-धज्जी उड़ गई। जयमल भी रतनसिंह की चोट के बाद एक क्षण के लिये तड़फा और इस ससार से विदा हो गया।

तारा रतनसिंह के जाने के बाद शनैः शनैः अग्रसर होने लगी थी,

क्योंकि वह रतनसिंह के स्वभाव से परिचित थी। उसी की देख-रेख में उसने सैनिक शिक्षा प्राप्त की थी। सैनिक कोलाहल से उसने अन्दाजा लगा लिया था कि सम्भवत: युद्ध प्रारम्भ हो गया है। वह सैनिक लेकर द्रुतवेग के आगे बढ़ी, लेकिन तब तक रतनसिंह पृथ्वी पर लोट चुका था। जयमल के सैनिक भी आगे बढ़ें, परन्तु तारा की तलवार ने छक्के छुड़ा दिये और उन्हें मैदान छोड़कर भागते ही बना।

२१

गड़रिये ने भेड़ों को गिनते हुये कहा—"आज तो भेंड़ें काफी कम मालूम होती हैं।"

"आपसे गिनने में गलती हो गई है।" साँगा ने धीरे से कहा।

"मुझ बुड्ढे को वेबकूफ बनाने चला है? ये बाल धूप में नहीं सफेद हुये हैं। मैंने भी दुनियां देखी है। कहीं रोज-रोज गिनने में गलती हो सकती है?"

"हो सकता है एक-आध कम हो गई हो।"

"एक-एक करके तो न जाने कितनी भेड़ें तू खो चुका है। अभी परसों ही तीन भेड़ें कम निकली थीं।"

"लेकिन मैं तो बड़ी मुस्तैदी से चराता हूँ।"

"मुस्तैदी का ही तो नतीजा है कि दो-एक ही भेड़ रोज गायब होती है वरना अब तक सब भेड़ों का सफाया हो गया होता।"

"आप ठीक कहते हैं।"

"मैं ठीक कहता हूँ ? तो तुम उनका सफाया करने पर तुले हो ?'

'ऐसा कैसे हो सकता है ?"

"जैसे इतनी भेड़ों का हुआ है।"

"अब आइन्दा को और अधिक ध्यान रखूँगा।"

"यह क्यों नहीं कहता कि अब और अधिक खोयेगा ?"

"आप तो नाराज होते ही चले जा रहे हैं।"

"नहीं तो तेरी करतूत पर खुश होऊँ ? रोज कमाकर देता है न मुझे ?"

"आप चिन्ता न करिये। मैं जब कमाने लगूँगा तो आप को माला-माल कर दूँगा।"

"मैं तेरी इतने ही दिन की कमाई से तंग आ गया हूँ। मुझे नहीं चाहिए तेरी कमाई। तू किसी दूसरी जगह काम खोज ले।"

"कहां खोज लूँ ?"

"मैं क्या जानूँ ? मैंने क्या तेरा ठेका ले रखा है ?"

"कुछ दिन और रहने दीजिये मुझे। फिर कहीं चला जाऊँगा।"

"तुझ से भेड़ें चराने का काम तो हो नहीं सकता। तुझे रखकर मैं क्या करूँ ?"

"और कोई काम करवा लीजिये।"

"अच्छा घर का काम ठीक से कर सकोगे ?"

"जी हाँ।"

"खाना बनाना जानते हो ?"

"हाँ जानता तो हूँ; लेकिन अच्छी तरह नहीं जानता।"

"आखिर कौन सा काम तुम्हें अच्छी तरह आता है ?"

"..............................।"

"चुप रहने से तो काम चलेगा नहीं। कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा। कोई कब तक यों ही बैठाकर खिलाता रहेगा ? तुम भी

नौजवान हो। भगवान ने लम्बे तड़ंगे हाँथ–पैर दिये हैं। इन्हें चलाने की कोशिश क्यों नहीं करते ?"

"अब आप जो भी काम मुझे सौंपेंगे, मैं उसे बड़ी लगन और होशियारी के साथ करूँगा।"

"अब तो घर के काम के अलवा कोई भी काम मेरे पास नहीं है, अगर मंजूर हो तो किया करो।"

"करूँगा।" साँगा ने अपनी स्वीकृति दे दी।

"लेकिन यह समझ लो कि अगर यह काम भी तुमसे ठीक से न हुआ तो फिर मेरे पास तुम्हारे लिए कोई काम नहीं।"

गड़रिये की आज्ञा स्वीकार करके साँगा घर के अन्दर चले गये।

२२

जयमल के सैनिकों के भागने के उपरान्त तारा ने उनका पीछा करना उचित न समझा और वापस लौट पड़ी। राव जी को इसका समाचार तब प्राप्त हुआ जब इन लोगों को काफी देर हो चुकी थी। डेरे के बाहर वह बड़ी व्याग्रता से प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्यों ही तारा को आते देखा त्यों ही आगे बढ़कर बेटी को गले लगा लिया। और उनका गद्‌गद्‌ स्वर फूट पड़ा—"शाबास बेटी शाबास ! आज मुझे ज्ञात हो गया कि तारा मेरी बेटी ही नहीं बेटा भी है। लेकिन तूने मुझे क्यों नहीं सूचित किया ?"

"मैंने मामा से कहा था कि वे आप को सूचित कर दें, परन्तु वह कहने लगे कि वह ही शत्रु के लिए यथेष्ट थे।" अलग होते हुये तारा ने कहा।

"यदि रतन ने सूचित न किया तो तू तो कर सकती थी ?"

"तो फिर मुझे यह अवसर कैसे मिलता ?"

"कैसा अवसर ?"

"शत्रु से टक्कर लेने का ।"

"तो क्या जयमल को भगा दिया ?"

"नहीं, पिता जी, उसे तो मामा ने पहिले ही यमलोक पहुँचा दिया।"

"तो क्या जयमल मारा गया ?"

"हाँ।" तारा ने स्वीकारात्मक सिर हिला दिया।

"अनुचित हुआ।"

"क्यों पिता जी ? क्या शत्रु को मारना न्यायोचित नहीं है ?"

"न्याय का आधार पात्र होता है। उसी को दृष्टि में रखकर न्याय अन्याय का निर्णय करना पड़ता है।"

"पिता जी मैं अपनी धृष्टता के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ, परन्तु जो न्याय पात्र की दृष्टि में रखकर किया जाता है, वह न्याय नहीं है।"

"तो फिर क्या है ?"

"न्याय जैसी महान एवं पवित्र वस्तु के आवरण में छिपी हुई मानवीय दुर्बलता।"

"अच्छा तो अब मेरी बेटी इन बातों पर भी अपने बिचार प्रकट कर सकती है।"

"क्यों ? क्या ईश्वर ने मुझे विचार शक्ति नहीं दी है ?"

"ईश्वर तो सभी को विचार शक्ति प्रदान करता है। परन्तु उसका प्रयोग कुछ ही लोग करते हैं ?"

"जो लोग करते हैं वे कैसे होते हैं ?"

"महान एवं युग प्रवर्तक।"

"अब तो आप पिता जी मेरी प्रशंसा करने लगे।"

"तूने कार्य ही ऐसा किया है कि मेरे स्थान पर जो भी होता वह

अपनी बेटी की इससे भी अधिक प्रशंसा करता।"

"परन्तु पिता जी इस प्रशंसा के पात्र तो मामा जी हैं।"

"अरे हाँ! वह तो दिखाई ही नहीं पड़ रहे हैं ?"

"..............।"

"चुप क्यों हो गई ? बोलती क्यों नहीं ?"

"वह अब इस संसार में नहीं है।" तारा का वेदनापूर्ण स्वर निकल पड़ा।

"तो क्या रतन सिंह मारा गया ?"

"हाँ !"

"संघर्ष का परिणाम विनाश ही होता है।" दीर्घनिःश्वास छोड़ते हुये राव जी ने कहा।

शेष सैनिक चुप-चाप खड़े पिता-पुत्री के मध्य होने वाले वार्तालाप को सुन रहे थे। सर्वत्र शान्ति थी। यद्यपि रात्रि समाप्त प्राय थी तथापि मशाल जल रहे थे। तारा के संकेत पर सभी सैनिक अपने-अपने डेरों की ओर उन्मुख होगये। तारा भी चुप-चाप माँ के डेरे में में चली गई। सैनिक वेशभूषा उतार कर एक ओर रखते हुये तारा ने कहा—"पिता जी को महान वेदना पहुँची है।"

माँ के नेत्रों से टप टप बूँद टपक रहे थे। तारा आगे बढ़ी और मां के अश्रु पोंछते हुए बोली—"माँ, धैर्य से काम लो। पिता जी को इस समय आपकी सान्त्वना की अपेक्षा है।"

"बेटी, तुम क्या समझोगी कि हम लोगों का कितना बड़ा सहारा समाप्त होगया !"

"माँ मुझे भी इस बात का दुख है कि मुझे सैनिक सौंप कर स्वतः अकेले चले गये और जयमल पर अचूक प्रहार कर दिया।"

"यही तो उनकी विशेषता थी कि अपने प्राणों को भी संकट में डाल कर वह स्वजन की रक्षा करते थे।"

"लेकिन माँ जब तक मैं पहुँची उनका काम तमाम हो चुका था।"

"मैं जानती हूँ जयमल कितना जालिम था। तू ही वापस आगई- उसी की मुझे कौन कम प्रसन्नता है ! बेटी को कंठ से लगाते हुए साखली ने कहा।

"माँ ! तुम्हारा आशीर्वाद जो मेरे साथ था।"

"हाँ बेटी ? संकट के समय बड़ों का आशीर्वाद ही साथ देता है।"

"तो फिर माँ मामा को भी आशीर्वाद दे दिया होता !"

"वह मेरे पास आये ही कब ?"

"इसी उपेक्षा का तो परिणाम उन्हें भोगना पड़ा।"

"तू क्या कम उपेक्षा करती है ?"

"माँ ! मैं उपेक्षा नहीं करती। आप लोगों से वाद-विवाद करके अपना ज्ञान वर्धन करती हूँ।"

"अब तुझे बातें बनाना बहुत आगया है।"

"उसी का दण्ड तो आप लोगों को भुगतना पड़ रहा है।"

"क्यों ?"

"मैंने ही तो जयमल के प्रस्ताव का विरोध किया था। मेरा ही संकेत पाकर पिता जी ने पत्र लिखा और इस संकट को आमन्त्रित किया।"

"वह तो जो होना होता है होकर रहता है। इसके लिये किसी को दोषी ठहराना उचित नहीं है।"

"तो क्या माँ मैं निर्दोष हूँ ?"

"क्यों नहीं ? तुझे दोषी कौन ठहरा सकता है ?" साखला के मुँह से ये शब्द निकले ही थे कि राव जी ने डेरे के अन्दर झाँक कर कहा—"शीघ्र तैयार हो जाओ। अभी यहाँ से चल देना है।"

राव जी के शब्द सुनकर माँ—बेटी स्तब्ध रह गई। उनका साहस भी न हुआ कि इस यकायक तैयारी का कारण क्या है। एक क्षण तक

दोनों स्वत: विचार करती, परन्तु कारण समझ सकने में असमर्थ रहीं। तारा ने बाहर निकल कर तैयारी करते हुए लोगों से कारण ज्ञात करने की चेष्टा की परन्तु राव जी कह गये हैं – इसके अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात न हो सका।

राव जी स्वत: घूम-घूम कर सब से तैयार होने के लिये कह रहे थे। किसी को भी कारण पूँछने का साहस न हो रहा था। उनकी आज्ञानुसार शीघ्रातिशीघ्र सब लोग तैयार होगये और पुन: वापस लौट पड़े।

२३

गड़रिये ने गरम गरम रोटी तोड़ी और सांगा को दिखाते हुये कहा–'ये रोटियाँ पकीं हैं ?''

''आग कुछ जरा तेज होगई थी, इसलिये जल गई होगी।'' सांगा ने तवा पर रोटी डालते हुये बिना देखे ही कह दिया।

''उसे जली कहते हो ?'' गड़रिये ने तीव्र स्वर में कहा।

''ओह ! लाइये अभी सेंके देता हूँ। आग जरा धीमी होगई थी, इसलिये कच्ची रह गई होगी।''

''आग जरा तेज होगई तो जल गई होगी और आग जरा धीमी होगई तो कच्ची रह गई होगी-- ये बहाने सुनते-सुनते मुझे कितने रोज होगये। अब मुझ से सहन न होगा।''

''लीजिये देखिए, यह कितनी खरी सिकी है।'' गड़रिये की बात पर ध्यान न दिया और उसकी थाली में दूसरी रोटी डालते हुये कहा।

"खरी क्या खाक सिकी है ! सारी की सारी फूँक कर रख दो।" गड़रिये ने ताव में आकर कहा।

गड़रिये की स्त्री भी वहीं पास बैठी थी। उससे अब न रहा गया और बोल पड़ी—"चलो निकलो बाहर चौके से। अब मैं तेरी कटार से नहीं डरने की। रोटी बनायेगा तो बगल में कटार, बरतन माँजेगा तो कटार बँधी है; जब देखो तब कटार कमर में लटक रही है। बहुत डर चुकी। कच्ची पक्की रोटियाँ खिलाकर मार डालना चाहता है हम लोगों को ?"

साँगा मौन था।

"तुम्हीं ने उसे सर पर चढ़ा रखा है वरना मैंने न जाने कब उसे घर से बाहर कर दिया होता। यह किसी की जान लेकर पिंड छोड़ेगा।" स्त्री ने गड़रिये की ओर उन्मुख होकर कहा।

"यह आप क्या कह रहे हैं !" साँगा ने नम्रता से कहा।

"कैसी मुलायमियत से बातें करता है ! जैसे बेचारा बोलना जानता ही नहीं। नाटकीय ढंग से अंगो का विचित्र संचालन करते हुये उस स्त्री ने कहा—"कह रही हूँ तेरा सर। माँ बाप ने सिखाया भी है कोई काम चल दिया नौकरी करने।"

साँगा अब और अधिक न सह सका। वह स्त्री शनैः शनैः अपने वास्तविक रूप में प्रकट होती जा रही थी। साँगा ने एक बार उसकी ओर क्रोध पूर्ण मुद्रा में देखा और क्रोध पीकर चुप-चाप बाहर निकल आया। बाहर आकर वह एक बार पुनः पीछे मुड़ा। उस घर को प्रणाम किया और चल दिया। पक्षीगण अपने-अपने घोसलों को वापस आ चुके थे और साँगा एक घोसला छोड़कर दूसरे घोसले की खोज में निकल पड़ा था। उसके पग तीव्रगति से आगे बढ़ रहे थे लेकिन वे उसे कहाँ ले जायेंगे वह स्वयं न जानता था।

१४

राणा रायमल को जब जयमल की मृत्यु का समाचार मिला तो वह अत्यन्त दुखी हुये। जयमल ही उनका एकमात्र उत्तर धिकारी के उपयुक्त रह गया था। साँगा के विषय में कुछ ज्ञात न था। पृथ्वी को वह फूँटी आँखों भी न देखना चाहते थे। जयमल की मृत्यु ने उन्हें असमंजस में डाल दिया। उनकी भावी योजना अव्यवस्थित हो गई। शासक के समक्ष उपयुक्त उत्तराधिकारी की समस्या एक बहुत बड़ी समस्या होती है। राणा जी की अवस्था ढल चुकी थी। इधर कुछ दिनों से अपना कार्यभार जयमल पर डाल कर निश्चिन्तता की साँस लेने लगे थे कि सहसा यह धक्का लगा। उस धक्के ने उन्हें कुछ देर के लिये बिचलित तो किया परन्तु उनकी दृढ़ता एवं आत्मविश्वास ने उसे स्थायित्व नग्रहण करने दिया, फिर भी चिन्ता उनकी दूर न हो सकी।

सूर्य पश्चिम में डूबने जा रहा था। उनके कक्ष का द्वार पश्चिम की ओर भी खुलता था। अस्तोन्मुख सूर्य से अपनी जीवन संध्या की तुलना कर रहे थे कि अचानक एक कर्मचारी ने राव जी के आगमन की सूचना दी। राणा जी को उसकी सूचना पर विश्वास नहीं हुआ; अतएव उन्होंने अपनी शंका निर्मूल करने के लिए पूँछा—

"कौन ?"

"राव जी।"

"बदनौर के जागीरदार ?"

"जी हाँ।"

"यहीं ले आओ।" कहकर राणा जी पुनः सूर्यास्त को देखने लगे।

राव जी ने कक्ष में प्रवेश किया। राणा जी की पीठ उस ओर थी, परन्तु राव जी के 'राणा जी प्रणाम' अभिवादन को सुनकर राणा जी घूम गये और स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—"प्रणाम राव जी। आइये-आइये, पधारिये, परन्तु यह क्या वेष बना रखा है। सिर पर शुसोभित होने वाली पगड़ी से हाँथ क्यों बाँध रखे हैं ?"

राव जी सिर नीचा किये हुये शान्त खड़े थे।

राणा जी ने हांथों को पकड़ कर हिलाते हुये कहा—"यह अपराधियों कासा वेष क्यों धारण कर रखा है ?"

"अपराधी होने के कारण।"

"राव जी उल्टी गंगा क्यों बहाना चाहते हैं आप ? अपराधी आप नहीं मैं हूँ जिसने ऐसे नीच पुत्रों को जन्म दिया।" राणा जी ने ध्यान से राव जी के चेहरे की ओर देखा और तीव्र स्वर में बोले—"खोल डालो यह बन्धन और लो यह हाँथ, बाँध दो इन्हें।" राणा जी ने अपने हाँथ फैला दिये।

राव जी शान्त खड़े थे।

राणा जी बिकल हो उठे। एक पग हटे और घूम गये। हाँथ पीछे किये हुये बोले—"बुड्ढा हो गया हूँ तो क्या हुआ। शेर कितना ही बूढ़ा क्यों न हो जाय फिर भी सियारों गीदड़ों को तो वह दण्ड दे ही सकता है। यदि जयमल जीवित भी वापस आ जाता यो मेरी तलवार उसे कभी न छोड़ती ?"

राव जी खड़े-खड़े वहीं गिर पड़े और पृथ्वी पर मुँह छिपाकर बोले—"बस राणा जी बस ! आप पुरुष नहीं देवता हैं। आपकी महानता की समता हिमालय भी नहीं कर सकता। आपकी करुणा के समक्ष विशाल सागर भी तुच्छ है।

"यह क्या पागलों सी बातें करने लगे ?" राव जी को उठाकर

हृदय से लगाते हुये राणा जी ने कहा और बन्धन खोलने लगे।

"राणा जी ! आप जैसा महापुरुष अतीत पर दृष्टि डालने पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता।"

"राव जी हम लोगों की दृष्टि इतनी धुँधली हो गई है। कि पास की भी वस्तु नहीं दिखाई देती। अतीत के महापुरुषों से मेरी तुलना करना उनका घोर अपमान करना है। मैं तो उनकी चरणरज के एक कण के बराबर भी नहीं हूँ।"

"महान होकर भी जो अपने को छोटा समझता है, वही तो वास्तव में महान है।"

"राव जी ! आपका कथन सत्य है; परन्तु शक्ति व्यक्ति की शक्ति व उसके दोषों पर पर्दा डाल देती है। शक्ति की चका-चौंध के कारण लोगों की दृष्टि उसके दोषों तक नहीं पहुँच पाती। उसका परिणाम यह होता है कि उसके प्रशंसकों की संख्या में दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि होने लगती है। प्रशंसकों की प्रशंसा पर ध्यान देते ही उसका पतन प्रारम्भ हो जाता है। महान वास्तव में वह हैं जो शक्तिहीन हो कर भी शक्तिशाली की प्रशंसा का पात्र हों; जैसे आप।" राव जी के सिर में राणा जी पगड़ी बांधते हुये कह रहे थे।

"मैं आप के पास अपराधी होकर दण्ड की आकांक्षा से अया था।"

"यह भी आपकी महानता का एक चिन्ह है जो निरपराधी होते हुये भी अपराध स्वीकार करके दण्ड देने वाले के समक्ष आ उपस्थित हुये।"

"आप हर प्रकार से मुझे निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं।"

"जो स्वतः सिद्ध हो उसे सिद्ध करने की चेष्टा करना किसी विवेकी पुरुष का कार्य नहीं।" कह कर राणा जी ने राव जी को पास बैठा लिया।

"आपने मुझे एक बार अपनी शरण में लिया और ....।"

"बस-बस, अब आगे कुछ मत कहना। आप अत्यन्त समझदार व्यक्ति हैं। नासमझ व्यक्तियों की तरह बात करते आपको शोभा नहीं देता।" राव जी के मुँह को अपने हाँथ से बन्द करते हुये राणा जी ने कहा।

"सत्य की भी तो उपेक्षा नहीं की जा सकती।"

"प्रतीत होता है कि सम्भवतः आपने कभी इस पर विचार नहीं किया। कोई भी व्यक्ति कभी भी किसी को कुछ नहीं देना चाहता और यदि किसी ने किसी को कुछ दिया तो समझ लीजिये कि किसी न किसी स्वार्थ बस।"

"मुझे शरण देने में आपका क्या स्वार्थ था ?"

"मानव शान्ति-प्रिय प्राणी है। वह अशान्ति कभी नहीं चाहता। वह जब कोई वस्तु किसी को देता है तो अपनी शान्ति के लिये।"

"तो क्या मैं भी आपकी अशान्ति का कारण था ?"

"हाँ आपके सौजन्य एवं शौर्य ने मेरे हृदय की शान्ति को हरण कर लिया मेरा हृदय व्याकुल हो उठा। मेरे हृदय की यह अशान्ति तब तक दूर नहीं हुई जब तक आप बदनौर के शासक न बन गये। हृदय अपनी पूर्वस्थिति पुनः प्राप्त करने के लिये ही कोई वस्तु किसी को देना स्वीकार करता है। मैंने आपको दिया कुछ भी नहीं। आप जिसके अधिकारी थे वह आपने प्राप्त कर लिया।"

"अभी तक मैं आपके अनेक गुणों से परिचित था, परन्तु आज मुझे ज्ञात हुआ कि आप कितने उच्चकोटि के विचारक हैं।"

"अच्छा ! अब छोड़ो इन बातों को। यह बताओ कि परिवार में सब लोग सानन्द तो हैं ?"

"जिस पर महाराणा जी की कृपा हो वह भला कैसे न सानन्द होगा।"

"तारा बेटी के कहीं चोट तो नहीं लगी ?"

"क्यों क्या हुआ ? चोट लगने का तो कोई कारण नहीं प्रतीत होता।"

"आप सोचते होंगे कि मुझे कुछ ज्ञात ही नहीं। जयमल के सैनिकों को परास्त करने में उसने अपने जिस शौर्य का परिचय दिया है क्या वह प्रशंसा के योग्य नहीं ?"

"वह अभी अबोध है राणा जी ! नादानी बस उसके द्वारा किये गये अपराध का दण्ड लेने ही तो आपके पास आया हूँ।"

"ईश्वर करे वह सदैव ऐसी ही अबोध बनी रहे और ऐसे ही नादानी पूर्ण कार्य किया करे।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"आप उसका मूल्यांकन नहीं कर सकते, क्योंकि आप उसके पिता हैं।"

तारा की प्रशंसा राणा जी के मुँह से सुनकर राव जी का मन मयूर आनन्दातिरेक से नर्तन करने लगा। हृदय गद् गद् हो गया। कंठ रुँध गया। अत्यन्त विनम्र होकर उन्होंने कहा—"आप ही की तो बेटी है राणा जी।"

"ऐसा ही करके दिखा देता यदि कोई उपयुक्त राजकुमार जीवित होता"

"तो क्या उसे आप पुत्र-बधू के रूप में स्वीकार कर लेते ?"

"क्यों नहीं ! पुत्र-बधू के लिये अपेक्षित गुणों में से किस गुण की कमी है इसमें ? उसे तो बधू के रूप में पाकर मैं अपने को धन्य मानता। ऐसी बीर बाला के आ जाने से राजवंश गौरवान्वित हो उठता।" राणा जी एक क्षण के लिये रुके और पुनः प्रश्न किया— मैंने सुना था कि आप बदनौर छोड़ कर चले गये थे ?"

"जी हाँ।"

"ऐसा करने के पहले मुझ से पूँछ तो लिया होता?"

"भूल हुई।"

"कोई भूल नहीं हुई। सुबह का भूला यदि शाम को घर वापस आ जाता है तो भूला नहीं कहलाता।" बाहर की ओर देखते हुये राणा जी ने कहा—"अन्धेरा बढ़ता ही जा रहा है। आप सीधे जाकर बदनौर की जागीर सम्हालिये।"

"जो आज्ञा।" कह कर राव जी उठ खड़े हुये और प्रणाम करके कक्ष के बाहर हो गये। राणा जी भी द्वार तक उन्हें भेजने आये। राव जी जब तक दृष्टि से ओझल नहीं हो गये तब तक राणा जी उनका गमन देखते रहे।

२५

साँगा गड़रिये के यहां से चलने के पश्चात् कई दिनों तक जंगल-जंगल मारे-मारे फिरते रहे। झरने का पानी पीते, वृक्षों के फल खाते, और किसी खंडहर के टूटे फूटे चबूतरे पर शो रहते। इस प्रकार साँगा निरुद्देश्य अपने दिन काट रहे थे। भटकते-भटकते आभेर राज्य की सीमा में प्रवेश कर गये। वहाँ एक बहुत घना जंगल था, परन्तु बन में नीरवता न थी। मनुष्यों की तीव्र ध्वनि कानों में पड़ रही थी। वह ध्वनि की ओर अग्रसर होने लगे। ज्योंही वह थोड़ा आगे चले कि बन की सघनता में वृद्धि प्रतीत हुई। परन्तु वह केहरि की भाँति निडर थे। वस्त्र बड़े साधारण थे। कहीं कहीं फट भी गये थे। पगड़ी थी नहीं। हाँथ दोनों खाली थे। केवल एक लकड़ी हाँथ में थी जो

भेड़ों को चराते समय किसी वृक्ष से तोड़ली थी। सहसा उसकी दृष्टि सामने खड़े शेर पर पड़ी, परन्तु वह ऊपर की ओर देख रहा था साँगा ने ऊपर की ओर देखा तो एक मचान दिखाई पड़ा जिसमें कई लोग बैठे थे। वे लोग कुछ पारस्परिक वार्तालाप कर रहे थे। शेर एक बार दहाड़ा तो समस्त बन का वातावरण प्रकम्पित हो उठा वह ज्यों ही उछलने के लिये झुका त्यों ही साँगा की कटार उसके मस्तक में घुस गई। शेर तिलमिला उठा और क्रोधित होकर उसी ओर झपटा। साँगा इस आक्रमण के पहले ही प्रस्तुत थे। उसके खुले हुये मुह में उन्होंने अपना डंडा खुसेड़ दिया। और दूसरे हाँथ से कटार निकाल एक प्रहार पुनः किया। शेर के दो पंजे पृथ्वी पर थे और दो पंजे सांगा के शरीर पर। एक सांगा की पीठ पर और दूसरा उसकी बाईं भुजा पर। दोनों का मल्ल युद्ध होने लगा। मचान पर बैठे सब लोग इस दृश्य को देख रहे थे। साँगा लहू-लुहान था। शेर की दहाड़ अब भी निकल पड़ती थी। शेर नीचे हो गया सांगा ऊपर। शेर का रूप अत्यन्त भयाबह था। सांगा बराबर कटार के प्रहार करते जा रहे थे। शेर का शोर ढीला पड़ने लगा। वह एक ओर को लुढ़क गया। साँगा भी खड़े हो गये। मुस्कराहट साँगा के चेहरे पर खेल गई। सांस तीव्र गति से चल रही थी। शेर को समाप्त हुआ समझ कर वे लोग नीचे उतरने लगे। इसी बीच में शिकार की खोज करता हुआ आमेर नरेश का हाँथी आगया। वह हांथी से उतर पड़े और साँगा के सामने आकर बोले—"तुमने इस शेर को मारा है ?"

साँगा ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

"कैसे मारा ?"

साँगा ने अपने दोनों हाँथ फैला दिये। एक हथाँ में अब भी रक्त रंजित कटार उपस्थित थी।

"वास्तव में तुम वीर हो। बिना किसी अस्त्र के इस खूँखार शेर को मार डाला। हमारे सरदार इसकी खोज में पन्द्रह दिन से परेशान थे।"

"क्यों, इसमें ऐसी कौन सी बात थी ?" साँगा ने प्रश्न किया ।

"इसने इधर कई महीनों से आस-पास के गाँवों को बहुत तंग कर रखा था । कई व्यक्तियों का शिकार अब तक यह कर चुका था। उसके डर से इस जंगल के आस-पास के कई गाँव खाली हो गये ।"

"लेकिन यह तो कोई विशेष भयानक मुझे नहीं प्रतीत हुआ ।"

"क्या तुमने इससे भी भयानक शेर देखे हैं ?"

"देखे नहीं मारे हैं ।"

"अच्छा ! तुम क्या काम करते हो ?"

"पहले तो भेड़ें चराया करता था और अब यों ही जंगल में स्वच्छन्द विचरण करता हूँ ।"

"मेरी सेना में नौकरी करोगे ?"

"क्यों नहीं करूँगा, परन्तु मेरी स्वच्छन्दता में बाधा नहीं आनी चाहिये ।"

"इससे तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?" आमेर नरेश ने पूँछा ।

"आप मुझे जो भी कार्य सौपेंगे मुझे स्वीकार होगा, परन्तु मैं किसी के नियन्त्रण को सहन नहीं कर सकता ।"

"तुम्हें पूरी स्वतन्त्रता रहेगी ।"

"तो फिर मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है ।"

साँगा आमेर नरेश की सेना में एक साधारण सैनिक की भाँति रहने लगे, परन्तु उन्हें स्वतन्त्रता इतनी अधिक थी कि कोई भी उच्चाधिकारी उनसे कुछ नहीं कहता था । साँगा की दृष्टि पैनी थी । वह प्रत्येक सैनिक की गति विधि का भली भाँति निरीक्षण किया करते थे । सर्व प्रथम तो वह अन्य सैनिकों के सम्पर्क को अनुचित समझ कर अलग रहते परन्तु एकाकीपन शीघ्र ही असह्य हो गया । अत: वह सैनिकों के साथ शनैः शनैः उठने बैठने लगे और अपने वाक् चातुर्य से उन्हें इतना प्रभावित किया कि वे प्रत्येक कार्य में सॉगा की सम्मति आवश्यक समझने लगे ।

एक दिन दो सैनिक साँगा के साथ बैठे अपनी आत्मीयता का प्रदर्शन कर रहे थे। एक सैनिक ने कहा—"आपका तो जीवन मौज का है।"

"क्यों भाई। ऐसी क्या बात है ?"

"है क्यों नहीं। प्रधान सेनापति तक भी आपसे कुछ नहीं कह पाते।"

"यह तो महाराज की अनुकम्पा है।"

"उनकी इसी अनुकम्पा ने तो सेना में विद्रोह की आग भड़का रखी है।"

"इसका तात्पर्य ?"

"छोटे-छोटे कर्मचारी भी उनके कृपापात्र होने के कारण अपने अधिकारियों की आज्ञाओं का उल्लंघन कर बैठते हैं। इसने बड़े-बड़े अधिकारियों में असंतोष की भावना फैला दी है।"

"होगा भाई, हम लोगों को क्या लेना-देना है इन सब बातों से।"

"हाँ, हम लोगों को तो नहीं, लेकिन आपका सम्बन्ध अवश्य है इन बातों से।"

"क्यों ?"

"आप भी तो महाराज के कृपा पात्र हैं।"

"लेकिन मैं तो किसी की आज्ञा उल्लंघन नहीं करता।"

"आपको कोई आज्ञा देने का साहस इस भय से नहीं करता कि कहीं आप उसे मानने से इन्कार न कर दें।"

"लेकिन भाई, जब नौकरी करनी है तब तो सभी आज्ञायें माननी पड़ेंगी।"

"परन्तु यह तो आप सोचते हैं। अधिकारियों के मस्तिष्क में तो दूसरी ही बात है।"

"होगी। जब तक यहां का अन्न-पानी बदा है, यहाँ हूँ, अन्यथा अपना रास्ता पकड़ूँगा।" साँगा किसी प्रकार इस वार्ता को समाप्त

करना चाहते थे। इन बातों से उन्हें फैलती हुई महाराज के विरुद्ध विरोधाग्नि का आभास मिल गया था। साँगा ने ऊपर की ओर देखते हुये कहा—"अब तो रात हो गई, चलना चाहिये।" कह कर सांगा वहां से चल दिये। कुछ दूर तक साथ-साथ चलने के उपरान्त उन दोनों सैनिकों ने अपना अन्य मार्ग ग्रहण कर लिया।

सांगा वहां से सीधे राज महल की ओर आये और द्वारपाल से कहा—"मैं महाराज से मिलना चाहता हूँ।"

"रात्रि के समय महाराज किसी से नहीं मिलते।" द्वारपाल ने उत्तर दिया।

"मुझे आज उन्होंने इसी समय मिलने के लिये बुलाया था।"

"तो फिर आप जा सकते हैं।"

साँगा ने महल में प्रवेश किया। महाराज भोजनोपरान्त बाहर टहल रहे थे। साँगा ने उन्हें दूर से ही प्रणाम किया। उन्होंने अभिवादन का उत्तर दिये बिना ही प्रश्न किया—"इस समय तुम यहां कैसे आये?"

"झूँठ बोलकर?"

"तुम जानते हो झूँठ बोलना कितना बड़ा अपराध है?"

"जी हाँ महाराज, परन्तु आपसे मिलना आवश्यक था, इसलिये मुझे ऐसा करना पड़ा।"

"क्यों?"

"मुझे विश्वस्त सूत्र से ऐसा ज्ञात हुआ है कि आपके विरुद्ध षड़यन्त्र तैयार हो रहा है।"

"कैसा षड़यन्त्र?"

"इसका तो मुझे विशेष ज्ञान नहीं होसका है, परन्तु शासकों के विरुद्ध षड़यन्त्र का एक ही अर्थ है।"

"शासक की हत्या।" महाराज ने कहा।

"यह मैं कैसे कह सकता हूँ?"

'मुझे तुम आदमी समझदार प्रतीत होते हो। मेरी इच्छा है कि रात के समय मेरे शयन कक्ष के आस-पास तुम्हीं पहरा दिया करो।"

"जो आज्ञा।"

"तुम्हें इसमें कोई कष्ट तो नहीं होगा ?"

"इसमें कष्ट की कौन सी बात। आपकी सेवा में रहना तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा।"

"तो फिर आज ही से अपना उत्तरदायित्व सम्हालो।"

"मैं प्रस्तुत हूँ।"

साँगा रातभर महाराज के शयन कक्ष के चारो ओर पहरा देते रहे।

२४

दूत के द्वारा दिये हुये पत्र को पढ़ने के उपरान्त राव जी ने उससे कहा—"मुझे उनके प्रस्ताव पर कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु पुत्री का ब्याह उसी से होगा जो टोड़ा मुझे वापस दिला दे।"
राव जी की बात सुनकर दूत चला गया।

देवी के मन्दिर में होने वाली घटना के उपरान्त पृथ्वीराज चित्तौड़ नहीं गया, क्योंकि राणा जी का एक पत्र उसे प्राप्त हो गया था जिसमें उन्होंने पृथ्वीराज को उस कुकृत्य के लिये बहुत डांटा था। पृथ्वीराज ने भी ग्लानि अनुभव की थी। वह कुम्भलगढ़ में ही निवास करने लगा। यहीं उसे समस्त समाचार प्राप्त हो जाते थे। जयमल की मृत्यु का समाचार सुनकर वह बहुत दुखी हुआ, क्योंकि वह उसका सच्चा सहयोगी था। उसके मन में एक बार यह भावना आई कि भाई की हत्या का

बदला राव जी से ले, परन्तु तारा के सौन्दर्य एवं शौर्य की प्रशंसा सुनकर उसे प्राप्त करने का लोभ वह संवरण न कर सका। राव जी के पास एक दूत को ब्याह का प्रस्ताव लेकर भेजा। दूत ने वापस आकर राव जी की शर्त सुना दी। पृथ्वीराज वीर था। वह अपनी अपरिमित शक्ति को कभी रोक नहीं पाता था। ऐसे अवसर उसका उत्साह वर्धन करते थे। मृत्यु का सामना करना वह खेल समझता था। ऐसे सुन्दर अवसर से, जिसमें उसे अपने शौर्य प्रदर्शन का अवसर मिले और मनोवांछित वस्तु भी प्राप्त हो, भला कब चूकने वाला था। उसने अपनी सम्पूर्ण सेना ली और बदनौर की ओर चल पड़ा। राव जी बदनौर में पुनः आ बसे थे। पृथ्वीराज राव जी के समक्ष आ उपस्थित हुआ और उचित स्थान पर बैठ गया। बैठने के उपरान्त पृथ्वीराज ने कहा—"मैं टोड़ा आपको दिलवाऊँगा।"

'हमारे लिये इससे अधिक सौभाग्य की बात क्या होगी कि मुझे अपनी प्रिय वस्तु पुनः प्राप्त हो जाय।"

"परन्तु आपको फिर अपने बचन का पालन करना पड़ेगा।"

"क्यों नहीं।" वीर अपने दिये हुये वचन से पीछे नहीं हटता।"

"तो फिर मैं आज ही टोड़ा के लिये कूँच करता हूँ।"

"मैं भी आप के साथ चलूँगा।" सहसा तारा ने आकर कहा। तारा इस समय पुरुष वेष में थी। उसके वास्तविक स्वरूप को पहचानना उस समय किसी के लिये भी कठिन था।

तारा को अपनी जन्मभूमि टोड़ा पर विशेष ममत्व था। वह उसकी मिट्टी में खेलकर बड़ी हुई थी। वहाँ के एक-एक कण से उसे प्रेम था। जब लल्ला खाँ ने टोड़ा छीन लिया तो उसे असीम वेदना हुई। उसका हृदय रो पड़ा था। वह बड़ी महत्वाकांक्षिनी थी। अपनी अभिलाषाओं पर सहसा इतने शीघ्र तुषारापात होते हुये देखकर उसकी कर्तव्य भावना जाग्रत हो उठी। अपने माता-पिता की एक मात्र संतान होने के कारण वह बहुत ही प्रिय थी। राव जी भी बहुत दुखी

थे । उन्हें दर-दर मारा-मारा फिरना पड़ रहा था, परन्तु तारा का अप्रतिम सौन्दर्य देखकर एक क्षण के लिये वह अपना दुख भूल जाते थे । तारा अद्वितीय सुन्दरी थी । उसका सौन्दर्य दूर-दूर तक चर्चा का विषय था । वह प्रारम्भ से ही घोड़े की सवारी करना, आखेट करना तथा अस्त्रों-शस्त्रों का विधि वत संचालन करना सीख गई थी । अब तो प्राय: उसका वेष पुरुष का ही रहना था । सौन्दर्य और शौर्य के अद्‌भुत सम्मिश्रण ने उसके व्यक्तित्व को अत्यन्त प्रभावोत्पादक बना दिया था । तारा को जब राव जी ने पृथ्वीराज के साथ युद्ध में जाने के लिये प्रस्तुत देखा तो उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा—"तुम युद्ध में ....।"

"हां, हां, मैं टोड़ा को लेने इन के साथ जाऊँगा ।" तारा बीच में ही बोल पड़ी ।

"परन्तु इनके साथ ......।"

"आप उसकी चिंता मत करिये पिता जी । मैं उसका ध्यान रखूँगा । अवसर जीवन में बार-बार नहीं आता । अवसर से लाभ न उठाना बुद्धिमानी नहीं है ।"

"परन्तु.........।"

"परन्तु–वरन्तु कुछ नहीं, पिता जी । इस समय मुझे मेवाड़ के राजकुमार के साथ जाने दीजिये । यह भी देखेंगे मेरी तलवार का जौहर ।" पृथ्वीराज की ओर उन्मुख होकर तारा ने कहा ।

"हां, हां, राव जी आज्ञा दीजिये । जब राजकुमार स्वत: युद्ध में जाने को प्रस्तुत है तो फिर आप क्यों विघ्न बन रहे हैं ? मैं लग-भग इन्हीं की आयु का होऊँगा जब पिता जी ने हम तीनों भाइयों को सुलतान की सेना का सामना करने के लिये भेजा था । और फिर आप चिंता क्यों करते हैं ? मैं तो हूँ साथ में । मैं इनका बाल भी बांका न होने दूँगा ।"

"जब दोनों लोग तैयार हो तो मैं रोक ही कैसे सकता हूँ ?" राव जी के मुँह से ये शब्द निकलते ही तारा वहाँ से फुर्र हो गई।

पृथ्वी भी अधिक देर वहाँ न रुकना चाहता था। उसने भी राव जी से कहा—"तो फिर आशीर्वाद दीजिये मैं भी चलूँ।"

"जाओ, परन्तु बड़ी सावधानी से काम लेना। लल्ला खाँ बड़ा धूर्त है।"

"उसी धूर्तता का मजा तो उसे चखाने जा रहा हूँ।" कहकर पृथ्वीराज वहाँ से उठा और बाहर हो गया।

२५

साँगा आमेर नरेश के यहाँ अपने दिन व्यतीत करने लगे। शनैः शनैः वह उसके व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हो गये कि वह अपना कोई भी रहस्य साँगा से न छिपा सके। साँगा भी अपनी योग्यता प्रदर्शन में न चूकते। प्रायः रात्रि को सोने के पूर्व महाराज साँगा के साथ बैठकर किसी न किसी समस्या पर विचार-विमर्ष करते। आज भी नित्य की भाँति महाराज ने साँगा से प्रश्न किया—"तुम्हें यहाँ कोई कष्ट तो नहीं है ?"

"आप के कृपा-पात्र को भला कष्ट सम्भव है ? और फिर दुख और सुख तो जीवन के सहचर हैं। दोनों की अपनी अलग-अलग महत्ता है। एक की अनुपस्थिति में दूसरे के अस्तित्व का आभास किया ही नहीं जा सकता। अतएव सुख की अनुभूति के लिये दुख से परिचय आवश्यक है।"

"तो फिर मनुष्य दुख से दूर क्यों भागता है ?"

"यह उसकी अज्ञानता है। अज्ञानावस्था में ही लोग प्रायः ऐसा करते हैं। दुखमयी परिस्थिति के आनन्द से वे वञ्चित रह जाते हैं।"

"तो क्या दुख में भी सुख है ?"

"दुख में सुख नहीं, वरन् दुख ही सुख है। वही व्यक्ति वास्तविक रूप से सुखी है जो दुख को दुख मानता ही नहीं। काली घटाओं के मध्य जो विद्युत का महत्व होता है वही दुख पूर्ण जीवन में सुख का। सुखतो विद्युत की भाँति क्षणिक है। इस क्षणिक दुख को सुख मानना और चिरस्थायी वस्तु को दुख मानना जीवन के वास्तविक आनन्द से वञ्चित रहना है। प्रजा आपको अत्यन्त सुखी समझती है, परन्तु क्या आप अपने को इतना सुखी समझते हैं।"

"राजसुख तो बाल से लटकने वाली एक तलवार है, जो मेरे सिर पर सदैव लटका करती है। पता नहीं, कब टूट गिरे और क्षण मात्र में सब समाप्त।"

"आपके कथन से मैं पूर्णतया सहमत हूँ। आजकल सभी उस राजसुख के चक्कर में हैं। प्रत्येक ऐसे अवसर की ताक में है कि कब उदासीनता प्रतीत हो और मनोंवांछित वस्तु प्राप्त करें। यदि ऐसा न होता तो आप मुझे क्यों नोकर रखते और मैं क्यों रात्रि में पहरा देता।" साँगा की बात सुनकर महाराज अपनी हँसी न रोक सके और सांगा का सहयोग भी प्राप्त हो गया।

"अच्छा ! अब रात्रि काफी हो गई है।"

"जी हां, मैं भी अपनी पहरेदारी पर चलूँ।"

पुनः हँसी विखर गई।

ग्रीष्म की रजनी थी। स्वच्छ आकाश था। दिन की वर्षा ने वायु मण्डल को स्वच्छ कर दिया था। चारो ओर चांदनी बिखरी थी। तारागण गगन में टिम-टिमा रहे थे। वायु मन्द-मन्द प्रवाहित हो रहीथी। वातारण शान्त था। राजमहल के दीपक तारों से होड़ ले रहे थे। सांगा महाराज के शयन कक्ष के चारो ओर पहरा दे रहा था। शनैः शनैः ज्योत्सना

मन्द होती जा रही थी। कालिमा बढ़ने लगी। कहीं से बादल का एक टुकड़ा आकर चन्द्रमा को आवृत्त करने की चेष्टा करने लगा। उसकी सहायतार्थ और भी मेघों का समूह द्रुतगति से आ गया। आकाश मेघाच्छादित हो गया। शशि ने अपनी सेना तारा सहित पराजय स्वीकार कर ली। मेघों ने विजयोल्लास में गर्जना की। समस्त वायुमण्डल प्रध्वनित होने लगा। घड़घड़ाहट वृद्धि पाती गई। वायु ने एक क्षण के लिए स्तब्धता धारण कर ली। कुछ बूँदें पृथ्वीमण्डल पर आईं। बूँदों ने जोर पकड़ा। पृथ्वी पर जल बह चला। छतों से ओरी गिरने लगी। महाराज निद्रामग्न थे। जलवृष्टि की ध्वनि से उनकी निद्रा भंग हो गई। महाराज ने रानी की ओर दृष्टिपात किया तो वह भी जग रहीं थीं। महाराज ने कहा—"वर्षा हो रही है।"

"हाँ, इसीलिये तो नींद खुल गई है।"

"बड़ा सुहावना समय है, परन्तु यह तेजी से पानी गिरने का शब्द अच्छा नहीं लग रहा है।',

"यह तो ओरी है। जल की अधिकता में उसका गिरना तो स्वाभाविक ही हैं।"

"इसे तो बन्द हो जाना चाहिये।" महाराज का इतना कहना था कि ओरी से उत्पन्न होने वाली ध्वनि बन्द हो गई।

"लीजिये आप के कहते ही ओरी बन्द हो गई।" महारानी ने कहा।

"पानी बन्द हो गया होगा।"

"पानी तो अब भी उतनी ही तेजी से बरस रहा है।" रानी ने कहा।

"ऐसा कैसे हो सकता है ? यदि पानी बरसेगा तो ओरी अवश्य गिरेगी।"

"मगर यह तो ओरी की ध्वनि भी नहीं आ रही है और पानी भी

बरस रहा है।"

"मैं नहीं मानता कि पानी बन्द हो गया है।"

"अच्छा तो लगाओ बाजी।"

महाराज और महारानी में बाजी लग गई। महाराज ने दासी को बुलाया। दासी के आते ही महाराज ने पूँछा—"बाहर पानी बरस रहा है या नहीं?"

"बरस रहा है।"

"तो फिर यह ओरी गिरने की आवाज क्यों बन्द हो गई?"

"अभी देख कर आती हूँ महाराज।" कह कर दासी बाहर चली गई। कुछेक क्षणों में पुनः वापस आकर कहा—"ओरी गिरने के स्थान पर पहरेदार ने घास लाकर रख दी है। इससे ओरी तो गिर रही है परन्तु आवाज नहीं हो रही है।"

"पहरेदार क्या कर रहा है?"

"उसी ओरी के पास खड़ा है। पानी तेजी पकड़ता जा रहा है। ओरी और भी तेजी से गिरने लगी है। जल के वेग के कारण घास कभी-कभी हट जाती है तो पहरेदार उसे यथा स्थान ठीक कर देता है।"

"अब तुम जा सकती हो।"

दासी चली गई।

महाराज बाजी हार गये। रानी विजयोल्लास में बोली—"आप हार गये ना? मैंने कहा था कि पानी बरस रहा है, आप माने नहीं। अब तो विश्वास हो गया कि पानी और भी तेजी से बरस रहा है?"

"हाँ, मैं हार गया और तुम जीत गई, परन्तु मैं यह सोच रहा हूँ कि पहरेदार के मस्तिष्क में यह बात कैसे आई कि ओरी का गिरना हम लोगों को बुरा लग रहा है?"

"बात तो विचारणीय है।"

"मुझे यह अवश्य किसी बड़े घर का प्रतीत होता है। इसकी विचार शक्ति बड़ी ही प्रबल है। बड़े लोगों की भावनाओं का अनुभव बड़े ही लोगों को हो सकता हैं। ओरी का गिरना अवश्य उसे बुरा लग रहा होगा।"

"हो सकता है सम्भवत: इसीलिये वहाँ घास रख दी हो।"

"मुझे भी कुछ ऐसा ही विश्वास है।"

महाराज को फिर इसके बाद नींद नहीं आई। वह साँगा के विषय में ही विचार करते रहे। प्रात: होते ही उन्हों ने साँगा को बुला भेजा। साँगा उनके समक्ष शीघ्र आ उपस्थित हुआ। सांगा को नीचे से ऊपर तक ध्यान पूर्वक देखते हुये महाराज ने कहा—"तुमने आज रात को ओरी बन्द कर दी थी ?'

"ओरी बन्द नहीं की थी, बल्कि गिरने के स्थान घास रख दी थी।"

"तुमने ऐसा क्यों किया था ?"

"मुझे उससे उत्पन्न होने वाली ध्वनि कर्णकटु प्रतीत हो रही थी।"

सांगा की बात सुनकर महाराज सोचने लगे—'जो बात मुझे बुरी लगती है वही इसे भी बुरी लगती है। यह साम्यता क्यों ? स्वामी और सेवक की भावनाओं का अन्तर कहां गया ? यह अवश्य किसी राजवंश से सम्बन्धित है।' इस विचार के उठते ही महाराज ने समक्ष खड़े साँगा से कहा—"बैठ जाओ।"

साँगा ने आज्ञा का पालन किया और वहीं बैठ गये।

तुम्हें हमारे यहाँ रहते हुये इतने दिन हो गये परन्तु मैं यह न जान सका कि तुम कौन हो ?"

"आपका दास।" सांगा ने उत्तर दिया।

"वह तो तुम्हें परिस्थितियों ने सम्भवत: बना दिया है, परन्तु मैं

जानना चाहता हूँ कि तुम कहां के निवासी हो, और किस राज से सम्बन्धित हो ?"

"बस, इतना ही समझ लीजिये कि विषय परिस्थितियों के बीच पड़ा हुआ एक मानव मात्र हूँ। इसके आगे मैं कुछ नहीं बताना चाहता।"

"क्यों ?"

"मैं नही चाहता कि मैं अपना परिचय देकर अपने वंश के नाम को कलंकित करूँ।"

"इसमें वंश को कलंकित करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। तुम्हारी सामाजिक स्थिति के अनुसार तुम्हारे साथ व्यवहार किया जायगा।"

"मेरे प्रति आप जो समवेदना प्रकट कर रहे हैं मैं उसका सम्मान करता हूँ और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपने कथनानुसार आचरण भी करेंगे, परन्तु मैं किसी की आँख का काँटा बनकर नहीं रहना चाहता।"

"यह तुम क्या कह रहे हो ? तुम्हारा ऐसा सज्जन पुरुष भला कहीं खटक सकता है ?"

"आप की भांति सब तो नहीं हो सकते। आप ने अपनी सेवा का अवसर प्रदान करके जो मुझे सम्मान दिया है, उसके कारण मैं अन्य सेवकों की ईर्षा का पात्र बना हुआ हूँ। अब और अधिक सम्मान प्राप्त कर अधिक ईर्षा का कारण नहीं बनना चाहता।"

"किन्हीं की ईर्षा के भय से जिस सम्मान के अधिकारी हो उससे वञ्चित रहना भी तो उचित नहीं।"

"मुझे अपनी वर्तमानावस्था से कोई असन्तोष नहीं।"

"यह तो तुम्हारा गुण है कि अपने अधिकार का उपभोग न करने पर भी संतुष्ट हो ! मैं नहीं चाहता कि मेरे राज्य में किसी के व्यक्तित्व

का मूल्यांकन न किया जाय। मैं यह अपना कर्तव्य समझता हूँ कि तुम जिस सम्मान के अधिकारी हो तुम्हें वही दिया जाय।" महाराज कुछ रुककर पुन: कहने लगे—"इस पर भी यदि तुम अपने को गुप्त रखना चाहते हो तो फिर तुम्हारे अन्दर अन्य सद्‌गुणों के साथ अवज्ञा एक दुर्गुण भी उपस्थित है।"

"मैं आप के प्रति ऐसी धारणा नहीं बनने देना चाहता। मुझे आप की हर आज्ञा शिरोधार्य है।" कह कर साँगा नतमस्तक हो गये।

"तो फिर इसे आज्ञा समझ कर ही अपना परिचय दो।"

महाराज की बात सुनकर साँगा अपना परिचय देने के लिए बाध्य हो गये। उसने सिर ऊपर करते हुये कहा—"मैं मेवाड़ का राजकुमार हूँ।"

"महाराणा रायमल के बड़े राजकुमार संग्रामसिंह तुम्हीं हो?"

"जी हां।"

"लेकिन तुम इस दशा में क्यों मारे-मारे फिर रहे हो?"

"किसी कारण बश।"

"अब मैं तुम्हारे किसी कारण पर ध्यान नहीं दूँगा। आज ही मैं राणा जी को पत्र लिख कर तुम्हारे यहाँ होने की सूचना देता हूँ।"

"ऐसा कदापि न कीजियेगा।"

"क्यों?"

"मैं भ्रातृ द्रोह नहीं चाहता।"

"क्या तात्पर्य? यह भ्रातृ द्रोह कैसा?"

"मेरे दो छोटे भाई हैं जो मेवाड़ के शासक बनना चाहते हैं। मैं सबसे बड़ा हूँ। परम्परानुसार मुझे ही उत्तराधिकारी निश्चित ठहराया गया था। इस कारण दोनों भाई मुझे अपना प्रतिद्वन्दी समझने लगे। एक दिन हम लोग देवी के मन्दिर में गये और वहाँ भ्रातृ संघर्ष हो

गया। किसी तरह मैं उससे निकल भागा। अब पुनः जाकर मैं भ्रातृ-द्रोह उत्पन्न नहीं करना चाहता।"

"यह ठीक है कि तुम यहीं मेरे पास रहो, परन्तु राणा जी को तो तुम्हारे यहाँ होने की सूचना मिलनी ही चाहिये।"

"यदि आप उन्हें सूचित करियेगा तो वे अवश्य मुझे वहाँ जाने के लिये बाध्य करेंगे।"

"इसके लिये मैं उन्हें मना लूँगा।"

"जैसी आप की इच्छा।" कह कर साँगा वहाँ से चल दिये।

साँगा का मन अशान्त बना रहा। वह मेवाड़ पुनः जाना नहीं चाहते थे। अतएव उन्होंने आमेर त्याग देने का निश्चय किया। दोपहर के समय अपनी गठरी ली और अनिश्चित स्थान की ओर चल दिये। धूप तेज थी। पृथ्वी तवे की तरह जल रही थी। सूर्य गगनमण्डल में चमक रहा था। साँगा एक जीवन पथ के परिश्रान्त पथिक की भाँति चले जा रहे थे।

२६

पृथ्वीराज अपनी सेना सहित टोड़ा पहुँच चुका था। तारा भी साथ में थी। टोड़ा में ताजिये का समारोह मनाया जाने वाला था। चारो ओर तैयारियाँ हो रहीं थीं। सर्वत्र उल्लास एवं आनन्द की छटा व्याप्त थी। दुर्ग की सजावट विशेष रूप से की गई थी। लल्ला खाँ इसी दुर्ग में निवास करता था। प्रतःकाल का समय था। वह बस्त्राभूषण धारण कर रहा था। यवन ताजिया के समारोह में भाग लेने के लिये

दुर्ग के बाहर आ चुके थे। पृथ्वीराज भी सेना सहित उनमें मिल गया। उत्सव के उल्लास में यवन शत्रु का आगमन न जान सके। थोड़े समय पश्चात जलूस बाहर निकला। लल्ला खां बरामदे में खड़ा जलूस को देख रहा था। जलूस काफी लम्बा था और गति थी मन्द फलतः काफी देर तक निकलता रहा। इसी बीच पृथ्वीराज दुर्ग के पीछे की ओर से दुर्ग में प्रविष्ट हो गया। लुक-छिपकर वह उसी स्थान पर पहुँचने का प्रयास करने लगा जहां लल्लाखां खड़ा था। तारा दुर्ग के द्वार पर आ गई। उसकी दृष्टि लल्ला खां पर पड़ी। अपने शत्रु को प्रसन्न मुद्रा में देखकर उसके नेत्रोंमें रक्त उतर आया। क्रोध से शरीर कांपने लगा। भुजायें फड़क उठीं। तारा ने लल्ला खाँ को अपने तीर का लक्ष्य बनाकर तीर छोड़ दिया। लक्ष्य अचूक था। तीर के लगते ही लल्लाखाँ एक विशेष गर्जना के साथ वहीं लोट गया। इस समय तक पृथ्वीराज उसके समीप आ गया था। उसने अपनी तलवार से लल्ला खाँ के दो टुकड़े कर दिये। उसके गिरते ही सम्पूर्ण राजभवन में हाहाकार मच गया। चारो ओर चीख पुकार मच गई। उल्लास को विलीन होते देर न लगी। हास्य रुदन में परिणत हो गया। ताजिया के मातम के साथ-साथ वास्तविक मातम भी छा गया। लोग इधर से उधर भागने लगे। तारा की तलवार नीचे चलने लगी थी। मूली-गाजर की भांति यवनों की गर्दन काट रहीं थीं। यवनों ने भी अपनी तलवारें खीच लीं और युद्धरत हो गये। राजपूत सैनिक तारा के नेतृत्व में अपनी वीरता का अद्भुत प्रदर्शन कर रहे थे। यवनों की संख्या अधिक थी। प्रथम तो वे अचानक आक्रमण के कारण भयभीत हुये, परन्तु शीघ्र ही सचेत होकर युद्ध में संलग्न हो गये। तारा चण्डी का स्वरूप धारण किये हुये थी। उस का रणकौशल राजपूतों में उत्साह वर्धन कर रहा था। यवन जीवन की अन्तिम घड़ी समझकर दूने जोश के साथ मार-काट करने लगे। दो-दो चार-चार के जत्थे में तारा की ओर बढ़ते, परन्तु वह देखते ही

देखते उन्हें साफ कर देती। उसके समक्ष कोई टिक नहीं रहा था। यवनों का एक समूह युद्ध करता हुआ तारा की ओर बढ़ा और उसे घेर लिया। उस पर चारो ओर से तलवारें गिरने लगीं, परन्तु वह वीर किसी भी वार को तन पर न गिरने देती। उस समय उस के दोनों हाथों में तलवारें थीं। अन्धा-धुन्ध मार-काट चल रही थी। तारा के प्राण संकट में पड़ गये। समस्त यवन सैनिकों ने तारा को अपना लक्ष्य बनाया और सैकड़ों की संख्या में तारा के ऊपर टूट पड़े। इतनेमें ही पृथ्वीराज यवनोंकी चीरते तारा के रक्षार्थ आ पहुँचा। पृथ्वी की तलवार तो उस समय देखते ही बनती थी। जिस ओर घूमता सफाया हो जाता। तारा ने पृथ्वी को ऐन मौके पर पाकर अपने अन्दर आत्मबल का अनुभव किया और पुन: नवीन स्फूर्ति के साथ तलवार चलाने लगी। यवन कट-कट कर गिर रहे थे। देखते-देखते यवनों में भगदड़ मच गई। यवनों का भागना था कि राजपूतों के उत्साह में अभिवृद्धि हुई। दुर्ग की ओर वे बढ़ने लगे, परन्तु थोड़ी दूर बढ़ कर वे रुक जाते। तारा ने दूर से इस स्थिति को समझ लिया और इस ओर लपकी। दुर्गद्वार पर मदिरा में मस्त एक हाथी अपनी सूँड़ हिला रहा था। उसके भय से राजपूव दुर्ग में प्रवेश करने का साहस नहीं कर रहे थे। तारा ने हाँथी पर एक दृष्टि डाली और तलवार का एक ऐसा हाँथ मारा कि उसकी सूँड़ कट कर दूर जा गिरी। सूँड़ कटने पर हाथी चिंघाड़ कर भागा। वह जिस ओर जाता उसी ओर भगदड़ यच जाती। सभी हाँथी से रक्षा करने का प्रयास कर रहे थे। इसी मध्य अवसर पाकर तारा राजपूत सैनिकों को लेकर दुर्ग में प्रविष्ट हो गई। पृथ्वीराज अभी तक बाहर ही लड़ रहा था। वह भी शनैः शनै: दुर्ग में प्रवेश करने लगा। दुर्ग की सुरक्षित सेना तारा से भिड़ गई। तारा की अद्‌भुत मार देखकर यवन दाँतों तले उँगली दबा रहे थे। यवनों ने उसे धर्म-युद्ध समझ कर अपने प्राणों की आहुति दी परन्तु उन्हें सफला न मिल सकी और

पराजित होकर भागना पड़ा। टोढ़ा यवनों के हाँथ से मुक्त हो गया। पृथ्वी को उद्देश्य में सफला मिल गई। तारा का स्वप्न साकार हो गया।

२७

संध्या होने जा रही थी। साँगा को आज भी खाने को न मिला था। वह पेड़ों की ओर निहारता शनैः शनैः आगे बढ़ रहे थे। सहसा उसके कान में ध्वनि पड़ी,–"कौन हो तुम ?"

साँगा ने बगल की ओर देखा। कुछ लोग बैठे उन्हीं की ओर देख रहे हैं। उसी व्यक्ति ने पुनः प्रश्न किया,—"इस तरह क्या देख रहा है ? बोलता क्यों नहीं तू कौन है ?" साँगा पूर्ववत देखते रहे।

उन में से एक व्यक्ति ने जो सम्भवतः सरदार प्रतीत होता था, कहा–"यहाँ आओ !" साँगा उसके बुलाने पर चले गये।

सरदार का नाम कर्मचन्द्र था। कर्मचन्द्र ने कहा–"बैठ जाओ ।"

सांगा वहीं पृथ्वी पर बैठ गये। साँगा के बैठने पर सरदार ने पूछा—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"साँगा !"

"क्या काम करते हो ?"

"कुछ नहीं।"

"खाते क्या हो ?"

"वृक्षों के फल।"

"इतना लम्बा चौड़ा शरीर है। पेट भर जात फल से ?"

"दिन भर का भूखा हूँ।"

"मेरे गिरोह में शामिल हो जाओगे ?"

"क्या करते हैं आप लोग ?"

साँगा का प्रश्न सुन कर सरदार कर्मचन्द बड़ी जोर से हँस पड़ा। हँसी पर नियन्त्रण पाते हुए उसने कहा—"डाका डालता हूँ। कहो, स्वीकार है ?"

साँगा मौन होकर उनकी ओर देखने लगे।

"क्यों चुप क्यों हो गये ?" सरदार ने साँगा को ध्यान से देखते हुए प्रश्न किया।

"मुझसे यह काम न होगा।" साँगा ने कहा।

"भूखों मरना पसन्द है ?"

"नहीं।"

"तो फिर इससे अच्छा क्या काम हो सकता है ?"

"इसे आप अच्छा काम कहते हैं ?"

"क्यों, इसमें बुराई क्या हैं ?"

"किसी को कष्ट देना अच्छा काम है ?"

"अत्याचारी पर अत्याचार करना अन्याय नहीं है। हम लोग किसी गरीब को नहीं लूटते। बड़े-बड़े ताल्लुकेदार, जागीरदार, जिन्होंने जनता का पैसा चूस-चूस कर जमा किया है, मेरे लक्ष्य हैं।"

"परन्तु मेरे लिये ऐसा भी असम्भव है !"

"धर्मात्मा प्रतीत होता हैं।" एक साथी ने कहा।

"बेचारा भूखा है, इसीलिये ऐसी बातें कर रहा है।" एक डाकू ने कहा।

"लाओ, इसे भोजन कराओ।" सरदार ने कहा।

भोजन आया और साँगा के समक्ष रखा गया। साँगा द्विविधा में पड़े सोचते रहे कि खाये कि न खाये। सरदार इस बात को ताड़ गया। उसने कहा--"हम किसी के साथ विश्वासघात नहीं करते और फिर तुमसे हमें क्या मिलेगा ?"

साँगा भोजन करने लगे।

सरदार ने कहना प्रारम्भ किया--"शरीर से कोई राजपूत मालूम पड़ते हो। अगर राजपूत हो तो बहादुर भी होगे। मेरे गिरोह में

सम्मिलित हो जाओ। आराम से जीवन कट जायगा, नहीं तो जीवन भर योंही मारे-मारे घूमोगे। इस जीवन से तो मृत्यु अच्छी।"

साँगा भोजन कर चुके थे। चन्द्रमा की चान्दनी चारों ओर बिखरी हुई थी। सुरभित वायु प्रवाहित हो रही थी। साँगा ने हाथ-मुँह धोकर कहा- "प्रात:काल मैं आपको अपना निश्चय बताऊँगा।"

सांगा का मस्तिष्क अशान्त था। जब से मेवाड़ त्यागा था तब से उनका जीवन अव्यवस्थित ही रहा। कभी भी ठीक से भोजन न मिला और न रात्री को सो ही सका। अपनी भावनाओं को कुचलते अनधिकारियों की घुड़कियाँ सहते जीवन यापन करते रहे। पेड़ के नीचे वह पड़े परन्तु नींद कह। वहाँ अपनी स्थिति पर विचार करने लगे--व्यर्थ में मारा-मारा क्यों फिर रहा हूँ? क्या मैं अपने भाइयों से अशक्त था। क्या मैं उनसे लड़ नहीं सकता था? पिता जी भी तो मुझे ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। यदि मैं चाहता तो भाइयों को मार कर अब तक शासन कर रहा होता। जब उन्होंने मुझे मारने में कोई कसर न उठा रक्खी तो फिर मैंने ही क्यों दया दिखाई?" इस प्रकार के अनेक विचार उसके मस्तिष्क में चक्कर काटते रहे। विगत जीवन की समस्त घटनायें एक-एक करके स्मरण आने लगीं। ज्यों-ज्यों वह उन घटनाओं का विश्लेषण करते त्यों-त्यों अपने ही को दोषी पाते। करवटें बदलते रात व्यतीत होने लगी। प्रात:काल उनकी आँख लग गई। सूर्योदय हो गया। शनैः शनैः सूर्यगगन मण्डल में चढ़ने लगा। एक सरदार ने आकर साँगा को जगाया और कहा--"कब तक सोते रहोगे? सम्भवतः रात में नींद नहीं आई?"

"साँगा सरदार की बात सुनकर मुस्करा दिये।"

"उठो शौचादि से निवृत हो लो। आज तीसरे पहर चलना है।"

"कहाँ?"

"यह हमें नहीं मालूम!"

"क्यों?"

"सरदार यह किसी को नहीं बताते ।"

"कोई पूँछता भी नहीं है ?"

"बहुत दिन हुए एक ने पूँछा था तो उसे सरदार ने मौत के घाट उतार दिया था ।"

"तो तुम्हारा सरदार ऐसा जालिम है ?"

"जालिम न हो तो डाके कैसे डालें ?"

"अब तक कितने डाके डाले हैं ?"

"यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन जब से मैं आया हूँ तब से लगभग बीस डाके डाल चुके हैं ।"

"तुम्हें इस गिरोह में शामिल हुये कितने दिन हो गये हैं ?"

"अगले महीने से पूरा एक साल हो जायेगा ।"

"तब तो सरदार के पास खूब धन होगा ?"

"उनके पास धन की क्या कमी ? जिससे जितना चाहते हैं वसूल कर लेते हैं ।"

"परन्तु उसे रखते कहाँ हैं ?"

"श्री नगर में ।"

"वहाँ क्या है ?

"वहीं तो उनका महल है । हमारे सरदार बहुत बड़े जागीरदार हैं । यह काम तो गुप्त रूप से करते हैं ।"

"यह श्री नगर है कहाँ ?"

"यहाँ से थोड़ी दूर पर है ।"

"तो यह कहिये कि आप लोगों का यह पहला पड़ाव है । अभी कहीं डाका नहीं डाला है ।"

"उसी के लिये तो आज तीसरे पहर चलना है ।"

"अच्छा भाई !" कह कर उठे और शौचादि से निवृत होने चल दिये ।

२८

राव जी कुछ दिनों में ही बदनोर छोड़कर टोड़ा में आ बसे। टोड़ा निवासी अत्यन्त प्रसन्न थे। तारा और पृथ्वीराज के विवाह की तैयारियां की जा रहीं थीं। घर-घर मंगल गीतों से ध्वनित हो रहा था। मंगल सूचक कार्य-व्यापार स्थान-स्थान पर किये जा रहे थे। जनता आनन्द-सरिता में हिलोरे ले रही थी। मुहूर्त के कुछ दिन पूर्व से ही टोड़ा सजाया जाने लगा था। बाल-वृद्ध, युवा, नर-नारी सभी मस्त थे। दिन बीतते गये। मुहूर्त का दिन आ गया। यवन के चंगुल से टोड़ा को मुक्त करने वाली तारा की मांग में आज सिंदूर भरा जायेगा। इस भावना से लोग पागल हो रहे थे। राजमहल के राज द्वार पर शहनाइयाँ बज रही थीं। संगीत की स्वर लहरी से सम्पूर्ण टोड़ा ध्वनित हो उठा।

पृथ्वीराज भी प्रसन्न था। उसकी अभिलाषा के पूर्ण होने का दिन था। उसके मित्रगण उसके आस-पास एकत्र थे। भाँति-भाँति के वस्त्राभूषणों से उसे सजा रहे थे। पृथ्वीराज गम्भीर था। वह उस समय अपने अतीत की घटनाओं पर विचार कर रहा था। भाइयों के साथ बालोचित क्रीड़ायें घूमना-फिरना, उठना-बैठना झगड़ना आदि एक-एक करके चित्र की भांति प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहीं थीं। एक मुँह लगे मित्र ने पृथ्वीराज को अतीव गम्भीरावस्था में देखकर कहा-"राणा जी, अभी से लगन लग गई? अभी तो कई घण्टे शेष हैं।"

सबलोग हँस पड़े।

पृथ्वीराज की विचारधारा टूट गई। उन्होंने भाव जगत से उतर कर यथार्थ जगत में आते हुये कहा—"क्या कहा?"

"अभी से स्मृति में खो गये ?"

"किसकी ?"

"जिसके साथ ब्याह करने जा रहे हो।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। वास्तव में.........।"

"अब सफाई मत दीजिये राणा जी। हमलोग सब जानते हैं कि चित्र नेत्रों के समक्ष होगा।"

"तुम लोग भी विचित्र बात करते हो। जिसे एक बार देखा तक नहीं उसके चित्र को सम्भावना ही कैसे हो सकती है ?"

"क्यों छिपा रहे हो राणा जी। जिसके साथ दो दिन बराबर रहे उसी को देखा नहीं ?"

"किसके साथ ?"

"तारा देवी के साथ।"

"कब ?"

"टोड़ा पर आक्रमण के समय।

"तुम लोग भी हवा में गांठे बाँधते हो।"

"तारा ने लल्ला खां को नहीं मारा था ? हाँथी की सूँड़ नहीं काटी थी ?"

"अरे, वह तो राव जी के राजकुमार थे।"

"राव जी के राजकुमार !" कह कर वह हँस पड़ा। उसके साथ अन्य सभी साथी हँस पड़े।

"राव जी के कोई राजकुमार है भी ?"

"तो फिर वह कौन था ?"

"अरे, वही तो उस की तारा बेटी है जो आपके साथ पुरुष वेष में गई थी।"

"तब तो आश्चर्य की बात है। मैं तो उसे राजकुमार ही समझता था।"

"आप क्या टोड़ा की समस्त जनता ही उन्हें राजकुमार ही समझती है, लेकिन कहीं अब न समझ बैठियेगा।" एकबार पुनः हास्य गूंज उठा।

यह ज्ञात होने पर कि तारा ही उनके साथ पुरुष वेष में टोड़ा के युद्ध में थी—पृथ्वीराज की प्रसन्नता की सीमा न रही। उसका स्वरूप उनकी दृष्टि के समक्ष चित्रित हो गया। उसके वीर वेष ने तो उन्हें आत्मविभोर कर दिया। तारा की प्रत्येक क्रिया-कलाप में उन्हें एक विशेषता प्रगट होने लगी; जितना ही विचार करते उतनी ही उनकी तारा से प्रति आसक्ति बढ़ती जाती। पृथ्वीराज विचारमग्न बैठे थे कि इसी बीच अचानक एक राजपूत आया और राजसी ढंग से अभिवादन करने के पश्चात् बोला—'लीजिये मेवाड़ से यह पत्र आपके लिये एक व्यक्ति लाया है।" राणा पत्र पढ़ने लगे।

बेटा पृथ्वीराज,

चिरंजीव रहो।

टोड़ा विजय करने में तुमने और तारा ने जिस वीरता का परिचय दिया है, उससे मैं तुम दोनों पर बहुत प्रसन्न हूँ। और यह जान कर कि रावजी मेरे समधी बनने जा रहे है, मुझे विशेष आनन्द हुआ है। तारा को तो मैं अपनी बहू के रूप में देखने की मेरी परम अभिलाषा थी। उसके गुणों पर मैं पहले से ही मुग्ध था। जीवन भर आनन्दपूर्वक रहो-यही मेरा आशीर्वाद है। तुम लोग जब चाहो चित्तौड़ आकर शासन भार से मुझे मुक्त करो।

तुम्हारा पिता
रायमल

पत्र पढ़ते ही पृथ्वीराज का मन-मयूर नर्तन करने लगा। उसके जीवन में जिस वस्तु का अभाव था, उसे इस पत्र ने पूर्ण कर दिया। पत्र पत्रवाहक को लौटाते हुये पृथ्वीराज ने कहा—"लो, इसे ले जाकर राव जी को देदो।"

पत्रवाहक पत्र लेकर चला गया।

उसी रात्रि में तारा का विवाह पृथ्वीराज के साथ हो गया। कुछ दिनोंपरान्त पृथ्वीराज तारा सहित चित्तौड़ लौट आये।

१६

सांगा अन्यमनस्क भाव से कर्मचन्द के साथ रहने लगे। उन्हें डाका डालना अच्छा न लगता। उनकी आत्मा इसके औचित्य को कभी स्वीकार न करती, फिर भी वह अपने सरदार के संकेत पर डाका डालते, जागीरें लूटते और मौज लेते। इतना सब कुछ होने पर भी वह गिरोह से अलग-अलग से रहते। जब कभी कहीं पड़ाव पड़ता तो वह कुछ हट कर अपने बैठने-आराम करने का स्थान चुन लेते और विचारों में खोये रहते।

दिन काफी चढ़ आया था। सूर्य गगन मण्डल में तेजी से चमक रहा था। गिरोह कहीं रात में डाका डाल कर लौट रहा था। एक सघन वन में ठहरने का निश्चय हुआ। लूट का माल सुरक्षित स्थान पर रखने के पश्चात् सभी लोग आवश्यक कार्यों में व्यस्त हो गये। सांगा छाया में बैठकर बिश्राम करने लगे। रातभर के जंगे तथा थके होने के कारण वहीं लेट गये। यद्यपि वृक्ष सघन था तथापि सूर्य की किरणें छन कर साँगा के मुखमण्डल पर पड़ रहीं थीं। वायु में शीतलता थी। उन्हें आराम मिला और वह वहीं सो गये।

कर्मचन्द बैठा लूटे हुये माल का निरीक्षण कर रहा था। बहुमूल्य वस्तुयें एक ओर रख रहा था और जो साधारण थीं उन्हें दूसरी ओर। रत्नों की चमक देखकर कभी-कभी वह प्रसन्न भी हो उठता था। बड़े मनोयोग से वस्तुओं का विभाजन कर रहा था। इसी बीच एक साथी भागता हुआ आया और घबड़ाहट के स्वर में बोला—"सरदार ! साँप।"

"कहाँ, ?" सरदार ने प्रश्न किया।

"साँगा के सिर पर।"

"कहीं मस्तिष्क तो विकृत नहीं हो गया है ? सिर पर कहीं सांप होता है ?"

"आप मेरी बात का विश्वास करिये। मैंने अभी अपनी आँखों से देखा है ?"

"क्या देखा है ?"

"साँगा एक पेड़ की छाया के नीचे पड़ा सो रहा है। उसके मुख मण्डल पर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं। सांप अपना फन फैलाये उसके मुँह पर छाया कर रहा है और एक विचित्र बात यह है कि सांप के फन पर खञ्जन पक्षी बैठा बड़ी मस्ती से गा रहा है।"

"चलो देखें तो चल के।" कहकर सरदार द्रुतगति से चल दिया।

सरदार के साथ अन्य लोग भी थे। सब ने देखा कि सांगा आराम से सो रहे हैं। उनकी श्वास साधारण गति से चल रही है। उनकी मुद्रा प्रसन्न प्रतीत हो रही है। देखकर सभी आश्चर्य में डूब गये। कर्मचन्द बोला—"अवश्य ही यह कोई प्रतापी व्यक्ति हैं।"

"और जब से यह हमारे गिरोह में सम्मिलित हो गया है तब से कोई भी डाका खाली नहीं गया।" एक अन्य साथी ने कहा। कर्मचन्द सभी को साथी कहकर सम्बोधित करता था।

उस विचित्र दृश्य की ओर ध्यान से देखते हुये कर्मचन्द बोला—"तनिक मारू को तो बुला लाओ।"

एक साथी मारू को लेने चला गया। मारू सगुन विचारने में बड़ा चतुर था। उसका विचारा हुआ सगुन खाली नहीं जाता था। कर्मचन्द्र को उस पर अटूट विश्वास था। उसी के निर्देशित मार्ग का वह अनुसरण करता था। मारू आया और उसने भी वह दृश्य देखा। सभी लोगों की दृष्टि मारू के मुँह पर थी। मारू कुछ क्षण विचार करने

के पश्चात् बोला ''यह बड़ा प्रतापी पुरुष है। अपनी जाति धर्म तथा कुल का नाम उज्ज्वल करेगा और अवश्य ही किसी न किसी दिन यह चक्रवर्ती सम्राट होगा।'' मारू की भविष्यवाणी सुनकर सभी लोग प्रसन्न हो गये।

कर्मचन्द्र ने कहा—''मैं तो पहले देखकर समझ गया था कि यह अवश्य कोई भाग्यशाली व्यक्ति है।''

कर्मचन्द्र थोड़ी देर तो वहां रुका रहा। उसी बीच सांप हट कर चला गया, परन्तु सांगा पूर्ववत सोता रहा। सरदार जयसिह और जैमू को सम्बोधित करके बोला—''तुमलोग यहीं रुको और हर प्रकार से इसकी रक्षा करो।''

सरदार के साथ अन्य लोग भी वहां से चले आये।

थोड़ी ही देर पश्चात् सांगा की नींद खुली। जयसिह और जैमू तत्क्षण हांथ जोड़कर खड़े हो गये। सांगा ने उन्हें असाधारण व्यवहार प्रदर्शित करते हुये देखकर पूंछा—''यह क्या है ? तुम लोग हांथ जोड़े क्यों खड़े हो ?''

''आप अन्नदाता जो हैं।''

''कौन अन्नदाता, मैं ?''

''जी हां, सरकार।''

''क्यों हंसी कर रहे हो, भाई ! हमलोगों का तो अन्नदाता अपना सरदार है।''

''नहीं महाराज आप उनके भी अन्नदाता हैं।''

''अच्छा, अच्छा छोड़ो यह नाटक और यह बताओ कि अब चलना किस ओर है ?'' सांगा ने जयसिह के कंधे पर हांथ रखते हुये कहा।

''जिस ओर आपकी आज्ञा हो।''

''अरे, अब छोड़ोगे भी यह स्वांग कि बस मुझे.........।''

''बस-बस, अब आगे कुछ न कहियेगा। आप हमारे महाराज हैं। हम लोग आपकी प्रजा हैं। आपके मुंह से कोई अनुचित शब्द शोभा नहीं देता।''

"तो फिर तुम लोग इस तरह नहीं मानने के ? चलो अभी तुम लोगों की सरदार से शिकायत करता हूँ ।" सांगा ने कुछ बड़प्पन अनुभव किया।

तीनों वहां से चल दिये । सांगा आगे थे और वे दोनों अंगरक्षक की भांति पीछे-पीछे बड़ी सावधानी से अनुसरण कर रहे थे । सांगा को आता हुआ देखकर सभी उठकर खड़े हो गये । अब साँगा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । इन्होंने आगे बढ़कर कहा—"आज मुझे यह नाटक देखकर आश्चर्य हो रहा है ।"

"यह नाटक नहीं वास्तविकता है । हम लोग अभी तक आपको पहचान नहीं सके थे ।" सरदार ने कहा ।

सांगा के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई । जिस रहस्य को वह अभी तक छुपाये हुये थे उसके खुल जाने की आशंका ने उनके मस्तिष्क में प्रवेश कर लिया । उन्होंने सशंकित वाणी में पूँछा—"क्या जान गये हैं आपलोग मेरे विषय में ?"

"आप एक महा प्रतापी व्यक्ति हैं । भविष्य में आप चक्रवर्ती सम्राट बनेंगे ।"

"अब तो मुझे वास्तव में आश्चर्य हो रहा है कि आप जैसा बुद्धिमान व्यक्ति भी इस तरह बहकी-बहकी बातें करता है ।"

"इस पर आप अविश्वास न करिये । हमलोगों ने आज एक विचित्र दृश्य देखा है ।"

"क्या देखा है आप लोगों ने ?"

जब आप अभी सो रहे थे तो एक सर्प आकर आपके मुखमण्डल पर अपना फन फैलाकर छाया करने लगा और खञ्जन पक्षी उसके फन पर बैठा हुआ गा रहा था ।"

"लेकिन मुझे कुछ भी पता नहीं चला ।"

"आप सो रहे थे और आप के जगने के पूर्व ही सांप हट गया था ।"

"परन्तु इस घटना से आपने यह कैसे कल्पना कर ली कि मैं चक्रवर्ती सम्राट होऊँगा ?"

"मारू ज्योतिषी ने भविष्य वाणी की है ।" सरदार की बात सुनते ही साँगा के मानस पटल के समक्ष मन्दिर वाला दृश्य उपस्थित होगया। वह उसी में खो गये। उनके नेत्र खुले थे, परन्तु वहां के किसी भी व्यक्ति को नहीं देख रहे थे। वह विचार कर रहे थे कि भाइयों से तो ये लोग अच्छे हैं जिन्हें मेरे भाग्य से कोई ईर्षा-द्वेष नहीं है। मेरा सुन्दर भविष्य जान कर ये लोग प्रसन्न हो रहे हैं। यदि पृथ्वी होते तो अवश्य तलवारें खिच जातीं।"

"सम्भवत: आपको इस पर विश्वास नहीं हो रहा है ?" सरदार ने कहा।

साँगा भाव जगत में विचरण कर रहे थे। सरदार की बात सुनते ही उनकी बिचार धारा टूट गई और उत्तर दिया—"ये भविष्यवाणियां बड़े संकट उत्पन्न करती हैं। इसी प्रकार की अनेक बार भविष्यवाणियाँ सुन चुका हूँ और मुझे अनेक संकटों का सामना करना पड़ा है। मुझे इन पर कुछ विश्वास कम होने लगा है।"

"भीरू की भविष्य बाणी कभी भी असत्य नहीं होती। हम लोगों को मारू की ज्योतिष पर पूर्ण विश्वास है"

"परन्तु जो कुछ होना होगा भविष्य में होगा। जयसिंह और जैमू ने तो अभी से मुझे अन्नदाता और महाराज आदि शब्दों से सम्बोधित करना प्रारम्भ कर दिया है।"

सरदार ने देखा कि जयसिंह और जैमू सिर नीचा किये हुए मुस्करा रहे थे। प्रसन्न मुद्रा में सरदार ने कहा—"तो इस में हानि ही क्या ? अभी से अभ्यास कर रहे हैं बेचारे।"

सरदार की बात सुनकर सब लोग हँस पड़े। सांगा ने भी इस हँसी में योग दिया।

इस घटना से साँगा का सभी सम्मान करने लगे। साँगा के जीवन

में पुनः बहार आ गई । उनका बन-बन मारा-मारा फिरना बन्द हो गया । कर्मचन्द साँगा को श्रीनगर ले गया । साँगा वहीं निवास करने लगा ।

३०

पृथ्वीराज चित्तौड़ में निश्चिन्तता पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा । राजा रायमल भी अब राज-काज में विशेष रुचि न लेते, क्योंकि जयमल की तो मृत्यु हो ही चुकी थी और साँगा के विषय में उन्हें कुछ ज्ञात न था । साँगा को भी वह समाप्त ही समझ बैठे थे । अब तो पृथ्वीराज ही एक मात्र उनका उत्तराधिकारी था । अतएव शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करना ही उन्होंने श्रेयस्कर समझा । पृथ्वीराज निर्द्वन्द था, निरंकुश था । यदि उसे तनिक भी किसी का ध्यान रखना पड़ता था तो वह थे उसके पिता राणा रायमल, क्योंकि वह अपने पिता को अपना विरोधी नहीं बनाना चाहता था, फिर भी उसकी स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की कमी न थी । एक दिन वह अपने प्रशंसकों के मध्य बैठा, जिन्हें वह अपना हितैषी एवं शुभचिन्तक मानता था, हास-परिहास कर रहा था । इसी बीच उसे एक पत्र मिला, उसे खोल कर वह पढ़ने लगा :—

भइया,

दीर्घकालीन मानस-मंथन के पश्चात् आपको यह पत्र लिख रही हूँ । जब से मैं ब्याह कर यहाँ आई तब से जीवन सौख्य किसे कहते हैं, मैंने नहीं जाना । अहर्निश विपत-जाल में पड़ी कराहती रहती हूँ। प्रतिदिन किसी न किसी भयंकर अत्याचार का शिकार होना पड़ता है ।

कहाँ तक सहूँ ? सहने की भी एक सीमा होती है। उनसे नाकों दम आ गई हूँ। यद्यपि उनकी बुराइयों पर प्रकाश नहीं डालना चाहिये क्योंकि वे मेरे पति हैं फिर भी अत्याचारों ने हमें ऐसा करने के लिये बाध्य कर दिया है। उनकी अफीम की मात्रा में इधर दिन-दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। उन्हें नशे की अवस्था में न जाने क्या धुन सवार होती है कि मुझे तब तक मारते, घसीटते, गालियाँ देते रहते जब तक उनका नशा उतर नहीं जाता है। अन्य रानियों के संकेत पर वह नाचते हैं। उन्हीं के कहने पर वह कान देते हैं। मेरी प्रत्येक प्रार्थना को ठुकराने में जैसे वह अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। इस समय मुझ द्रोपदी के लिये तुम्हीं कृष्ण बन जाओ, भइया !

तुम्हारी प्रतीक्षा में

आनन्दी देवी

ज्यों-ज्यों वह पत्र पढ़ता त्यों-त्यों उसकी भृकुटियाँ तनती जाती थीं। मुखमुद्रा पर क्रोध के चिन्ह स्पष्ट परिलक्षित होने लगे। पत्र समाप्त करने के उपरान्त दन्तावली पीसता हुआ बोला—"नीच को जाकर अभी मजा चखाता हूँ।" कह कर वह उठ खड़ा हुआ। क्रोधावेश में उसे देख कर किसी को भी उससे पूछने का साहस न हुआ। सभी उसका गमन देखते रह गये। उसकी इस आकस्मिक स्थिति परिवर्तन पर आश्चर्य प्रगट करते हुये सब चले गये।

पृथ्वीराज इतने क्रोधावेश में थे कि तत्क्षण कुछ सैनिक लेकर सिरोही जा पहुँचे। आनन्दीदेवी सिरोही के राजा पामूराय को ब्याही थीं। रात्रि हो चुकी थी। महल का मुख्य द्वार बन्द था। पृथ्वीराज चिन्ता में पड़ गये। उसे चिन्तितावस्था में देखकर एक सैनिक ने कहा—"अब तो रात्रि बाहर ही बितानी पड़ेगी। इस समय महल में प्रवेश करना खतरे से खाली नहीं है।

"प्रतीक्षा करना मेरे लिए असम्भव है। एक-एक क्षण मेरे

लिए विशेष महत्व है। जैसे भी होगा मैं इसी समय अन्दर पहुँचूगा।"

पृथ्वीराज की विकलता बढ़ती जा रही थी। कभी सोचते, कभी देखते, कभी दो पग आगे और कभी दो पग पीछे की ओर बढ़ जाते। अन्य लोगों ने उनका अनुसरण किया। उसी मध्य एक सरदार ने एक सीढ़ी लाकर दी। पृथ्वीराज सीढ़ी लगा कर दीवार फांद गये। रात्रि काली हो चुकी थी। सांय-सांय की ध्वनि आ रही थी। वह पैर दबा-दबा कर आगे बढ़ने लगे। बीच में कोई न मिला। एक शयन कक्ष की ओर पहुँचे। दरवाजा खट खटाया। परन्तु अन्दर से कोई उत्तर न मिला। उमने दरवाजा भड़ भड़ाया, कक्ष में आनन्दी देवी पृथ्वी पर पड़ी दुख की घड़ियाँ बिता रहीं थीं। दरवाजा खुलवाने का संकेत सुन कर वह काँप उठी। धीरे से वह उठीं और द्वार खोला तो सामने भाई खड़ा था। उसे देखते ही सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा—"भइया तुम ?"

"हाँ मैं ! कहाँ है वह ?"

आनन्दी देवी पृथ्वीराज का संकेत समझ गई और बोली—"मालूम नहीं, यहीं कहीं होंगे। इधर कभी आते हैं कभी नहीं आते।"

"ऐसा क्यों ? कभी क्यों नहीं आते ?"

"जब कष्ट देने की इच्छा होती है तभी आते हैं।" आनन्दी देवी के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। अश्रुओं ने पृथ्वीराज की क्रोधाग्नि में घी का कार्य किया। उसने दांत पीसते हुये कहा—"अभी उसकी खबर लेता हूँ।"

पृथ्वी वहाँ से चल दिया। बगल के कक्ष में झांक कर देखा तो प्रभूराव मद में मदान्ध पड़ा हुआ था। झाड़ के सीसे में मन्द-मन्द प्रकाश हो रहा था। पृथ्वीराज ने अपना खड्ग निकाला और उसकी वक्षस्थल पर रख दिया। दूसरी रानी जो उस समय वहाँ उपस्थित थी

चीख पड़ीं। उनकी चीख से पामूराय के नेत्र खुल गये। उसने जब खंग अपनी गरदन पर देखा तो अपना अन्त समझ कर घिघिया कर बोला—"क्षमा कर दीजिये, राणा जी।"

"पृथ्वीराज ने और अधिक खंग पर बल देते हुये कहा—"तेरी दुष्टता का अन्त कैसे होगा ?"

"अरे, भइया यह क्या कर रहे हो ? ये मेरी मांग के सिंदूर हैं। मेरे सोहाग हैं। क्या मुझे विधवा कर दोगे, भइया ?" चीख कर आनन्दी बाई ने कहा। वह पृथ्वीराज के क्रोध से परिचित थी। उसके जाने के उपरान्त कुछ सोचकर वह भी चल दी। कक्ष में प्रवेश करते ही पृथ्वीराज को उस कार्य में रत देखकर उसके होश फाख्ता हो गये।

पृथ्वीराज ने अपना खंग उठा लिया, परन्तु क्रोध में फुफकारते हुये बोला—"यही तो तुझे सताता था ?"

आनन्दी देवी मौन थी।

"अब मैं इन्हें कोई कष्ट नहीं दूँगा।" गिड़ गिड़ाकर उठते हुये पामूराय ने कहा।

"तू दुष्ट अपनी नीचता नहीं त्यागेगा, मैं यह जानता हूँ।"

"आप मुझ पर बिश्वास करिये।"

"तेरे कहने से भविष्य पर विश्वास कर लूँ, परन्तु इसके वर्तमान पर अविश्वास करूँ ?" बहिन की तरफ संकेत करते हुये कहा—"शरीर सूखकर कांटा हो रहा है। हड्डियों का ढांचा चिथड़ों में लिपटा है। यह दशा कर दी है तूने, दुष्टा" कहकर पृथ्वीराज ने अपना पुनः खंग उठाया।

"भइया।" आनन्दी की चीख कक्ष में गूँज गई।

खंग वहीं का वहीं रुक गया।

"मैं इस जलते हुये दीपक की शपथ खाकर कहता हूँ कि अब इन्हें कभी कष्ट नहीं दूँगा।" हाँथ से दीपक की ओर संकेत करते हुये पामू ने कहा।

"तेरी शपथ पर और फिर मैं विश्वास करूँ—असम्भव। तुझ जैसे पामर के लिये शपथ का क्या महत्व ?"

"भइया, इस बार मेरे कहने से इन्हें क्षमा कर दो।" आनन्दी कह कर पृथ्वी के पैरों पर गिर पड़ी।

"बहिन को उठा कर पृथ्वी ने खड़ा किया और उसके चेहरे की ओर देखते हुये कहा—'तू जानती है किसे क्षमा करने के लिये कह रही है ? यह तेरे प्राणों का शत्रु है। इसे तेरे प्राण लेकर ही चैन मिलेगी।"

"जानती हूँ, भइया, परन्तु क्या करूँ। भगवान ने इन्हें मेरा जीवनाधार जो बना दिया है। मैं इन्हें कुछ होते हुये नहीं देख सकती।"

"तो फिर तूने मुझे किस लिये बुलाया था ?" पृथ्वी को क्रोध आ गया।

"तो फिर क्या करती भइया ? पति के अत्याचार का शिकार बनने पर स्त्री अपने भाई को ही तो स्मरण करती है।" आनन्दी के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। पृथ्वीराज असमंजस में पड़ गया। बहिन की दुर्दशा देखकर उसका हृदय रो पड़ा। प्रतिक्रोध की ज्वाला करुणा में परिणत हो गई। वह द्रवित हो उठा। नेत्र सजल हो गये। पामू को संबोधित करते हुये कहा—"देख रहा है, जिसे तू इतना कष्ट देता है वही तेरे प्राणों की रक्षा कर रही है।"

"अब मुझे और लज्जित न करिये।" पामूराय ने नत[illegible]क हो कर कहा।

"एक निरीह अबला पर हाँथ उठाते हुये लज्जा नहीं आती तुझे ?"
तू अपने को वीर समझता होगा। चल, इसके पैरों में अपनी नाक रगड़।"

"पामूराय शान्त खड़ा था।

"चलता है या नहीं ?'

"भइया ......।"

"तू बीच में मत बोल।" पृथ्वीराज ने डाँट दिया।

पामूराय का नशा समाप्त हो चुका था। वह आगे बढ़ा, परन्तु सिर न उठता था। घुटनों के बल नीचे झुका। आनन्दी पीछे हटने ही वाली थी कि पृथ्वी ने पकड़ लिया। पामू आनन्दी के चरणों में अपनी नाक रगड़ रहा था। पृथ्वी यह दृश्य देख कर बाहर हो गया।

आनन्दी ने पति को पकड़ कर उठाया और उसके चरणों में नत हो कहा–"क्षमा कर दो मेरे देवता ? मुझसे भयंकर अपराध हुआ है। जो किसी पति को नहीं करना चाहिये वह आज आपको करना पड़ा है। ईश्वर मुझे कभी क्षमा न करेगा, परन्तु आप तो क्षमा कर सकते हैं।"

रानी को उठाकर अंक में समेटते हुये पामूराय ने कहा—"रानी, तुमने मेरी आँखें खोल दी। जो कुछ भी मैंने तुम्हारे ऊपर अत्याचार किये, उनकी प्रेरणा का कारण अन्य रानियां हैं। मैं अब हृदय से तुमसे क्षमा माँगता हूँ।"

"तो क्या भइया के समक्ष नाटक कर रहे थे ?" चेहरे पर मुस्कान लाकर आनन्दी ने पामूराय की ओर देखते हुये कहा।

"वह तो जीवन भिक्षा थी और अब अपने अपराधों की भिक्षा ....।" आनन्दी के नेत्रों में नेत्र डालकर पामूराय ने कहा।

पति के मुँह पर हाँथ रखते हुये कहा—"दासी भी कहीं अपने आराध्य देव को क्षमा करती है ?"

"हृदयेश्वरी तो करती हैं।"

"तो क्या मुझे आप अपनी हृदयेश्वरी समझते हैं ?"

"समझता नहीं हूँ, बल्कि हो।" सिर पर हाँथ रखते हुये पामूराय ने कहा।

"कहाँ छिपा रखा था इस स्वरूप को ? क्या हो जाता था उस समय आपको जब............... ?"

"बस,बस उसे स्मरण करना भी अनुचित है। अब मैं अपनी रानी द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुशरण करूँगा।"

"निर्देशित नहीं, स्वच्छ किये हुये।" कहकर आनन्दी मुस्कराती हुई अलग हो गई और कहा--"भइया का भी ध्यान है ?" वह बाहर हो गई।

———

३१

कर्मचन्द के महल का एक उपवन। बहुरंगे पुष्प खिले हैं। वे वातावरण को सौरभमय बना रहे हैं। मध्य में एक जलाशय स्थित है। वह पक्का है। उसकी सीढ़ियाँ मन्दिर में प्रवेश करती हैं। जलाशय में विकसित पुष्पों की ओर गंगाबाई टकटकी लगाकर निहार रही थी। घोड़े की टापों की ध्वनि ने उसकी विचार धारा भंग कर दी। उसने मुड़कर देखा तो साँगा दिखाई पड़ा। वह उसी ओर बढ़ गई। सांगा ने जब कर्मचन्द की पुत्री गंगाबाई को अपनी ओर आते देखा तो घोड़े से

उतर कर सम्मानार्थ खड़ा हो गया। गंगा ने पास आकर प्रश्न किया---"कहाँ चले गये थे दिन भर पता नहीं रहा ?"

"यों ही तनिक आखेट के लिये चला गया था। महल में पड़े-पड़े मन ऊब गया था।"

"तो मन बहल गया ?"

"हाँ, मा, कुछ-कुछ।"

"कुछ-कुछ क्यों ? पूरा क्यों नहीं ?

"किसी का अभाव था ?"

"किसका ?" गंगा ने औत्सुक्य प्रदर्शित करते हुये पूँछा।

"साँगा ने गंगा की ओर देखा और दृष्टि ऊपर उठाकर दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये कहा—"प्रश्न कर्ता का।"

"साँगा का प्रश्न सुनकर गंगा का मुख रक्ताभ हो उठा। नत मस्तक होकर उसने पुनः प्रश्न किया—प्रश्न कर्ता कौन है ?,'

"प्रश्न कर्ता है ?"

"तनिक स्पष्ट कहिये।"

"ना समझी भी बड़ी भोली प्रतीत हो रही है।"

"किसकी ?" सिर ऊपर उठाते हुये गंगा ने पूँछा।

"आपकी।"

"तो क्या प्रश्न कर्ता का तात्पर्य मुझ से है ?"

"यह आप अपने हृदय से पूँछिये।"

"हृदय से तो कितने दिनों से पूँछ रही हूँ, परन्तु स्पष्ट उत्तर नहीं मिल रहा है।"

"स्पष्ट उत्तर क्या है ?"

"यह भी आप अपने हृदय से पूँछिये।"

"मेरे हृदय का उत्तर सुनोगी तो नाराज हो जाओगी।"

"हृदय की बात पर कभी कोई नाराज नहीं होता।"

"तो क्या मैं अपने हृदय की बात प्रकट कर सकता हूँ ?"

गंगा ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

"मेरा हृदय चाहता है कि............।"

"हाँ, हाँ, कहिये, रुक क्यों गये ?"

"गंगा के औत्सुक्य का आभास सांगा ने पा लिया।"

"आपको सदैव ....।"

"आप रुक क्यों जाते हैं ? पूरी बात क्यों नहीं कहते ?"

"अपने सामने देखता रहूँ।" शीघ्रता से कहकर सांगा ने प्रश्न किया—"और आपका हृदय क्या चाहता ?"

"यही।"

"क्या ?"

"जो आपका दिल चाहता है।"

"तो फिर क्यों न हम जीवन पर्यन्त के लिए एक दूसरे के हो जांय ?"

"यहाँ अस्वीकार किसे है।"

"तो क्या तुम्हारे माता-पिता यह सम्बन्ध स्वीकार करेंगे ?"

"क्यों नहीं ? आज रात को ही तो पिता जी माता जी से कह रहे थे।"

"क्या कह रहे थे ?" सांगा ने अपनी उत्सुकता व्यक्त की।

"कि आप चक्रवर्ती सम्राट बनेंगे।"

सांगा का औत्सुक्य समाप्त हो गया। उसने धीरे से कहा—"यह तो भविष्य के गर्भ की बात है, न जाने क्या हो ?"

"क्या निराश हो गये ?"

"नहीं तो।"

"प्रतीत तो ऐसा ही हो रहा है।"

"भविष्य की किसी बात की मैं आशा नहीं करता।"

"बात भविष्य की नहीं भूत की है।"

"क्या ?"

"जिसके सुनने के लिये आप कुछ क्षणपूर्व अत्यन्त अधीर प्रतीत हो रहे थे।"

"वह तो समाप्त भी हो गई।"

"अभी तो ठीक से प्रारम्भ भी नहीं हुई।"

"तो फिर सुनाओ।" सांगा का औत्सुक्य पुनः जाग्रत हो उठा।

"पिता जी तो आपके आचरण से बहुत प्रसन्न हैं। आपके बौद्धिक कौशल पर तो वह रीझ भी गये हैं। शौर्य की प्रशंसा तो वह बड़ी देर तक करते रहे।,'

"मेरी प्रशंसा के अतिरिक्त और भी कुछ कहा था ?"

"क्या ऊब गये ?"

"अपनी प्रशंसा सुनने से भला कौन ऊब सकता है ?"

"तो सम्भवत: जो आप सुनना चाहते हैं वह नहीं मिल रहा है ?"

"तो फिर इसका तात्पर्य है कि जो मैं सुनना चाहता हूँ—उसे तुम जानती हो और जान-बूझ कर बताने में विलम्ब कर रही हो।"

"लेकिन आप इतने अधैर्य क्यों हो रहे हैं ?"

"तुम क्या समझ सकोगी हृदय की स्थिति को ?"

"मैं तो नहीं समझ सकती, परन्तु मेरा हृदय अवश्य समझता है।

"तो फिर बताती क्यों नहीं ?"

बताऊँगी क्यों नहीं, वही बताने के लिये तो घंटों से यहां बैठी इन्तजार कर रही हूँ।"

"तो फिर कह डालो न।"

सांगा की आतुरता देख कर गंगा ने हास्य बिखेरते हुये कहा—"पिता जी की बात सुनने के पश्चात् माता जी ने कहा·········।"

"क्या कहा माता जी ने ?"

माता जी ने कहा कि आपका क्यों न ब्याह कर दिया जाय।"

"किसके साथ ?

गंगा ने अपने हृदय पर उँगली रखकर संकेत किया और वहां से हँसती हुई भाग खड़ी हुई। साँगा ने उसका अनुसरण किया। गंगा भाग रही थी। साँगा पीछा कर रहे थे। थोड़ी दूर भागने के पश्चात् साँगा ने आगे से हाँथ फैलाकर कहा—"अब कैसे भागोगी ?"

"मैं तो निकट आना चाहती हूँ।" कहती हुई गंगा साँगा के निकट आ गई।

साँगा की भुजायें सिमटी और सिमटी, सिमटती गई। गंगा को अपनी भुजाओं में कस लिया। कुछेक क्षणों तक इसी स्थिति में रहे। कोई कुछ न बोला। बन्धन ढीला करके अलग होते हुये धीरे से साँगा ने कहा—"कोई इसी ओर आ रहा।"

"गंगा ने ध्यान से मुड़कर देखा और कहा—"अरे, यह तो पिता जी की चाल मालूम होती है।" साँगा से घबड़ाहट के स्वर में कहा—"आप इस पेड़ के पीछे हो जाइये।।"

इसके पूर्व कि साँगा पेड़ के पीछे हो सकें कर्मचन्द्र का स्वर सुनाई पड़ा— "कौन है बेटी, तेरे साथ ?"

साँगा के कदम रुक गये। उनकी सांस जहां की तहां रुक गई। शरीर सहसा कांप उठा। उत्तर न पाकर कर्मचन्द तेजी से गंगा के पास आये और साँगा को पीछे खड़ा देख कर गंगा से कहा—"तुम जाओ यहां से।"

गंगा ने सुनी-अनसुनी कर दी। वह पिता के क्रोध से परिचित थी।

"जा क्यों नहीं रही है ?"

"पिता जी इन्हें मैंने ही यहाँ रोक लिया था।"

"अच्छा, अच्छा जा यहां से। सफाई देने की कोई आवश्यकता नहीं।" कर्मचन्द्र के स्वर में कोमलता थी।

गंगाबाई नत मस्तक धीरे-धीरे वहाँ से चल दी ।

"तुम जानते हो किसी अविवाहित राजपूत लड़की से गुप्त रूप से मिलना कितना बड़ा अपराध है।"

साँगा नत मस्तक थे ।

"और इसका दण्ड भी जानते हो ?"

"साँगा ने तलवार खींचकर ज्योंही अपनी गरदन पर मारना चाहा त्योंही कर्मचन्द्र ने हाँथ पकड़ कर कहा—"यह क्या कर रहे हो ?"

"प्रायश्चित ।"

"वीर राजपूत की आकांक्षा का अन्त इस तरह नहीं होना चाहिये। वह जिस वस्तु की अभिलाषा करता है, उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है, तुम्हारी भांति अपना जीवन नहीं समाप्त करता ।"

"परन्तु विश्वासघाती का अन्त इसी तरह होना चाहिये ।"

"कौन, तुम अपने को बिश्वासघाती समझते हो ?"

"हां, मैंने विश्वासघात किया है । आपकी मर्यादा पर मैंने डाका डालने की चेष्टा की ।"

"डाकू के घर डाका ! " कह कर कर्मचन्द्र हँस पड़ा । हँसी पर नियन्त्रण पाते हुये उसने कहा--"जिसने जीवन भर डाका डालने का कार्य किया हो उसके यहां तुम क्या कोई भी डाका नहीं डाल सकता।"

"लेकिन आप धन-सम्पत्ति लूटते हैं और मैंने·········· ।"

"इज्ज़त लूटने की कोशिश की ।" साँगा की बात काटते हुये कर्मचन्द्र ने कहा —

"परन्तु में इतना मूर्ख नहीं जो किसी अगुणी को अपने महल में शरण देता और वह स्वच्छन्द रूप से विचरण कर सकता । मैंने तुम्हारे एक-एक आचरण की परीक्षा की है । मेरी कसौटी पर खरे उतरने के पश्चात् ही आज तुम गंगा से मिल पाये हो । मेरा विचार है कि तुम दोनों एक दूसरे को भली भाँति जान गये हो । यदि गंगा का विवाह तुम्हारे साथ कर दूँ तो ?"

"सरदार!"

"हाँ बेटा ! आज से तुम हमारे धर्म पुत्र हो। तुम से अच्छा गंगा के लिये वर और कौन हो सकता है ? बहुत सोचने-विचारने के पश्चात् ही मैंने यह निश्चय किया है। अगर तुम्हें कोई आपत्ति हो तो निःसंकोच कहो।"

"मेरे विषय में और कुछ ज्ञात किये बिना ही आपने मुझे इस योग्य समझ लिया ?"

"जिस मनुष्य में मानवता हो उसमें किस वस्तु की कमी हो सकती है ? मानवता किसी मानवीय निर्धारित सीमा के बन्धन में नहीं बाँधी जा सकती। मुझे और मेरी बेटी को जो कुछ चाहिये वह सब तुम में विद्यमान है। हाँ, यदि तुम्हें कोई आपत्ति हो तो अभी कह दो।"

"आप हमारे आश्रयदाता हैं, मार्ग प्रदर्शक हैं, शुभ चिन्तक हैं और फिर आप मुझे मेरी अभिलषित वस्तु प्रदान कर रहे हैं। मुझे भला क्या आपत्ति हो सकती है।"

"शाबास बेटे ! मुझे तुम से यही आशा थी। तुम्हारा कोई भी आचरण ऐसा नहीं होता है जिससे तुम्हारे उच्च वंश से सम्बन्धित होने की सुगन्ध न आती हो। आओ चलो, अब काफी अन्धेरा हो गया है।"

साँगा कर्मचन्द के साथ महल के लिये चल दिये।

३२

दोपहर का समय था। एक सुसज्जित कक्ष में भोजनोपरान्त रायमल और पृथ्वीराज विराजमान थे। मसनद के सहारे आराम से

बैठते हुये पृथ्वीराज ने कहा—"रावजी मुझे यहाँ आये आज पाँच दिन हो गये, कल प्रातः चलने की सोचता हूँ।"

"वाह राणा जी वाह ! अभी जाने की सोचने लगे। अभी कुछ दिन और तो रहिये।"

"चितौड़ का ध्यान भी रखना है।"

"राणा जी तो हैं वहाँ।"

"उनका होना न होने के बराबर है। उन्होंने सम्पूर्ण कार्य भार मेरे ही कंधों पर तो डाल दिया है। प्रत्येक व्यवस्था मुझे ही तो सम्हालनी पड़ती है।"

"तो क्या प्रत्येक कार्य आप स्वयं करते हैं ?"

"करता तो नहीं हूँ परन्तु ध्यान तो रखना ही पड़ता है।"

"क्या आपको अपने आधीनस्थ कर्मचारियों पर विश्वास नहीं ?"

"विश्वास तो है परन्तु निरंकुशता अकर्मण्यता की जननी है। मेरी अनुपस्थिति में कार्य का सुचारू रूप में चल सकना सम्भव नहीं।"

"तब तो आपका जीवन बड़ा व्यस्त प्रतीत होता है।"

"सत्ताधारी को सुख कहाँ !"

"मुझे तो इस में सुख ही सुख प्रतीत होता है। न चिन्ता है न फिकर। जीवन में आनन्द की सरिता प्रवाहित होती रहती है।"

"आपकी और हमारी स्थिति में अन्तर है, राव जी। हमारे चारों ओर शत्रु ही शत्रु हैं। हमारी तनिक भी असावधानी हमारा सत्यानाश करने लिये यथेष्ट है।"

"परन्तु आपकी यह सजगता आपको जीवन-सौख्य से वञ्चित किये रहती होगी।"

"परन्तु मुझे तो लड़ने-भिड़ने में ही जीवन का वास्तविक सुख प्रतीत होता है। गतिहीन जीवन मुझे रुचिकर नहीं। जिसमें उत्थान-पतन नहीं वह भी कोई जीवन है।"

"मुझे तो शान्ति प्रिय है।"

"शान्ति प्रिय कौन नहीं होता परन्तु जब अन्य लोग उसे शान्ति से रहने दें तब ना।"

"जब सभी शान्तिप्रिय हैं तब फिर अशान्ति क्यों ?"

"मानव प्रगति प्रिय प्राणी है। उसकी असीमित महत्वाकाँक्षायें उसे दूसरों पर अत्याचार करने के लिये विवश करती हैं। वह अज्ञानावस्था में दूसरों पर अत्याचार किया करता है और अपने को निर्दोष समझता है। वास्तव में शान्ति- शान्ति वह चिल्लाता है जो शक्ति हीन होता है। उसका परिणाम यह होता है कि शान्ति की स्थापना कभी नही हो पाती; वास्तव में शान्ति की स्थापना तभी सम्भव है जब शक्तिशाली उसके लिये प्रयास करे।"

"परन्तु शक्तिशाली तो अपनी शक्ति प्रदर्शन का सदैव इच्छुक बना रहता है। उससे यह आशा करना कि वह शान्त रहेगा असम्भव है।"

"आपका कथन ठीक प्रतीत होता है राव जी, परन्तु शक्ति का प्रदर्शन मानवता की रक्षा के लिये भी तो किया जा सकता है।"

"यदि ऐसा सम्भव हो जाय तो फिर मानव मानव नहीं रहेगा। उसकी गणना देवता की कोटि में होने लगेगी और प्रत्येक शक्तिशाली देवत्व धारण कर ले यह सम्भव नहीं।"

"यह आज सम्भव नहीं, परन्तु एक समय ऐसा आयेगा जब मनुष्य दिन रात के निरन्तर संघर्ष से ऊब कर इसी मार्ग का अनुसरण करेगा।"

"मानवता की रक्षा भी तभी सम्भव है लेकिन हम लोगों के जीवन में तो वह स्थिति आने की नहीं।"

"यहां तो निरन्तर अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित रहना पड़ता है। पता नहीं कब कौन शत्रु आक्रमण कर बैठे।"

"वास्तव में आप जैसे वीर प्रकृति के पुरुष ही चित्तौड़ पर शासन करने के उपयुक्त हैं अन्यथा अब तक मेवाड़ यवनों के अधिकार में होता।"

"मातृ-भूमि की रक्षा करना तो प्रत्येक का धर्म है। अपने प्राणों तक की आहुति देकर स्वतन्त्रता की रक्षा करने से बढ़ कर पुण्यकार्य कौन सा है?"

"वास्तव में आप जैसे पुत्र को जन्म देकर राणा जी मातृऋण से उऋण हो गये।"

"हाँ, संग्रामसिंह का फिर कुछ पता चला?"

"उसे ढुँढ़वाने की बहुत चेष्टा पिता जी ने की, परन्तु उसका कहीं पता तक न चला। हाँ उसका घोड़ा अवश्य एक पेड़ से बँधा प्राप्त हुआ था। सम्भव है किसी बन्य पशु का शिकार हो गया हो।"

"जाग्रतावस्था में तो ऐसा सम्भव नहीं। घोड़े को पेड़ से बाँध कर सो रहा होगा, तभी ऐसा हो सका होगा।"

"हो सकता है ऐसा ही हुआ हो।"

"था बेचारा बहुत सीधा। कभी उसने किसी के लिये अपशब्दों तक का प्रयोग नहीं किया।"

"ऐसे का समाप्त हो जाना मेवाड़ के लिये हित कर हुआ।"

"क्यों?"

"जो शत्रु को घायल करके जीवित छोड़ दे वह क्या कर सकता है?"

"क्या कोई ऐसी घटना हुई?"

"क्यों नहीं, जब देवी के मन्दिर में मैंने उसपर आक्रमण किया तब वह काफी देर तक लड़ता रहा। उसका शरीर भी काफी घायल हो चुका था, परन्तु अन्त में न जाने कहां से उसे उत्साह आ गया और उसके एक ही बार में मैं धाराशायी हो गया। सम्भवतः मेरे गिरते ही

वह भाग खड़ा हुआ। तबसे उसका कोई पता नहीं।"

"इसे आप उसकी कायरता कहते हैं ? यह भ्रातृस्नेह है जिसने आपको जीवित रहने दिया। अगर वह चाहता तो आपकी इहलीला समाप्त भी कर सकता था, परन्तु देश के लिये यह अच्छा ही हुआ। आप जैसे पराक्रमी वीर की इस समय संकटग्रस्त मातृभूमि को आवश्यकता है।"

अपनी प्रसंशा सुनकर पृथ्वीराज फूला न समाया। प्रसन्नता बिखेरते हुये उसने कहा—"राय जी, आज कल देखता हूँ कि आप अफीम का सेवन नहीं करते।"

"अरे भाई, उसका नाम न लो। उसी ने तो हमें अत्याचारी बना दिया था। आपने उसे छुड़ा कर मुझे जीवन प्रदान किया है। मैं कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकता कि उससे इतनी शीघ्र पिंड छूट सकूँगा, परन्तु वाह राणा जी वाह! आपकी एक झिड़की ने उसका अस्तित्व तक मेरे लिये समाप्त कर दिया।"

"इसलिये, अच्छा ही हुआ। यह भी छूट गई नहीं तो सम्भवतः पुनः इसके लिये आना पड़ता।"

"मैं पुनः आने का आपको अवसर ही नहीं दूँगा।"

"यह तो आपकी कृपा होगी।"

"इसे आप कृपा क्यों कहते हैं ? यह तो मेरा कर्तव्य होगा।

"अगर प्रत्येक प्राणी उचित रीति से अपना कर्तव्य पालन करने लगे तो संसार के समस्त दुख-समाप्त हो जाय और यह पृथ्वी स्वर्ग बन जाय।"

"आप मुझ पर पूर्ण भरोसा रखिये। अब मैं पूर्णतया बदल गया हूँ। अब आपकी बहिन को कोई कष्ट नहीं होने पायेगा।"

"कहीं यह परिवर्तित स्वरूप पुनः परिवर्तित न हो जाय।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ? ऐसा स्वप्न में भी अब सम्भव नहीं है।"

"तब तो मुझे प्रसन्नता है कि मैं अपनी बहिन को कष्ट से मुक्त कर सका। अच्छा, तो फिर अब मैं चलता हूँ।"

"कहाँ ?"

"जहाँ से आया था।"

"चित्तौड़ ?"

"हाँ।"

"परन्तु यह तो संध्या होने जा रही है-इस समय कहाँ जाइयेगा ?"

"मैं अपनी इच्छा के समक्ष समय की परवाह नहीं करता।"

"प्रात: चले जाइयेगा।"

नहीं, अब मेरा एक क्षण भी रुकना कठिन है।"

"आप किस समय क्या सोचते हैं–कोई जान नहीं सकता। खैर ! जब आप नहीं मानते हैं तो कम से कम भोजन तो कर ही लीजिये।"

"भोजन और विश्राम के लिये निर्णय को कार्य रूप में परिणत में करने में विलम्ब करना अकर्मण्य व्यक्तियों का कार्य है।"

पामूराय विचार में पड़ गया।

पृथ्वीराज ने उठते हुये कहा—"अच्छा, तो मैं चला।"

"अरे, कुछ क्षण तो रुकिये। मार्ग के लिये ही कुछ ले लीजिये।"

"किसी वस्तु के निर्माण को कुछ न कुछ समय तो लग ही जायेगा और मैं अब रुक नहीं सकता, अतएव जाता हूँ।"

पृथ्वीराज को खड़े होकर रोकते हुये पामूराय कहा–"निर्माण नहीं करवाना है। मैंने अपने लिये कुछ लड्डू बनवाये थे। उन्हें ही ले लीजिये। मार्ग में कहीं पर खाकर पानी तो पी सकेगें।"

"अच्छा ! ले आइये, परन्तु शीघ्रता करिये।"

"अभी आया। आप जाइयेगा नहीं।" कह कर पामूराय अन्दर गया और कुछ क्षणोंपरान्त एक वस्त्र में कुछ लड्डू बाँध कर ले आया।

पृथ्वीराज ने लड्डू अपने बहनोई से ले लिये और चल दिया। कुछ ही कोस मार्ग तय कर पाये होंगे कि सूर्यास्त होने लगा। सूर्य डूब

गया। संध्या निशा में परिणत होने लगी। आकाश में तारे चन्द्रमा के साथ चमकने लगे, परन्तु पृथ्वीराज बराबर अग्रसर होता रहा। अनेक बीहड़ बनों को पार करने के उपरान्त एक मन्दिर दृष्टि गोचर हुआ। पृथ्वीराज का घोड़ा रुक गया। अन्य सैनिक भी अपने-अपने अश्वों से पृथ्वी पर आ गये। मन्दिर के पास एक जलाशय था। उसी के निकट आकर सब लोग विश्राम करने लगे। पृथ्वीराज अपने सभी अन्तरंग मित्रों को साथ ले गया था। वे प्रायः उसके साथ शिष्टाचार रहित वार्तालाप करते थे। एक ने कहा—"पेट में चूहे दौड़ रहे हैं।"

"इस रात में यहाँ तो कुछ मिल सकना सम्भव नहीं है। मेरे पास कुछ लड्डू हैं। यदि चाहो तो उन्हें ही खाकर पानी पी लो।" कहकर पृथ्वीराज पोटली खोलने लगा।

सब को लड्डू देने के पश्चात् एक लड्डू स्वयं अपने लिये रख लिया। उसे खाते ही पृथ्वीराज का सिर चकराने लगा उसने अन्य साथियों से कहा—"तुम लोग लड्डू मत खाना।"

"क्यों, क्या बहनोई के दिये हुये लड्डू बहुत अच्छे लगे?" मुँह के पास लड्डू ले जाकर एक साथी ने कहा।

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। मुझे कुछ बेचैनी सी अनुभव हो रही है। शायद लड्डुओं में ज ऽ ऽ ऽ ह ऽ ऽ ऽ र............।" वाक्य पूर्ण होने के पूर्व ही जिह्वा ऐंठने लगी।

पृथ्वीराज वहीं लुढ़क गया। सभी घबड़ा गये। एक जा कर पानी लाया। मुँह खोलकर पानी डाला गया। धीरे से पृथ्वीराज ने कहा—अब मैं नहीं बचूँगा शायद! तारा को सूचना पहुँचा दो। उसका इतना कहना था कि एक व्यक्ति घोड़े पर सवार होकर चित्तौड़ की ओर चल दिया।

सभी साथी परेशान थे। कोई पानी लाता तो कोई जड़ी बूटी की खोज करता। रात तेजी से बीत रही थी। सभी प्रारम्भिक उपचार किये जा रहे थे, परन्तु सभी प्रयत्न निष्फल सिद्ध हो रहे थे शरीर पर नीलिमा

बढ़ती जा रही थी। वह बड़ी कठिनाई से साँस लेता नेत्र खोलता और पुनः बन्द कर लेता। पास ही कुम्भलगढ़ था। वहाँ से वैद्य को बुलाया गया। वैद्य जी ने दवा दी, परन्तु पृथ्वी की हालत खराब होती जा रही थी। मन्दिर के अन्दर चलने के लिये पृथ्वीराज ने संकेत किया। साथियों ने उसे उठाया, परन्तु मार्ग में ही आकाश के तारे के साथ पृथ्वी की तारा की आँखों का तारा टूट गया।

तारा का घोड़ा वायुवेग से उड़ता चला आ रहा था। कुछ ही क्षणों में वहाँ आ पहुँची और पति को पृथ्वी पर निर्जीव अवस्था में देखते ही पछाड़ खाकर गिर पड़ी। और जल से निकली हुई मछली की भाँति तड़फने लगी। वह उठी और पृथ्वीराज के ऊपर सिर रख कर विलाप करने लगी। उसके आर्तनाद से सम्पूर्ण वन निनादित हो रहा था। कभी छाती पीटती, कभी बाल नोचती कभी; सिर पृथ्वी पर पटकती। उसके इस हृदय विदारक विलाप को देखकर सभी सैनिक गण, जो युद्ध स्थल में सेकड़ों सैनिकों को मृत्यु के घाट उतारने में तनिक भी द्रवित नहीं होते थे, रो पड़े। सभी के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। तारागण भी तारा का यह दुख न देख सके। एक-एक करके विलीन होने लगे। पक्षीवृन्द की करुण ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। कुछ ही समय के उपरान्त राणा रायमल भी आ उपस्थित हुये और ज्यों-ज्यों तारा को धैर्य बँधाते त्यों त्यों तारा का रुदन तीव्र होता जा रहा था। राणा जी, जो जीवन में राणा कुम्भा द्वारा चित्तौड़ से निष्कासित होने पर रोये थे, तारा का विलाप न सह सके और नेत्रों से समवेदना बह चली।

वहीं कुछ समयोपरान्त तारा पृथ्वीराज के सिर को गोद में लेकर चिता में बैठ गई और चिता की लपटें आकाश को स्पर्श करने का असफल प्रयास करने लगीं।

३३

झाला रानी ने कक्ष में प्रवेश किया। राणा रायमल ने एक क्षणिक दृष्टि उन पर डाली और पुनः दृष्टि नीची कर ली। उनकी दृष्टि में निराशा झलक रही थी। रानी उनकी उदासीनता देखकर समवेदना प्रगट करती हुई बोली—"इस प्रकार कब तक दुख करते रहियेगा ?"

"उसका अन्त अब जीवन के साथ ही होगा, महारानी जी।"

"आप भी कैसी बातें करते हैं ? दुख-सुख तो जीवन की आँख मिचौनी का खेल है। इसके लिये अपना जीवन तो नहीं नष्ट कर डालना चाहिये। जीवन में महान संकट आये, लेकिन आप विचलित नहीं हुये। जब आप की ही यह दशा है तो सोचिये मेरे हृदय की क्या स्थिति होगी।"

"मैं अनुभव करता हूँ, परन्तु क्या करूँ; इस घटना ने मुझे परास्त कर दिया है।"

"राजपूत अपने जीवन में कभी परास्त नहीं होता, और फिर आप तो राजपूत जाति के शिरोमणि हैं।" ओजपूर्ण स्वर में रानी ने कहा।

"महारानी जी अब मुझमें संघर्ष करने की शक्ति नहीं रह गई है। मेरी दोनों भुजायें तो कट चुकी हैं। अब किस के सहारे इस दुख का सामना करूँ ?"

"परन्तु मैं देख रही हूँ कि यह निराशा तो आपके जीवन को नष्ट किये दे रही है।"

"जिनसे कुछ आशा थी वे ईश्वर के प्यारे हो गये । मेरे नेत्रों की ज्योति नष्ट हो गई । आशा की कली विकसित होने के पूर्व ही मुरझा गई ।" नैराश्य पूर्ण स्वर में राणा जी बोले ।

"भाग्य का लिखा कौन मिटा सकता है" ? जो होना था सो हो गया । इतने दिन हो गये । सब राज्य-काज अस्त-व्यस्त हो रहे है । यदि कहीं आपकी इस अवस्था का आभास शत्रुओं को मिल गया तो, पुनः नये संकट का सामना करना पड़ेगा । आप अपनी मेरी और मेवाड़ की जनता की ओर नहीं तो कम से कम मातृभूमि की ओर तो ध्यान दीजिये ।"

"मुझे अपनी वर्तमानावस्था से स्वत: असंतोष है ।"

"तो क्या इस असंतोष की वृद्धि में ही जीवन के कर्तव्यों की इति श्री समझते हैं ?

"नहीं, ऐसी बात नहीं है रानी ।"

"तो फिर आज से इस दुख को विस्मरण करने का प्रयास करिये और निराश जनता के आसुओं को पोंछिये । आप कल्पना नहीं कर सकते कि जनता आपके दर्शनों के लिये कितनी व्यग्र है । कितने लोग आये और निराश होकर चले गये ।"

"क्यों, उन्हें निराश क्यों कर दिया ?"

"मैं नहीं चाहती थी कि जनता अपने भाग्य विधाता को इस नैराश्यपूर्ण स्थिति में देखे और आपकी वर्तमान स्थिति चर्चा क विषय बने ।"

"यह तो अच्छा नहीं हुआ । मैं अपनी जनता को कभी निराश नह देखना चाहता ।"

"तो फिर इस पुत्र शोक का त्याग करिये और नये मंगल प्रभात की आशा करिये ।"

"क्या तात्पर्य ?"

"मुझे विश्वास है कि साँगा अभी जीवित है ।"

"तुम भी किस बात की सम्भावना करती हो। यदि वह जीवितावस्था में होता तो मातृभूमि का मोह उसे अवश्य इस ओर खींच लाता।"

"उसके त्यागी स्वभाव से आप परिचित नहीं। मैं उसकी माँ हूँ। उसका एक-एक गति विधि का मैंने सूक्ष्म निरीक्षण किया है। उसमें अपूर्व त्याग हैं। सम्भवतः वह भातृ द्रोह उत्पन्न होने की आशंका से ही कहीं गुप्त निवास कर रहा है।"

"क्या उसे जयमल और पृथ्वीराज की मृत्यु का समाचार न मिल सका होगा ?"

"सम्भव है वह कहीं जंगलों में मारा-मारा घूम रहा हो, वहांतक कोई सूचना न पहुँच सकी हो।"

"तो फिर ऐसी स्थिति में उसका आना भी तो असम्भव है।"

"क्यों ?"

"वह तो भाइयों को जीवित ही समझता रहेगा।"

"नहीं, मैंने अनेक व्यक्ति केवल इसी कार्य के लिये भेजे हैं......।"

"किस कार्य के लिये ?" राणा जी अपना औत्सुक्य न रोक सके और बीच ही में बोल पड़े।

"सांगा की खोज करके उसे मेवाड़ की वास्तविक स्थिति से परिचित कराने के लिये।"

"वास्तव में यह कार्य तुम्हारा प्रशंसनीय रहा।" राणा जी का हास्य बिखर गया।

"बहुत दिन बाद आपकी यह प्रसन्न मुद्रा देखने को मिली है।"

"परन्तु यह क्षणिक है।"

"ईश्वर चाहेगा तो इसे स्थिरता भी मिल जायेगी।"

"अब तो साँगा की उपस्थिति ही इसे स्थिरता प्रदान कर सकती है।"

"ईश्वर आपकी मनोकामना पूर्ण करे।"

"देखिये।"

"एक माह से अधिक होने को आ रहा है, परन्तु कोई समाचार अभी तक नहीं प्राप्त हो सका है।"

महारानी कहकर शान्त हो गई।

राणा जी भी शान्त थे।

मध्याह्न ढल चुका था। संध्या का शनैः-शनैः आगमन हो रहा था। पक्षी अपने-अपने नीडों को लौट रहे थे। गगनमण्डल के मध्य अरुणिमा उत्तरोत्तर वृद्धि पा रही थी।

महारानी जी कुछ समयोपरान्त कक्ष के बाहर हो गईं। वह अपने निवास की ओर अग्रसर हो रहीं थीं। किन्हीं विचारों में वह खोई हुई थीं कि सहसा उनके कानों में 'माँ' शब्द ने प्रवेश किया। उन्होंने दृष्टि ऊपर उठाई तो साँगा क्षिप्र गति से आता हुआ दिखाई दिया। सांगा ने आकर मां के चरण स्पर्श किये। रानी ने पुत्र को गले लगा लिया और सिर तथा पीठ पर हांथ फेरने लगी। आनन्दाश्रु प्रवाहित हो रहे थे।

"माँ............।"

"पहिले पिता जी से तो मिल ले, फिर बातें करूँगी।"

"उन्हीं के दर्शन तो करना चाहता हूँ।"

"तो आ मेरे साथ।" कह कर रानी चल दी।

साँगा ने उनका अनुसरण किया।

रानी ने कक्ष में प्रवेश करते ही कहा—"लीजिये आपकी प्रसन्नता को स्थिरता देने वाला आ गया।"

"कौन बेटा साँगा!" कह कर राणा जी तत्क्षण खड़े हुये और इसके पूर्व कि सांगा उनके चरणों को स्पर्श करे उन्होंने उसे आलिंगन बद्ध कर लिया। झालारानी पिता-पुत्र का यह अपूर्व मिलन देख ही रहीं थी कि शीघ्र ही कक्ष के बाहर हो गई।

"मेरी जीवन-संध्या में ही तू मेवाड़ लौट आया, जीवन को कालिमा ग्रस्त न होंने दिया, परन्तु बहुत प्रतीक्षा कराई बेटा। तेरी प्रतीक्षा

करते-करते ये नेत्र थक कर सदैव के लिये बन्द होने वाले थे……।"

"ऐसा न कहिये पिता जी।" राणा के मुँह को अपने हांथ से बन्द करते हुये साँगा ने कहा।

"अब ये नेत्र किस देखने के लिये खुले रहते ?"

"मुझे।"

"इसी आशा ने तो उन्हें बन्द न होने दिया अन्यथा……।"

"बस पिता जी बस, आप तो एक ही सांस में सब कुछ कह डालते हैं।"

इससे अच्छी कहने के लिये जीवन में कौन सी घड़ी होगी ?"

'जीवन की हर घड़ी नवीनता धारण किये होती है।"

"परन्तु होती वह मृत्यु के चरण के रूप में ही।"

"उनके लिये जो इसके प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं।"

"उसे सदुपयोग करने वाले अमरता भी तो प्राप्त करते हैं।"

"अभी-अभी तो आया है और लगा वाद-विवाद करने।" झालारानी ने आरती को लेकर कक्ष में प्रवेश किया और सांगा की आरती उतारने के पश्चात् साँगा का मुँह मिष्ठान्न से भर दिया। थाल बगल में रखती हुई वह भी वहीं बैठ गई और साँगा की ओर देखते हुये पूँछा—"कहां रहे इतने समय तक ?"

"यों ही इधर-उधर फिरता रहा।"

"यह तो मैं भी जानती हूँ कि जंगल में भटकता रहा होगा; फिर भी खाता-पीता क्या था ?"

"वृक्षों के फल खाता था और झरने का जल पीता था।"

"इतने दिन तक इसी पर निर्भर रहा ?"

"नहीं माँ, एक गड़रिये के यहां नौकरी कर ली थी……।"

"किस काम के लिये ?"

"भेंड़ चराने के लिये।"

"सुन रहे हैं अपने सुपुत्र की बातें; भेड़ें चराता रहा है।" रानी

ने राणा को सम्बोधित करके कहा ।

"इसमें बुरा क्या ? चोरी तो नहीं की ।"

"अच्छा, अच्छा समझ गई ।" साँगा की ओर उन्मुख होकर—"कब तक भेड़ें चराने का कार्य किया ?"

"थोड़े दिन तक ।"

"फिर ।"

"रोटी बनाने का काम करने लगा ।"

"क्यों ?"

"मुझसे भेड़ें खो जाया करती थीं । भेड़ें तो काफी खो जाती थीं, लेकिन वह पढ़ा लिखा न था, इसलिये गिनती भूल जाता था और अधिक गिन जाता था ।"

"लेकिन तूने रोटी तो कभी बनाई नहीं ?"

"इसीलिये तो वहां की नौकरी समाप्त हो गई ।"

"फिर कहाँ गया ?"

"कुछ दिन तक यों ही जंगल-जंगल घूमता रहा । एक दिन वहीं जंगल में आमेर के नरेश शिकार खेलते हुये मिल गये । मैंने शेर से उनकी रक्षा की थी, इसलिये वे मुझे अपने साथ ले गये और मैं वहीं उनका अंगरक्षक बनकर रहने लगा, परन्तु कुछ ही दिनों में वहां के अन्य कर्मचारी मुझसे ईर्षा करने लगे ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैंने शीघ्र ही महाराज की वह कृपा दृष्टि पाली थी जिसे उनके कर्मचारी आजीवन सेवा करने के उपरान्त भी न पा सके थे ।"

राणा जी बड़े मनोयोग से साँगा के अज्ञातबास की कहानी सुन रहे थे ।

साँगा ने पुनः कहना प्रारम्भ किया—"माँ, मैं किसी की ईर्षा का पात्र नहीं बनना चाहता था, इसलिये मैं वहां से भी चल दिया ।

"बन-बन भटकने के लिए, क्यों ना ?"

"हाँ मां, मेरा वहां से चला आना ही उचित था। सभी मुझे अपना शत्रु समझने लगे थे। प्रत्येक क्षण सतर्क रहना पड़ता था।"

"तो फिर कहाँ गया ?"

"गया कहाँ, जंगल-जंगल फिर घूमने लगा, परन्तु बन में स्वच्छन्दता पूर्वक अधिक दिन न रह सका। एक दिन एक डाकुओं का गिरोह मिल गया।

"फिर क्या हुआ ?" घबड़ाहट के स्वर में रानी ने पूँछा।

"फिर क्या माँ, उन्होंने मुझे अपने साथ डाका डालने के लिये कहा।"

"तो तूने डाका भी डाला ?"

"नहीं मां।"

"सुनती भर जाओ तुम्हारे सुपुत्र ने क्या-क्या कृत्य नहीं किये हैं।" राणा जी ने मुस्कराकर कहा।

"मैंने डाका नहीं डाला। केवल एक बार में डाके में सम्मिलित हुआ था। और केवल मैं सामान भर ताकता रहता था। मैंने कुछ किया नहीं था।"

"मैं जानती नहीं क्या कि मेरा बेटा कभी अनुचित कार्य कहीं कर सकता।" गौरवपूर्ण स्वर में झाला रानी ने कहा।

"अभी क्या हुआ है, आगे तो सुनो।" राणा जी ने कहा।

"हां तो बेटा फिर क्या हुआ ?"

"डाका डाल कर सब लोग दोपहर बिताने के लिये एक जंगल के बीच रुक गये। मैं एक पेड़ के नीचे आराम करने के लिये लेट गया और मुझे नींद आ गई। काफी देर बाद जब नींद खुली तो सरदार ने बताया..........।"

"क्या नाम था उस सरदार का ?"

"कर्मचन्द ।"

"हां तो क्या बताया ?"

"उसने बताया जब मैं सो रहा था तब एक सांप अपना फन फैला कर मेरे ऊपर छाया करता रहा था और उसके ऊपर एक पक्षी गाता रहा था ।"

"भगवान की बड़ी कृपा ही थी कि तू बच गया ।"

"मां इस घटना से वह इतना प्रभावित हुआ कि मुझे अपने महल श्री नगर ले गया और वहां मैं आराम से रहने लगा । वहीं मुझे आपका पत्र मिला ।"

"तो फिर यह कहो कि पत्र मिलने पर तुम आये हो ।"

"नहीं मां, मैंने तो अनेक बार आने का प्रयास किया, परन्तु उन लोगों ने आने ही न दिया । भला, मैं उनका अनुरोध कैसे टालता ?"

"भ्रातृ प्रेम से बढ़कर उनका अनुरोध हो गया ?"

"बढ़कर तो नहीं, परन्तु लगभग वैसा ही ।"

उस अनुरोध को राणा जी स्वयं कैसे बता सकते हैं । राणा जी तो उनके जामाता हो चुके हैं । पीछे से आकर मुँह लगे सरदार ने कहा ।

"यह तुम्हें कैसे मालूम ?" झालारानी ने पूँछा ।

"राणा जी के साथ आये हुये सैनिकों द्वारा हमें ज्ञात हुआ है ।"

"तो फिर तू बहू को साथ क्यों नहीं लाया ?"

सांगा शान्त था ।

"सब कुछ वहीं साथ ले आये । कुछ मेरे लिये भी तो रहने दो ।" राणा जी ने विनोदपूर्ण स्वर में कहा—"तुम्हारी बातें तो कभी समाप्त न होंगी । दिन भर चल कर आया है । थका होगा, कुछ भोजन-विश्राम आदि की व्यवस्था भी करोगी या योंही भूँखा मार डालोगी ?"

"कहीं बन में थोड़े ही भटक रहा है। अब तो वह अपने घर में है।" झाला रानी ने मुस्कराकर कहा। साँगा भी अपना हास्य न रोक सके। वातावरण सरस हो उठा परन्तु राणा जयमल की बात के औचित्य को वह न टाल सकीं और सांगा को साथ लेकर वहां से प्रस्थान कर गईं।

३४

"तारा राव जी की प्रिय दुहिता थी। हृदय का सम्पूर्ण स्नेह उसे ही प्राप्त था। पुत्र सूर्यमल के होते हुये भी पुत्र और पुत्री दोनों का ही स्थान उसी को प्राप्त था। वह प्राय: कहा करते थे कि तारा केवल उनकी पुत्री ही नहीं है वरन् वह पुत्र भी है। और तारा थी भी विश्वास के योग्य।

तारा की मृत्यु से राव जी को असीम वेदना हुई। उनको ऐसा आभास हुआ जैसे उनका सर्वस्व अपहरण कर लिया गया हो। प्रति क्षण वह उदास रहने लगे। उनकी उदासीनता ने सम्पर्क में आने वाले सम्बन्धियों के हृदय में समवेदना को जन्म दिया। तारा के गुणों की प्रशंसा के अतिरिक्त उनकी जबान पर और कोई बात ही न आती। यह आघात उनके लिये असह्य सिद्ध हुआ। दिनों-दिन स्वास्थ्य गिरने लगा। अनेक चेष्टायें करने पर भी लोग उनकी मृत्यु से रक्षा न कर सके।

राव जी वीर स्वभाव के शासक थे। जब तक वह जीवित रहे तब तक उनके विरुद्ध कुछ भी करने का किसी को साहस न हुआ। उनका पुत्र सूर्यमल भी उन्हीं की भांति प्रतापी था। एक कुशल शासक के

समस्त वांछनीय गुण उसमें विद्यमान थे, परन्तु दुर्भाग्यवश वह अधिक समय तक जीवित न रह सका और शीघ्र ही काल कवलित हो गया। उसके पश्चात् उसका पुत्र रायमल ईडर की गद्दी पर बैठा। यह बात सूर्यमल के छोटे भाई भीम को बुरी लगी। रायमल अभी बालक था। भीम उसकी अबोधता से लाभ उठाने में न चूका और उसके विरुद्ध षड़यन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। रायमल की बालोचित बुद्धि अपने चाचा के षड़यन्त्रों के कुचक्र से अपनी रक्षा न कर सकी और उसे गद्दी छोड़नी पड़ी। भीम गद्दी पर बैठ गया।

रायमल निराश्रित प्राणी की भांति इधर-उधर भटकने लगा। उसे कोई भी सहायक दृष्टिगत न हो रहा था। कई दिनों तक मारा-मारा फिरने के पश्चात् चित्तौड़ की ओर चल पड़ा। उसे पूर्ण विश्वास था कि विवेकी राणा उसकी वर्त्तमान दशा पर अवश्य ध्यान देंगे। मार्ग के कष्टों को सहता भूख-प्यास से पीड़ित वह प्रातःकाल के समय चित्तौड़ पहुँचा। सूर्य निकल चुका था। किले की चोटियां सूर्योदय में स्नान कर रहीं थीं। सिंहद्वार पर पहरेदार पहरा दे रहे थे। बालक रायमल खड़े होकर नगर सुषमा देखने लगा। दरवान ने बालक को अजनबी समझ कर पूँछा—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"रायमल।"

"क्या कहा ?"

"रायमल।"

"रायमल ?"

"हां, हां, रायमल-रायमल।"

दोनों द्वाररक्षक एक दूसरे का मुँह ताकने लगे और आश्चर्य प्रकट किया। कुछ क्षणोपरान्त उसी दरवान ने पुनः प्रश्न किया—कहां के रहने वाले हो ?"

"ईडर के।" बालक रायमल ने उत्तर दिया।

"परन्तु यहां कैसे खड़े हो ?"

"राणा जी से भेंट करना चाहता हूँ।"

"तुम और फिर राणा जी से भेंट करना चाहते हो !"

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?"

"महाराज जी तुम जैसे बालकों से नहीं मिलते।"

"ऐसा नहीं हो सकता। वह सबसे मिलते होंगे। बालक या बूढ़ा उनकी सभी प्रजा हैं। उनके लिये सभी समान हैं।"

रायमल की बात ने दीवान को अनुत्तर कर दिया। वह विचार करने लगा। अपने साथी को पराजित हुआ अनुभव करके दूसरे दीवान ने कहा। "भला यह कोई महाराज जी से मिलने का समय है। अभी तो वह विश्राम कर रहे होंगे।"

"राजे-महाराजे इतने दिन चढ़े तक विश्राम नहीं करते।"

"तुम्हें यह कैसे मालूम ?"

"मेरे दादा बताया करते थे कि शासक प्रातः शीघ्र ही शैया त्याग देते हैं और महाराज जी तो शासकों के भी शासक हैं, वह भला इतनी देर तक कैसे न उठे होंगे ?"

दीवान रायमल के बौद्धिक चातुर्य से काफी प्रभावित हुआ और तत्क्षण द्वार खोल दिया। रायमल ने अन्दर प्रवेश किया। ज्यों-ज्यों वह अग्रसर होता त्यों-त्यों उससे एक ही प्रकार के प्रश्न पूँछे जाते। वह यन्त्रवत एक ही प्रकार का उत्तर सभी को दे देता। राणा जी किसी कार्यवश अपने कक्ष से बाहर आकर दूसरी ओर जा रहे थे कि रायमल ने पुकारा—"राणा जी !" राणा जी सुनकर चौकन्ने हो गये। किले के अन्दर इस प्रकार सम्बोधन उन्होंने अपने लिये प्रथम बार सुना था। रायमल तीव्रगति से उनके पास पहुँचा और राजकीय अभिवादन किया। अब राणा जी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह उसकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। रायमल तत्क्षण समझ गया कि अवश्य ही उससे कोई अप्रत्याशित व्यवहार हो गया है

जिसने राजा जी को आश्चर्य में डाल दिया है, अतएव कौतूहल निवारण करने की दृष्टि से उसने कहा—"मेरा नाम रायमल है।"

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"रायमल।"

"कहाँ रहते हो ?"

"ईडर में।"

"जहाँ राव जी शासन करते हैं ?"

"हाँ करते थे, परन्तु अब नहीं।"

"क्यों ?"

"उनकी मृत्यु हो गई।"

"कैसे ?"

"तारा बुआ की मृत्यु से उन्हें इतना अधिक दुःख हुआ कि वह अधिक दिन जीवित न रह सके और चल बसे।"

"तो क्या तुम राव जी के नाती हो ?"

"जी हाँ।"

"मैं तुम्हारे अभिबादन करने के ढंग से ही समझ गया था कि तुम अवश्य ही किसी न किसी राजवंश के बालक हो।"

"आपका अनुमान उचित ही था"

"आओ, मेरे साथ आओ।"

राणा जी रायमल को अपने साथ कक्ष में ले गये और अपने पास ही बैठा कर पूँछा—"राव जी की मृत्यु को कितने दिन हो गये ?"

"लगभग दो वर्ष पूरे होने को आ रहे हैं।"

"और यहाँ किसी को सूचना तक नहीं।"

"सूचना न होना स्वाभाविक ही है।"

"क्यों ?"

"क्यों कि जब राजगद्दी को प्राप्त करने के लिये संघर्ष करना पड़ता है तब पड़ोसी शासकों की आवश्यकता होती है।"

"तो फिर यह कहो कि तुम्हारे पिता वहाँ के शासक हो गये हैं?"

"हुये थे, लेकिन अब नहीं।" रायमल के नेत्र अश्रुपूरित हो उठे।

"क्या हो गया उन्हें ?"

"उनकी भी मृत्यु हो गई।"

"तो फिर क्या तुम्हारा कोई बड़ा भाई गद्दी पर बैठा है ?"

"जी नहीं, मेरा कोई बड़ा भाई नहीं है। मैं ही उनकी एक मात्र सन्तान था।"

"तब तो तुम्हें शासक होना चाहिये था ?"

"मैं शासक बनाया गया था, परन्तु हमारे चाचा को यह सहन न हुआ।"

"क्या नाम है तुम्हारे चाचा का ?"

"भीमराव।"

"क्या उन्होंने अधिकार पूर्वक गद्दी का अपहरण कर लिया है ?"

"जी हाँ, गद्दी का अपहरण ही नहीं किया है, वरन मेरे प्राणों के भी भूखे हैं। मैं अपने प्राणों के रक्षार्थ आपकी शरण में आया हूँ।" कहते-कहते रायमल ने राणा के चरणों का स्पर्श कर लिया।

"घबड़ाओ नहीं बेटा। तुम यहीं मेरे पास रहो। तुम्हारा कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता। मैं सब प्रकार से तुम्हारी रक्षा करूँगा।"

"इसी आशा को लेकर तो आपके पास आया हूँ।"

"तुम्हें निराश न होना पड़ेगा, परन्तु यह स्मरण रखना कि बिना मेरी अनुमति के कोई कार्य न कर बैठना।"

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।" मस्तक झुका कर रायमल ने कहा।

"अच्छा! अब मैं थोड़े समय के लिये दरबार में जा रहा हूँ। वहाँ कुछ आवश्यक कार्यों को करना है। शेष बातें फिर होंगी। तब तक तुम यहीं पर आराम करो।" कह कर राणा जी चले गये।

३५

रायमल चित्तौड़ में ही निवास करने लगा। राणा जी उसके साथ पुत्रवत व्यवहार करते थे। राज-परिवार के सदस्य के भाँति ही उसका कर्मचारीगण भी सम्मान करते थे। समय जाते देर नहीं लगती। समय की गति कितनी तीव्र है कोई भी न जान सका है। प्रत्येक को इससे हार खानी पड़ी है। दिन महीनों में और महीने वर्षों में परिवर्तित होते व्यतीत होते चले जाते हैं। रायमल की चित्तौड़ निवास अवधि भी दीर्घ होती गई। राणा जी रायमल का विशेष ध्यान रखने लगे। उनके बढ़ते हुये स्नेह को देख कर अन्य लोगों के हृदय में रायमल के प्रति समादर की भावना भी बढ़ती गई। रायमल के गुणों की सुरभि से सम्पूर्ण चित्तौड़ सुरभित हो गया। उसके गुणों पर मोहित होकर कुछ समयोपरान्त राणाजी ने अपनी पुत्री का ब्याह रायमल के साथ कर दिया। उचित अवसर समझ कर राणा जी ने रायमल को साथ लेकर ईडर पर आक्रमण कर दिया।

रायमल का ईडर से सहसा चला आना भीम के लिये हितकर न हुआ। ईडर निवासी भाँति भाँति की कल्पनायें करने लगे, परन्तु अधिकाँश निवासियों की धारणा यही थी कि भीम ने रायमल की हत्या करवा दी है। इस जघन्य पाप की कल्पना मात्र ने ही जनता को भीम का विरोधी बना दिया। प्रजा भीम को शासक के रुप में फूटी

आँखों भी नहीं देखना चाहती थी, परन्तु वह असमर्थ थी। उसे रायमल का कुछ पता भी न था। वह सब कुछ कर सकने की क्षमता रखते हुये भी हाँथ पर हाँथ धरे बैठी थी।

राणा साँगा ने अत्यन्त दूरदर्शिता से काम लिया और ईडर की जनता के अन्तर्गत वृद्धि पाती हुई विरोधाग्नि में घी बन कर आ गये। उनके अचानक आक्रमण का भीम सामना न कर सका और फिर सेनाने भी पूर्ण सहयोग न दिया। उसे पराजित होना पड़ा। ईडर को छोड़ कर वह भाग खड़ा हुआ। राणा जी ने रायमल को गद्दी पर बिठाया और सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध करके स्वयं चित्तौड़ वापस आ गये।

प्रतिशोध की भावना से आन्दोलित मानव अविवेकी कार्य कर बैठता है। उचित-अनुचित का ज्ञान उसे नहीं रहता। प्रतिस्पर्धी को नीचा दिखाना ही एक मात्र उसका उस समय लक्ष्य होता है. साम, दाम दण्ड भेद जैसे भी होता है वह शत्रु पर विजय पाने की चेष्टा करता है। भीम की स्थिति बड़ी ही दयनीय थी। वह बेसहारा था। अत्याचार एवं अन्याय का फल वह स्वयं भोग रहा था। जिस प्रकार जल प्रवाह में फँसा व्यक्ति तिनके का सहारा ढूँढ़ता है उसी प्रकार भीम भी किसी आश्रय की खोज में था, परन्तु कोई भी सहयोगी दृष्टिगोचर न हो रहा था। जिस प्रकार पावस के घनों के मध्य दामिनी दमक उठती है प्रकार निराशा रूपी घने अंधकार में आशा की एक किरण चमक। कुछ समय पूर्व गुजरात के साथ की हुई संधि उसे याद आ गई।

सुलतान से अच्छा आश्रयदाता किसी अन्य को न समझ कर वह सुलतान के दरबार में जा उपस्थित हुआ। भीम को समक्ष देखकर सम्मान प्रकट करते हुये कहा—"बैठिये, तशरीफ रखिये।" भीम ने स्थान की उपयुक्तता-अनुपयुक्तता पर कोई ध्यान नहीं दिया और निर्देशित स्थान को ग्रहण करते हुये कहा—"धन्यवाद।"

"फरमाइये भीममल जी ! आपने यहां तक आने की कैसे तकलीफ उठाई ?" सुलतान ने मुस्कराते हुये प्रश्न किया ।

"कोई खास बात नहीं है । बहुत दिन हो गये थे आपके दर्शन न कर सका था, इसलिये सोचा कि आप से मिल लूँ ।"

"मैं आपकी हमदर्दी के लिये शुक्रिया अदा करता हूँ । आप इधर बहुत दिनों से आये नहीं ?"

"हाँ, यों ही कुछ छुट्टी नहीं मिल सकी ।"

"सल्तनत के झँझट होते ही ऐसे हैं । इन्हें जितना सुलझाने की कोशिश करो उतना ही ये और उलझते हैं और सुलझाने वाला तो इनमें ऐसा उलझ जाता है कि फिर उसे दम मारने तक की फुरसत नही मिलती ।"

"लेकिन मैं तो एकदम फुरसत लेकर आया हूँ ।"

"क्या मतलब ?" मस्तक पर बल डालते हुये सुलतान ने पूँछा ।

"राज्य हाँथ से निकल गया है ।"

"कैसे ?"

"रायमल भाग कर राणा संग्रामसिंह के पास जा पहुँचा । कुछ दिन वह वहीं रहा और फिर एक दिन राणा जी के साथ ईडर पर चढ़ आया ।"

"मगर आपने मेरे पास इसकी खबर क्यों नहीं भेजी ?"

"इसके लिये मुझे समय नहीं मिल सका ।"

"हूँ ! जंगल-जंगल मारे-मारे फिरने वाले की यह मजाल । मेरे जीते जी उसने आपको गद्दी से उतार दिया । मरते वक्त चीटी के भी पर जम आते हैं । उसके सिर मौत मड़रा रही है ।" भीम की ओर संकेत करके""अब आप उसका खात्मा ही समझिये जहरीले साँप को छेड़ा है । इसका मजा मैं उसे जरूर चखाऊँगा ।" उसका क्रोध अपनी पराकाष्ठा पर था । वह दाँत पीस रहा था । नेत्र रक्तवर्ण हो रहे थे । मुट्ठी कसी थी । साँस लम्बी ले रहा था । ऐसा लग रहा था कि

यदि इस समय राणा साँगा उसके समक्ष उपस्थित होते तो वह उन्हें कच्चा ही चबा जाता ।

भीम मूर्तिवत् नीचे बैठा उसकी ओर ताकता रहा, परन्तु उसकी क्रोध पूर्ण मुद्रा को देखकर कुछ भी बोलने का उसे सहस न हो रहा था । आशा की तरंगें हृदय में हिलोर ले रही थीं । कुछ क्षणोंपरान्त जब सुलतान के क्रोध का उफान कुछ कम हुआ तो भीम ने पूँछा—"तो फिर अब आप आगे क्या करना चाहते हैं ?"

"जैसा आप कहें ।"

"मैं भला आपको सलाह दे सकता हूँ ।"

"क्यों नहीं, सलाह यदि अच्छी हो तो प्रत्येक की स्वीकार करनी चाहिये और फिर आप जैसा आला दिमाग वाला इन्सान कोई रास्ता । बताये तो जरूर ही काबिले नजरन्दाज होगा ।"

"आपको मेरी तारीफ करना शोभा नहीं देता ।"

"क्यों, इसमें तारीफ की कौन सी बात ? यह तो असलियत है असलियत । आफत के वक्त जो इन्सान अपने होशो-हवास ठीक रख कर कदम उठाये वह काबिले तारीफ नहीं तो और क्या है ?"

"ऐसा मैंने कौन सा कदम उठाया है ?"

"मुझे अपनी खिदमत का मौका देकर क्या आपने अपनी अक्लमन्दी का इजहार नहीं किया है ?"

"आप तो मुझे आसमान पर पहुँचाये दे रहे हैं ।"

"इसे आप हकीकत समझिये ।"

"यह तो आप की कृपा दृष्टि है ।"

"इनायत की नजर तो खुदा की चाहिये मुझ जैसे नाचीज की क्या हस्ती जो किसी पर इनायत की नजर रख सके ।"

"वास्तव में आप जैसा महान बादशाह मैंने नहीं देखा ।"

"जो कुछ हूँ—सब अपही लोगों की तो ताकत पर हूँ ।"

"लेकिन इस समय तो मैं बिलकुल ही शक्तिहीन हूँ । मेरे पास एक घोड़ा और तलवार के अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं है ।"

"उसकी आप फिक्र क्यों करते हैं ? उसका सारा इन्तजाम मेरे ऊपर छोड़ दीजिये ।"

"यह सोच कर ही तो आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।"

"मगर एक बात है, भीममल जी ।"

"वह क्या ?"

"ये मेवाड़िये होते बड़े होशियार हैं । किस वक्त क्या करते हैं कोई जान नहीं सकता ।"

"इसी का फल तो भुगत रहा हूँ । मुझे तो पता ही न लगा कि कब राणा की फौजें चित्तौड़ से चलीं और कब ईडर पर आक्रमण कर दिया । मुझे तो तब पता लगा जब मेरा आधा इलाका उनके कब्जे में हो चुका था ।"

"इसीलिये तो कहता हूँ कि इनसे होशियार रहने की खास जरूरत है। मुझे कुछ ऐसा नजर आ रहा है कि वह किसी दिन जरूर ईडर के तख्त से रायमल को हटाकर खुद उस पर कब्जा करेगा ।"

"अब भी आप उसी का कब्जा समझिये ।"

"क्यों ?"

"रायमल तो अभी लड़का है । उसे शासन का ज्ञान कहाँ ? वह तो राणा के ही संकेत पर नाचेगा ।"

"वाकई में आपका कहना निहायत दुरुस्त है, नहीं तो राणा को क्या गर्ज थी कि वह आपको हटाकर रायमल को तख्त पर बैठाता ।"

"वास्तव में आप जैसी उदारता उसमें कहां ? वह तो वहीं हाँथ डालता है जहाँ कुछ प्राप्त होने की सम्भावना होती है ।"

"खैर, अब हमें अपना वक्त ज्यादा नष्ट नहीं करना चाहिये । वक्त बड़ा कीमती होता है । गुजर जाने पर इसे किसी भी कीमत पर वापस नहीं किया जा सकता ।"

"वाह ! क्या बात कही है । समय का महत्व समझना हो तो

कोई आप से समझे।"

"आप भी कैसी बातें करते हैं। हम लड़ने—झगड़ने वाले वक्त की कीमत क्या जाने?"

"इसीलिए तो आप जानते हैं; क्योंकि आपके मन में यह गर्व नहीं है कि आप जानते हैं। शक्ति के महत्व का अनुभव हम जैसों अशक्तों को होता है।"

"तब तो आप राणा की फौजी ताकत से बाखूबी वाकिफ होंगे?"

"जी हाँ, राणा की ताकत कम नहीं है। जब से वह गद्दी पर बैठा है तब से उसने काफी शक्ति बढ़ा ली है। और फिर मेवाड़ का एक-एक बच्चा हमेशा मातृ-भूमि के लिये अपने प्राणों को तुच्छ समझ कर न्योछावर करने के लिये तत्पर रहता है।"

"तब तो काफी फौजी ताकत की जरूरत पड़ेगी।"

"इसमें क्या शक है; वह तो चाहिये ही।"

भीममल की बात सुनकर सुलतान सोच-विचार में पड़ गया। उसे कोई भी उपयुक्त व्यक्ति सेनापति के योग्य दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था, क्योंकि प्रधान सेनापति किसी व्यक्तिगत कार्यवश बाहर गये हुये थे। शत्रु के अनुकूल ही व्यक्ति का चुनाव भी आवश्यक था। उचित व्यक्ति के चुनाव में अपने को असमर्थ पाकर ही बैठे हुये खाँ साहब से प्रश्न किया—"खां साहब! आप ही बताइये कि किसे इनके साथ भेजूँ?"

"हुजूर! यही मैं भी सोच रहा था, मगर कोई सख्स नजर नहीं आ रहा है। अगर हुक्म हो तो मैं तैयार हूँ।" खां साहब ने खड़े होकर सिर झुकाते हुये कहा।

"आप पर तो मुझे पूरा यकीन है। बड़े खां साहब की गैर हाजिरी में आप ही का तो भरोसा है। आपकी गैर हाजिरी ऐसे वक्त पर ठीक नहीं है।"

"तो फिर अहमदनगर के जागीरदार को भेज दीजिये।"

"कौन है अहमद नगर का जागीरदार ?"

"अरे, वही निजामुल्मुल्क है ?"

"वाह ! यह खूब याद दिलाई। निजामुल्मुल्क की ओर तो मैंने गौर ही नहीं किया।"

"एक लहमे के लिये तो आप दिमाग को आराम लेने नहीं देते। आखिरकार, कहा तक वह भी काम करे।"

"आप तो खां साहब जानते हैं कि सैकड़ों झँझटें लगी रहती हैं। अगर उन पर गौर न करूँ तो सल्तनत में बदइन्तजामी फैल जाय। (कुछ रुककर) हां तो आप इसी वक्त जल्दी से जल्दी निजामुल्मुल्क को बुलाने का इन्तजाम करिये।"

"जो हुक्म।"

"और देखो जब तक वह न आ जाय तब तक भीममल जी यहीं रहेंगे। इनके आराम का पूरा-पूरा ख्याल रखना।"

"आपका हुक्म सिर आँखों पर।"

खां साहब भीममल को लेकर दरबार से चल दिये।

३६

ईडर की जनता भीम के बिरुद्ध प्रारम्भ से ही थी। वह उसे गद्दी का अनधिकारी समझती थी और जब से रायमल राणा का दामाद बन गया था तब से तो जनता भीम की कट्टर शत्रु बन गई थी। राणा जी कुछ दिनों तक ईडर में रहे। शासन-व्यवस्था के विषय में रायमल को भली भांति ज्ञान करा दिया और भविष्य के लिये आवश्यक मार्ग प्रदर्शन करके मेवाड़ के लिये रवाना हो गये।

रायमल में पिता के सब गुण उपस्थित थे। पिता की ही भाँति उसे प्रजाप्रिय होने में देर न लगी। जनता की हार्दिक सहानुभूति उसे प्राप्त थी। यह छोटा सा राज्य एक परिवार की भांति हो गया। रायमल जनता के दुख-सुख में सम्मिलित होता और यथा सम्भव उनकी सहायता भी करता। सुख पूर्वक दिन व्यतीत होने लगे, परन्तु सब दिन कभी एक समान नहीं जाते। कभी सुख तो कभी दुख। जीवन इन्हीं दोनों के मध्य डोलता रहता है। ईडर निवासी चैन की साँस कुछ ही दिन तो पाये होंगे कि निजामुलमुल्क के साथ भीममल के आक्रमण का समाचार प्राप्त हुआ। इस समाचार ने शान्ति में क्रान्ति लादी। सर्वत्र गति परिलक्षित होने लगी। रायमल ने अपने सैनिकों को तैयार किया और शत्रु को रोकने के लिये चल पड़े। शत्रु तीव्रगति से बढ़ता चला आ रहा था। दोनों की गति ने अन्तर को समाप्त कर दिया और आमने-सामने आ डटे। सेनापतियों के संकेत पर सैनिक भिड़ गये। मार-काट होने लगी। सैनिक कट-कट कर गिरने लगे। सर्वत्र त्राहि

त्राहि मच गई । अस्त्रों-शस्त्रों की झंकार, सैनिकों का चीत्कार, अश्वों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिग्घाड़, वातावरण को भयावह बना रहे थे । सैनिक एक-दूसरे को आगे बढ़-बढ़ कर मार रहे थे । युद्ध जोरों पर था । एक-दूसरे के रक्त का प्यासा प्रत्येक सैनिक था । रणाङ्गण लाशों से पटने लगा । लड़ते हुये वीरों की संख्या कम होने लगी । रायमल दौड़-दौड़ कर शत्रु-सैनिकों को काट रहा था । उसका प्रत्येक प्रहार प्राण-घातक होता था, परन्तु सैनिकों की कम संख्या और अनुभव हीनता के कारण उसकी शक्ति कम होती गई । जब कुछ ही सैनिक शेष रह गये तो वह भाग खड़ा हुआ । रायमल को रण छोड़ कर भागता हुआ देखकर निजामुल्मुल्क की सेना में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई । सैनिकों के चलते हुये हाँथ रुक गये । क्रोधपूर्ण मुद्राओं पर हास्य नर्तन करने लगा ।

रायमल कुछ सैनिकों के साथ बोसल नगर की ओर भागा । यह स्थान अपनी प्राकृतिक रमणीयता के लिये प्रसिद्ध था । चारों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, उनसे झरते हुये झरने, कल-कल नाद करती हुई सरितायें, झूमते हुये वृक्ष तथा झाड़ियाँ प्रत्येक व्यक्ति का मन मोहने की क्षमता रखती थीं । भागते-भागते रात हो गई । आकाश में चन्द्रमा चमकने लगा था । चाँदनी में पहाड़ियाँ स्थान करने लगीं थीं । सम्पूर्ण वातावरण क्षीर सागर में निमग्न सा होता प्रतीत होने लगा था । पहाड़ी चट्टान के पास अश्व रोकते हुये रायमल ने कहा—"अब रात काफी हो चुकी है । यह स्थान भी सुरक्षित प्रतीत होता है । रात भर यहीं विश्राम किया जाय तो कैसा रहेगा ?"

"ठीक तो है रात के समय रास्ता भी साफ नहीं दिखाई देता है ।"

सभी सैनिक अपने-अपने घोड़ों से उतर पड़े । अश्व क्षुधातुर हो रहे थे । सैनिकों के उतरते ही उन्होंने पृथ्वी की दूबें नोचना प्रारम्भ

कर दिया। दिन भर युद्ध करने के परिणामस्वरूप क्लान्त सैनिक पानी की खोज में इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगे। कुछ ही अन्तर पर झरते हुये कई झरने दिखाई पड़े। अधिकांश सैनिक झरनों की ओर चल पड़े। रायमल उसी चट्टान पर अपने कुछ अन्तरग सैनिकों के साथ विश्राम के लिए बैठ गये और दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये बोले—"कितना शान्त वातावरण है यहाँ का। यहाँ न राग है, न द्वेष। सभी जीव स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करते होंगे। यहां न कोई शासक न कोई शासित।"

"महाराज! आप भूलते हैं। यहां का शासक जितना क्रूर एवं निर्दयी है उतना कदाचित ही कोई मानव शासक होगा।" बगल में बैठे हुये एक वृद्ध सैनिक ने कहा।

"मानता हूँ काका। आपकी बात सत्य है, परन्तु पेट के लिए क्रूर कौन नहीं हैं। छोटे से छोटा प्राणी अपने से निर्बल प्राणी के लिए उतना ही भयानक और निर्दयी है जितना शेर अन्य जीवों के लिए। पशुओं में भी इतनी समझ होती है कि वे आवश्यकता से अधिक प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते। मानव तो इतना लोभी हो गया है कि उसे कभी भी संतोष नहीं होता। वह सदैव दूसरों के अधिकारों को हड़पना चाहता है। वह नहीं चाहता कि उसकी भांति अन्य लोग भी जियें। दूसरों का सुख चैन उसे सह्य नहीं। दूसरों की शान्ति उसकी अशान्ति का कारण बन जाती है। दीन-क्षुधातुर प्राणी को देखकर उस के हृदय में दया का सागर नहीं उमड़ता। अपनी तृप्ति के पश्चात् भोजन से एक कौर भी दूसरों को देना नहीं चाहता। शेर भी अपने शिकार को पूरा नहीं खाता। शेष शिकार को अन्यछोटे-छोटे प्राणी खाते हैं। क्या सहयोग की भावना है! क्या समवेदना का भाव है! वह कौन दिन आयेगा जब मानव-मानव को अपनी ही भाँति समझेगा। दूसरे की आवश्यकताओं को अपनी ही आवश्यकतायें समझेगा! अब

शायद वह दिन नहीं आयेगा।"

"आयेगा महाराज—अवश्य आयेगा। मानव का सबसे बड़ा शिक्षक वह स्वयं है। अत्याचारों का अस्तित्व कितने दिन का! वे शीघ्र ही स्वत: नष्ट हो जाते हैं।"

"परन्तु नष्ट होते-होते न जाने कितने निर्दोष प्राणियों को समाप्त कर जाते हैं।"

"यही तो उसकी अज्ञानता है।"

'आज से हजारों वर्ष पूर्व भी वह अज्ञानता की आड़ लेकर अत्याचार करता था और आज भी उसी को ढाल बनाये हुये है। न मालूम उसकी यह ढाल कब नष्ट होगी।"

"संसार परिवर्तन शील है, महाराज ········।"

"अब मैं कहाँ रहा महाराज! आपलोगों की ही भाँति एक सैनिक मात्र हूँ।"

"एसा आप क्यों सोचते है? हमलोगों के लिये आज भी आप का वही रूप है जो कुछ समय पूर्व था और जीवन पर्यन्त वही रहेगा।"

"अब तो सब कुछ छिन चुका है। कुछ भी तो पास नहीं रहा। किसके बलपर महाराज कहलाऊँगा?"

"इन भुजाओं के बलपर।" अपने हाँथ फैलाते हुये सैनिक ने कहा।

"इन्हीं का तो भरोसा सदैव रहा है और ·····।"

"आगे भी रहेगा।"

"आपलोगों के इसी विश्वास ने तो जीवित रहने के लिये बाध्य किया है अन्यथा········।"

"अरे रे रे रे रे यह कैसी अशुभ बात आप कहने जा रहे हैं?"

"मृत्यु अशुभ नहीं है। यह तो मानव के जीवन पर अन्तिम विजय है। उसको आलिङ्गन करने के पश्चात् वह कभी भी विजित नहीं होता। सदैव के लिये उसकी स्वतन्त्रता सुरक्षित हो जाती है।"

वे सभी सैनिक जो पानी पीने के लिये इधर-उधर चले गये थे वे भी वापस आ-आकर उसी चट्टान पर बैठकर वार्तालाप सुनने लगे। कुछ सैनिक उस सुन्दर चट्टान पर लेट भी गये। दिन-भर के हारे-थके सैनिक झपकी भी लेने लगे थे कि सहसा एक प्रकार की विचित्र ध्वनि एक ओर से आती हुई सुनाई दी। पक्षीगण वृक्षों से कलरव करते हुये उड़ने लगे। उसी चट्टान पर एक सैनिक ने चढ़कर देखा तो दूर से सेना पीछा करती हुई दृष्टिगोचर हुई। सभी सैनिक सतर्क हो गये और पहाड़ी के पीछे छिप गये।

निजामुल्मुल्क सैनिकों के साथ उसी स्थान पर आ धमका जिस स्थान पर कुछ समय पूर्व रायमल सैनिकों सहित विश्राम कर रहे थे। एक क्षण के लिये खड़े होकर निजामुल्मुल्क ने चारो ओर दृष्टि दौड़ाई परन्तु शत्रु के वहाँ होने का कोई भी चिन्ह दृष्टिगोचर न हुआ। दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये उसने कहा—"शायद इस ओर वे लोग भाग कर नहीं आये।"

"मुमकिन है किसी दूसरी ओर को गये हों।" एक सैनिक ने कहा।

"मगर मैंने तो उन्हें इसी ओर को भागते देखा था।"

'हो सकता है कि इस ओर कुछ दूर भागने के बाद कोई दूसरा रास्ता अख्तियार कर लिया हो।"

"अगर ऐसा किया होगा तो फिर उन लोगों को तलाश करना नामुमकिन है।"

"नामुमकिन क्यों है? चारो ओर थोड़े-थोड़े सिपाही दौड़ा दीजिये।"

"मगर जबतक उनका कोई निशान न मिले तबतक बेकार में परेशान होने से क्या फायदा?"

"खैर, आप की जैसी मर्जी। मैंने तो आपसे उसी वक्त कहा था कि उनका पीछा इन पहाड़ियों में करना बेकार है। वे यहाँ की एक-एक

पहाड़ी रास्ते मे बाखूबी वाकिफ हैं ; हम लोग उन्हें नहीं पकड़ सकते ।"

"मगर मैंने तो उन्हें इस ओर भागते देखा था इसलिये पीछा किया ।"

"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है । जो कुछ करिये खूब सोच विचार कर करिये ।"

"मेरे खयाल में तो अब उनका पीछा करना बेकार है ।"

"तो फिर क्या करियेगा ?"

"आओ, इसी चट्टान पर रात भर आराम करें । सुबह होते ही वापस चलेंगे ।"

"जैसी आपकी मर्जी ।"

समस्त सैनिकों ने अपने अस्त्र-शस्त्र खोल डाले और वहीं चट्टान पर विश्राम करने लगे । घोड़ों ने भी हल्कापन अनुभव किया और हिन हिना कर अपनी तृष्णा व्यक्त की । अश्वों की हिन हिनाहट नीरव वन में गूँज उठी । सैनिक परस्पर वार्तालाप करने लगे । कुछ तो वार्तालाप करते-करते निद्रा में निमग्न भी हो गये । निजामुल्मुल्क अभी तक जाग रहे थे । यद्यपि आँखें नींद के कारण मिची जा रहीं थीं फिर भी वह उन्हें खोले रखने का असफल प्रयास कर रहे थे ।

रायमल सैनिकों सहित पहाड़ी के नीचे पीछे की ओर छिपे थे । उनके हाथों में नंगी तलवारें थीं । युद्ध के लिये तत्पर थे । उन्हें ऐसा भान हो रहा था जैसे वे शत्रुओं से घिरे हों । कुछ समय तक तो वे लोग उसी अवस्था में खड़े-खड़े शत्रुओं की बात-चीत सुनते रहे, परन्तु थोड़े समय के पश्चात् स्वर मन्द होता गया जिससे रायमल उनके सो जाने का अनुमान लगा कर पहाड़ी पर चढ़ने का प्रयास करने लगे । राजा को चढ़ता हुआ देख कर एक सैनिक ने कहा—"यह आप क्या कर रहे हैं ?"

"जो मुझे इस समय करना चाहिये ?"

"आप जान-बूझ कर अपने प्राण संकट में डाल रहे हैं।"

"सच्चे वीर को प्राणों का मोह नहीं होता।"

"परन्तु जान बूझ कर प्राणों की आहुति देना भी तो बुद्धिमानी नहीं है।"

"इस समय मुझे किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं।"

सैनिक राजा रायमल की बात सुनकर चुप हो गया, परन्तु वह नही चाहता था कि उसके रहते राजा पर किसी प्रकार का संकट आये, अतएव उसने कहा—"आप रुकिये, मैं चढ़कर देखता हूँ।"

"लेकिन आप ·············।"

"हाँ, मैं बूढ़ा हूँ तो क्या हुआ। मैं आजीवन इन्हीं पहाड़ियों पर चढ़ता रहा हूँ। मुझे चढ़ने का अच्छा अभ्यास है। आप नीचे उतर आइये।"

राजा रायमल उसका अनुरोध न टाल सके और धीरे से उतर आये। उस वृद्ध सैनिक ने तलवार दांतों के नीचे दबाई और चट्टान पकड़-पकड़ कर ऊपर चढ़ने लगा। देखते-देखते वह ऊपर चढ़ गया और झाँक कर शत्रुओं की स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया। उसी स्थिति में अबिलम्ब वापस आकर राजा को वहाँ की स्थिति का विवरण दिया—"वे सो रहे हैं।"

"सभी सो रहे हैं ?" रायमल ने पूछा।

"हाँ, किसी के भी जागने का आभास तो नहीं मिला।"

"तब तो आक्रमण करने का यह अवसर उचित नहीं है।"

"क्यों ?"

"राजपूत सोते हुये शत्रु पर आक्रमण नहीं करते।"

"उन्हें जगा कर हम इतने थोड़े से लोग उनका सामना भी तो नहीं कर सकते हैं।"

रायमल कुछ क्षण के लिये मौन हो गये और फिर मौन भंग करते हुये बोले—"चलो चलें।

सब सैनिक रायमल के साथ पहाड़ी पर चढ़ने लगे। शत्रु खर्राटे भर रहे थे; परन्तु एक सैनिक ने जो सम्भवतः झरने से घोड़े को पानी पिलाकर वापस आ रहा था, अपनी ओर पहाड़ी से उतरते हुये इन लोगों को देख लिया। उसने अपने साथियों को सचेष्ठ करने के लिये जोर की आवाज की, परन्तु सैनिक ऐसी निश्चिन्तता की निद्रा में निमग्न थे कि वे जाग न सके। निजामुल्मुल्क ने जो अभी तक अर्ध निद्रितावस्था में था, नेत्र खोलकर देखा तो सामने शत्रु दिखाई दिये। सर्व प्रथम तो उसने उनींदी अवस्था में शत्रु को अपना ही सैनिक समझा परन्तु रायमल की ललकार ने उसके भ्रम को दूर कर दिया। उसने आस-पास के अनेक सैनिकों को चिल्ला-चिल्ला कर जगाने की चेष्टा की, परन्तु इसके पूर्व कि वे उठकर खड़े हो सकें, शत्रु की तलवार ने उन्हें मौत के घाट उतार दिया। जो कुछ उठे वे सम्हलने के पूर्व ही सिधार गये। कुछ सैनिक अपनी तलवार ही न ढूँढ़ सके और मारे गये। रायमल के सैनिकों की तलवारें खपा-खप चल रहीं थीं। शत्रु कट-कट कर धराशायी हो रहे थे। कुछ सैनिक युद्ध भी कर रहे थे। निजामुल्मुल्क तो पूरे वेग से प्रत्याक्रमण में रत था, परन्तु अचानक आक्रमण ने उसके पैर उखाड़ दिये। उसके अधिकांश सैनिकों का सफाया हो चुका था। रायमल के सैनिक उस पर सामूहिक रूप से टूटने वाले थे कि वह घोड़े पर बैठकर भागा।

३७

बीसल की पहाड़ियों से निज़ामुल्मुल्क भागकर सीधा सुलतान के पास पहुँचा। सुलतान उस समय अपने दरबार में बैठा नृत्य-संगीत का रसास्वादन ले रहा था। निजामुल्मुल्क की रक्त रंजित मुद्रा देखकर उसे समझने देर न लगी कि वह हार कर आया है। उसने अनजान बनते हुये पूँछा–"कहो, निजामुल्मुल्क सब खैरियत तो है?"

"जी नहीं हुजूर! सारे सिपाही मारे गये।"

'क्या रायमल को तुम ईडर से नहीं भगा सके?'

"ईडर से तो रायमल को भगा दिया था, परन्तु हम लोग उसका पीछा करते हुये बीसल तक पहुँच गये। रात हो गई थी। एक पहाड़ी की चट्टान पर हम लोग आराम करने लगे। उसने न जाने कहाँ से सैनिकों के साथ आकर हमारे सोते हुये सैनिकों पर आक्रमण कर दिया। हमारे सैनिक जगने के पहिले ही मौत के घाट उतार दिये गये।"

निजामुल्मुल्क की बात सुनकर सुलतान आग बबूला हो गया। दाँत पीसते हुये उसने पूँछा–"तुमसे सिर्फ रायमल को ईडर से भगाने को कहा गया था। तुमने उसका पीछा क्यों किया?"

"मैंने सोचा कि उसे जिन्दा या मुर्दा पकड़ कर सामने पेश करूँ।"

"और अब उसकी जगह पर अपने को पेश कर रहे हो?"

निजामुल्मुल्क मौन था। सुलतान ने पुन: कहा—"तुम जानते हो इस हार से हमारी कितनी बेइज्जती हुई है? (कुछ रुककर) मैंने तुम्हें अक्लमन्द और बहादुर समझ कर भेजा था और तुम बुजदिली और बेवकूफी की शकल में मेरे सामने हाजिर हुये हो। मुझे तुम्हारी शकल

से नफरत हो रही है। जाओ, मुझे फिर कभी अपनी सूरत न दिखाना। मुझे तुम जैसे वेवकूफ सरदारों की जरूरत नहीं।"

सुलतान ने दरबार में बैठे हुये सभी सरदारों पर एक दृष्टि डाली सभी सरदार मौन थे। दरबार में सन्नाटा छाया हुआ था। केवल निजामुल्मुल्क धीरे-धीरे दरबार से जा रहा था। सुलतान ने जहीरुल्मुल्क को सम्बोधित करके कहा—"तुम जाओ और ईडर की अच्छी तरह देख भाल करो।"

"जो हुक्म जहांपनाह।" जहीरुल्मुल्क ने सिर नीचा करके आज्ञा शिरोधार्य की।

निजामुल्मुल्क के ईडर न पहुँचने की सूचना पाकर रायमल ने ईडर पर आक्रमण कर दिया; परन्तु इस समय तक जहीरुल्मुल्क वहाँ पहुँच चुका था। वह ईडर की व्यवस्था सम्हाल भी न पाया था कि रायमल के आक्रमण का सामना करना पड़ा। रायमल का आक्रमण खुलकर न होता था। वह किसी भी समय अचानक आक्रमण कर देता। इससे जहीरुल्मुल्क को सदैव उसके आक्रमण का भय बना रहता। धीरे-धीरे रायमल अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। भेष बदल कर कभी-कभी वह ईडर नगर में भी प्रवेश कर जाते, परन्तु पहचान कोई भी न पाता। काफी शक्ति एकत्र करने के पश्चात् रायमल ने खुलकर आक्रमण किया। भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में जहीरुल्मुल्क मारा गया।

सुलतान ने जहीरुल्मुल्क की मृत्यु का समाचार पाते ही शीघ्र नस्त्रतुल्मुल्क को भेजा। उसने बड़ी बहादुरी से ईडर की बिगड़ी हुई परिस्थिति को सम्हाल लिया, परन्तु रायमल ने उसे चैन से बैठने न दिया। सुलतान की आज्ञानुसार उसने भी वीसल नगर की व्यवस्था करने तथा रायमल को पकड़ने का प्रयास किया परन्तु सफलता न मिल सकी। रायमल के कारण उसे नाकों चने चबाने पड़े। अन्ततोगत्वा उसने सुलतान के समक्ष अपनी असमर्थता प्रकट की।

सुलतान रायमल से बड़ा परेशान हुआ। उसने इसमें अपमान समझा। साधारण राजा उसे चैन से नहीं बैठने दे रहा है। उसकी शक्ति को चुनौती दे रहा है। उसके क्रोध की सीमा न रही और हुसेन बहमनी को ईडर की व्यवस्था को सम्हालने के लिये भेजा।

३८

महाराणा संग्रामसिंह अपने कुछ सभासदों के साथ बैठे हुये किसी विषय पर मन्त्रणा कर रहे थे। राणा जी शान्तिपूर्वक सभी की बात सुनते और आवश्यक संशोधन के साथ अपना अभिमत प्रकट कर देते जो प्रायः सभी को स्वीकार्य होता। शासन करते हुये काफी समय व्यतीत हो चुका था। राणा जी के बौद्धिक कौशल से सभी लोग प्रभावित हो चुके थे। कभी-कभी ऐसा भी होता कि राणा जी का अभिप्राय न समझ सकने के कारण लोग अपना विरोध प्रगट करते; परन्तु राणा जी द्वारा उसकी व्याख्या किये जाने पर सभी आश्चर्य चकित रह जाते। राणा जी राजसिंहासन पर उपस्थित सबके अभिमतों का मूल्यांकन कर रहे थे कि सहसा एक चारण को अपनी ओर आता हुआ देखा। चारण ने राणा का अभिवादन किया। अभिवादन स्वीकार करते हुये राणा जी ने प्रश्न किया—"कहिये, रोडरमल जी, कहाँ से आगमन हो रहा है आपका ?"

"ईडर राज्य से आ रहा हूँ।" चारण ने उत्तर दिया।

"ईडर राज्य से ?" राणा जी के औत्सुक्य पूर्ण स्वर में अनियन्त्रित वृद्धि का भान हुआ।

"जी हां, ईडर से ही।"

"रायमल सानन्द तो हैं ?"

"रायमल जी के विषय में आपको कुछ भी नहीं ज्ञात ?"

"नहीं तो ! क्या कोई नई बात है ?"

"नई बात नहीं है, अशुभ बात है।"

"शीघ्र सुनाइये न।" राजसिंहासन पर राणा जी उचक पड़े।

"रायमल जी वीसल की पहाड़ियों से टकराते घूम रहे हैं।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"मैं अपने नेत्रों से देखकर आ रहा हूँ।"

"परन्तु यह कैसे हुआ; क्योंकर हुआ ?"

"आप भीम को तो न भूले होंगे ?"

"वही रायमल का चाचा ?"

"जी हाँ, वही। ईडर से भागने के उपरान्त वह सीधे गुजरात के सुलतान के यहाँ गया। उसकी सहायता से उसने ईडर पर आक्रमण किया।"

"फिर क्या हुआ ?" राणा जी का औत्सुक्य अनियन्त्रितावस्था में था।

"ईडर पर उसका अधिकार हो गया और रायमल को वीसल की पहाड़ियों की शरण लेनी पड़ी; परन्तु सुलतान भी कम चतुर नहीं है। भीम को शासन न करने दिया।"

"तो फिर क्या हुआ ?"

"सुलतान ने निजामुल्मुल्क को अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा परन्तु उसे रायमल ने मार भगाया। उसके स्थान पर जहीरुल्मुल्क को भेजा; परन्तु वह भी रायमल के छुट-पुट आक्रमणों के कारण चैन से न बैठ सका और ईडर से भागना पड़ा। इससे सुलतान के क्रोध की सीमा न रही। उसने अन्त में अपने मन्त्री हुसेन बहमनी को भेजा।"

"तो इस समय ईडर पर हुसेन बहमनी शासन कर रहा है ?"

"जी हाँ, परन्तु वह बहुत ही अहंकारी प्रतीत होता है। जो मनमें आता है अंट-सण्ट बक डालता है।"

"क्या उसने आपके साथ भी कुछ अशिष्ट व्यवहार किया ?"

"मैं अपना अपमान तो सह सकता था परन्तु ......।"

"हाँ, हाँ, कहो, रुक क्यों गये ?"

"उसने आपके लिये जिन अपमान जनक शब्दों का प्रयोग किया है उसका उच्चारण तक कोई भी शिष्ट पुरुष नहीं कर सकता।"

"क्या कहा उसने ?"

"मेरे वहाँ पहुँचने पर उसके सभासदों ने मुझसे उसकी प्रशंसा करने को कहा; परन्तु मैं ऐसा न कर सका। जिस वाणी ने आपके पिता और पितामह की विरूदावली गाई हो, वह भला कैसे एक यवन शासक की प्रशंसा करती।"

"तो फिर क्या हुआ ?"

"जो होना था वही हुआ। मैंने आपकी बिरुदावली गाई। इससे वह फुफकार उठा। तलवार लेकर मारने को उठ खड़ा हुआ, परन्तु अन्य सभासदों के समझाने-बुझाने पर वह अपने क्रोध का पात्र मुझे न बना सका, परन्तु आपके लिए उसने कहा कि द्वार पर ही ऐसा बँधा ....।"

"हाँ, हाँ, कहिये आप बेधड़क कहिये। आप तो किसी की कही हुई बात दुहरा रहे हैं।"

"भय मुझे किसी बात का नहीं। जब मैं उस कुत्ते के दरबार से सुरक्षित वापस आकर आपके दरशन कर सका तब ....।"

"तो सम्भवत: जिस शब्द का प्रयोग आप उसके लिए कर रहे हैं उसी का उसने मेरे लिये किया होगा ?"

"चारण की मुद्रा रक्ताभ हो उठी। नत मस्तक होकर शान्त वहीं खड़ा रहा। राणा जी—मानव स्वभाव के चतुर पारखी होने के कारण

उनसे चारण की मानसिक स्थिति छिपी न रह सकी और तत्क्षण उस की वर्त्तमानावस्था से उसे मुक्त करने के लिए उन्होंने कहा---"और भी कुछ कहा था ?"

"और क्या कहेगा ? यह क्या कम है जो उसने कहा है ?"

"परन्तु इसमें बुरा मानने की कौन सी बात है ? जिसका जैसा स्वभाव उसी के अनुसार तो वह आचरण करेगा। जिन शब्दों का प्रयोग उसके लिये किया जाता रहा होगा उन्हीं का प्रयोग उसने भी सीख लिया है। अशिष्टों की संगति से और क्या प्राप्त करेगा ?"

"परन्तु महाराज वह आप का अपमान करे और आप उसे हँसकर टाल दें ?"

"असमय क्रोध करने से क्या लाभ ? क्रोध के पात्र की अनुपस्थिति में क्रोध का प्रदर्शन अपनी तुच्छता प्रकट करता है।"

"परन्तु उसकी नीचता के लिये तो उसे दण्ड अवश्य मिलना चाहिये।"

"समय आने पर देखा जायगा, (कुछ रुककर) परन्तु रायमल ने मुझे सूचित नहीं किया। इसी का मुझे दुख है।"

राणा ऊपर से अप्रभावित प्रतीत हो रहे थे, परन्तु भीतर-ही भीतर क्रोधाग्नि भभक रही थी। क्रोधावेश सीमा उल्लंघन के लिये जोर मार रहा था। वह और अधिक वहां न रुक सके और उठकर चल दिये।

३६

राणा साँगा प्रतिशोध की भावना से आन्दोलित तो थे ही, परन्तु शत्रु कोई साधारण न था, क्योंकि इस युद्ध के ईडर तक ही सीमिति रहने की सम्भावना न थी। उसे गुजरात के सुलतान की शक्ति का भी सामना करना था। अतएव वह गुप्त रीति से युद्ध की तैयारी करने लगे।

बागड़ का शासक उदयसिंह था। वह तलवार का धनी था। उस की सैन्य शक्ति मेंवाड़ शासक से कम न थी। साँगा ने एक दिन चुप-चाप अपना घोड़ा बागड़ की ओर मोड़ दिया और कुछ घण्टे की यात्रा समाप्त करके बागड़ जा पहुँचे। उदयसिंह उस समय दरबार में उपस्थित थे। महाराणा के आगमन की सूचना पाकर तत्क्षण सिंहासन छोड़कर सिंहद्वार पर आये और बड़े ही सम्मान पूर्वक राणा का स्वागत किया। राणा जी उदयसिंह के व्यवहार से अत्यन्त प्रभावित हुये और उसे गले से लगा लिया। कुछ क्षणोंपरान्त उदयसिंह के साथ दरबार में आये और प्रतिष्ठा के अनुरूप आसन पर राणा जी को बैठाते हुये उदयसिंह ने पूछा—"कहिये राणा जी! आपने बागड़ में पधारने की कैसे कृपा की। मुझे बुलवा लिया होता?"

"उदयसिंह जी! समय ही ऐसा आ पड़ा कि मुझे ही आना पड़ा।"

"सब कुशल तो है?"

"हाँ, वैसे तो कुशल ही है, परन्तु भविष्य अरक्षित है ।"

"क्यों, क्या कोई नया झंझट उठ खड़ा हुआ ?"

"बहमनी ने सत्ता के मद में मदान्ध होकर राजपूत जाति को चुनौती दी है। और भी अनेक ऊल-जलूल बातें कहीं हैं ।"

"बहमनी का यह साहस कि राजपूत जाति को ललकार सके। उसे यह नहीं मालूम कि सोते सिंह को जगाना अपनी मौत बुलाना है ।"

"अगर उसे इसी बात का ज्ञान होता तो ऐसा करता ही क्यों ?"

"तो फिर उसे इसका मजा चखाना पड़ेगा ।"

"उसी के लिये तो आप के पास संधि का प्रस्ताव लेकर आया हूँ ।"

"इसके लिये संधि की क्या आवश्यकता ? यह तो राजपूत जाति की आन का प्रश्न है। सम्पूर्ण राजपूतों को एकत्र होकर शत्रु के दांत खट्टे करने चाहिये ।"

"यदि कहीं आप जैसी सद्-बुंद्धि सबके पास होती तो यवनों को क्या भारतवर्ष में प्रवेश मिल पाता। परन्तु दुख इसी बात का है कि हम अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिये परस्पर संघर्ष करते रहे और कभी भी एक होकर विदेशियों का सामना न कर सके ।"

"बीती हुई बातों को स्मरण करने से क्या लाभ ? जो होना था सो हो गया। अब तो हमें भावी संकट का सामना करने के लिये अपने को प्रस्तुत करना चाहिये।"

"नहीं, भाई उदयसिंह जी ! भूत की उपेक्षा करके हम सब कुछ खो देंगे। अतीत के अनुभव ही तो हमारे ज्ञान के आधार हैं। उन्हीं के सहारे तो हम अपने कर्तव्य पथ का निर्माण करते हैं। भावी सफलता के लिये अतीत की असफलताओं के कारणों पर विचार करना ही होगा।"

"आपका कथन सर्वथा सत्य है राणा जी ! परन्तु यह समय इन सब बातों पर विचार करने का नहीं है। उपस्थित संकट से मुक्त होने पर हम इस समस्या पर विचार-विमर्श करेंगे और आप जो कुछ राजपूत जाति की एकता के लिए प्रयास करेंगे उसमें आपको मेरा पूर्ण सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा।"

"मुझे आप से ऐसी ही आशा थी। आप जैसे लोग जब मेरे साथ होंगे तो मुझें किसी भी प्रयास में असफलता का सामना नहीं करना पड़ेगा।"

"उद्योगी पुरुष के लिये असफलता का जन्म नहीं हुआ है। यह तो अकर्मण्य और अनुद्योगी पुरुषों को ही वरण करती है। सफलता आप जैसे कर्मठ एवं कर्तव्यनिष्ठ महापुरुषों की अनुगामिनी होती है।"

"आप के विचारों से मैं पूर्ण सहमत हूँ। मैं भी कभी-कभी आप की ही भांति अनेक प्रश्नों पर विचार किया करता हूँ और निष्कर्ष भी लगभग आपके ही समान होते हैं। परन्तु फिर भी मैं नहीं समझ पाता कि पारस्परिक द्वेष-भाव क्यों बना रहता है?"

"इसका कारण है मनुष्य की स्वार्थ बुद्धि। दूसरों का उत्कर्ष उसे असह्य है। वह कभी नहीं चाहता कि अन्य लोग प्रगति पथ पर अविरल अग्रसर होते रहें और वह अवनति के गर्त में धँसता जाय।"

"परन्तु वह भी तो समान रूप से प्रगति कर सकता है। फिर क्यों नहीं करता?"

"प्रगति का पथ बड़ा कंटकाकीर्ण है। इस पथ के पथिक को अनेक विघ्न-बाधाओं एवं विरोधों के साथ संघर्ष करना पड़ता है। उन से टक्कर लेने की क्षमता न पाने के कारण वह परास्त होता है। ऐसी अवस्था में प्रगतिशील प्राणी उसकी आंखों में खटकने लगते हैं और ईर्षा के भाव जन्म लेने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वह अन्य लोगों के मार्ग में बाधा स्वरूप उपस्थित होने लगता है।"

महाराणा सांगा उदयसिंह के विचार साम्यता से अत्यन्त प्रभावित हो रहे थे। यह जान कर कि इन्हीं की भांति बिचार करने वाली एक और राजपूत शिरोमणि इसी पृथ्वी पर विराजमान है राणा जी को विशेष प्रसन्नता का अनुभव हुआ। अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुये राणा जी ने कहा—"मैं आपकी विचारधारा को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। दुःख केवल इस बात का है कि आज के पूर्व हम लोग इस प्रकार खुल कर बातें क्यो नहीं कर सके? खैर सुबह का भूला यदि शाम को भी घर वापस आ जाता है तो भूला नहीं कहलाता। अब भी कुछ विशेष हानि नहीं हुई। यदि हम सहयोग पूर्वक कार्य करेंगे तो अपने अभीष्ट को अवश्य प्राप्त करेंगे।"

मुझे तो राणा जी आपकी क्षमता पर विश्वास है कि आप जिस कार्य का अनुष्ठान करेंगे उसमें आपको अवश्य सफलता प्राप्त होगी।'

"वह क्षमता तो आप लोगों के सहयोग का ही दूसरा नाम है अन्यथा मैं अकेला...... ।"

"अब भी आप अपने को अकेला ही अनुभव करते हैं?" बीच में ही राणा जी की बात काट कर उदयसिंह ने कहा।

"जब आपने मैत्री का हाथ बढ़ाया है तो फिर अकेले कैसे?"

"मैत्री का हाथ नहीं छोटे भाई का हांथ!"

"उदयसिंह जी!"

"राणा जी!!"

दोनों लोग बाहुपाश में आबद्ध हो गये। दरबार में उपस्थित समस्त सभासद दो राजपूत शिरोमणियों के अभूतपूर्व मिलन को देख कर अतीव आनन्द का अनुभव कर रहे थे। कुछ क्षणोपरान्त दोनों वीर बाहुपाश से मुक्त हुये और एक दूसरे की ओर देखकर मुस्करा दिये। राणा जी ने उदय सिंह का हाथ अपने हाथ में लेते हुये कहा—

"आज मेरे भाइयों के अभाव की पूर्ति हो गई। मैं अपने पृथ्वी का रूप आप में देख रहा हूँ।"

"लेकिन मैं यह देख रहा हूँ कि आप मुझे अपना छोटा भाई स्वीकार करने में संकोच सा अनुभव कर रहे हैं ? "

"यह आप किस आप किस आधार पर कर रहे हैं ?"

"इस 'आप' शब्द के सम्बोधन के आधार पर।"

"ओह! मैं तो इसकी कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि पूर्वजों की वैमनस्यता मित्रता में, और मित्रता इतनी शीघ्र आत्मीयता में परिणत हो जायेगी"

"पूर्वजों की अज्ञानता के शिकार हम लोग क्यों बनें ?"

"वास्तव में उनकी अज्ञानता ने ही उन्हें आजीवन बेचैन बनाये रखा। एक भी रात निश्चिन्त होकर न सो सके। उन लोगों का भी क्या जीवन था। सदैव अपने सजातीय भाई को शत्रु की दृष्टि से देखना, उसके अमंगल की कामना करना, उसके शत्रुओं से घनिष्टता और सदैव उसके पतन के लिये प्रयास करना। उसी क्षुद्र बात के लिये अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर दिया। जीवन का वास्तविक अर्थ वे कभी न जान सके। पारस्परिक बैर-भाव त्याग कर आत्मीयता प्रदर्शित न कर सके। संकट में ग्रस्त भाई की सहायता न कर सके"

"उसी का तो यह परिणाम है जो बहमनी राजपूत जाति को ललकार सका है। वह हम लोगों की पारस्परिक फूट से भली-भाँति परिचित है।"

राणा जी भाव जगत से उतर कर उदयसिंह द्वारा वर्णित यथार्थ जगत पर आ गये और परम सन्तोष की साँस लेते हुये बोले—"अच्छा तो भाई अब मैं चलूँगा।"

"यह कैसे हो सकता है। आज आप प्रथम बार तो इस भूमि पर पधारे हैं। कुछ दिन तो आतिथ्य स्वीकार करिये।"

"तुम्हारा अनुरोध मैं कमी न टालता। छोटे भाई का भी अनुरोध

कभी टाला जा सकता है, परन्तु इस समय कर्तव्य पुकार रहा है। यह समय आतिथ्य स्वीकार करके आनन्द भोगने का नहीं है।"

"वैसे तो मैं आपको न जाने देता, जान-बूझ कर मैं कभी भी आपको कर्तव्य मार्ग से विचलित न करूँगा।"

"तो फिर आप तैयार रहियेगा। मैं इधर से ही होता हुआ चलूँगा।"

"आप निश्चिन्त रहिये। बागड़ का एक-एक राजपूत आपको साथ देने के लिये प्रस्तुत मिलेगा।"

"मैं शीघ्र ही आ रहा हूँ। आप अभी से तैयारी प्रारम्भ कर दीजिये।" कह कर राजा जी चल दिये। उदयसिंह जी द्वार तक उन्हें भेजने गये और तब तक उसी दिशा की ओर देखते रहे जब तक राणा जी का अश्व दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।

———

४०

राणा ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति एकत्र की। शक्ति संगठन में दिन-रात एक कर दिया समस्त सरदारों, सैनिकों तथा सामन्तों को आमन्त्रित किया मेवाड़ नरेश की पताका के नीचे सम्पूर्ण राजपूत जाति एकत्र होने लगी। चारों ओर से वीर इस प्रकार आ-आ कर राणा की सैनिक शक्ति उसी प्रकार बढ़ा रहे थे जैसे किसी किसी तालाब के चारों ओर से वर्षा का जल आ-आ कर एकत्र होता है। समस्या भी ऐसी ही थी। राजपूती आन का प्रश्न था। पूर्वजों के गौरव की रक्षा का सवाल था। प्रस्थान के कुछ समय पूर्व सम्पूर्ण सेना ने राणा की पताका के नीचे खड़े होकर हांथ में तलवार लेकर

मातृभूमि की रक्षा के लिये रण में पीछे न हटने की शपथ ग्रहण की। राणा के नेतृत्व में सम्पूर्ण सेना चल पड़ी। साँगा सिरोही इलाके से होते हुये बागड़ जा पहुँचे। बागड़ में उदयसिंह अपने सैनिकों सहित राणा के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। दोनों सेनाओं का सम्मिलित स्वरूप बड़ा ही भयावना हो गया था। जिस ओर से गुजरते उसी ओर के पशु-पक्षी तक मार्ग छोड़ कर किनारे हो जाते।

किसी तरह रायमल को इस बात की सूचना मिल गई कि राणा जी ईडर पर आक्रमण करने आ रहे हैं। वह भी शक्ति संचय में लगा हुआ था। अपने थोड़े से सैनिकों को लेकर प्रतीक्षा करने लगा। राणा की सेना अग्रसर हो रही थी। ज्योंही बीसल की पहाड़ियों के पास से सेना गुजरी त्योंही रायमल ने मार्ग में आकर राणा जी का स्वागत किया। राणा ने दामाद को गले से लगाते हुये पूँछा—"यहाँ इतना सब परिवर्तन हो गया और तुमने मुझे सूचित तक न किया।"

"सुलतान की सेना ने ईडर को कब घेर लिया इसका मुझे पता ही न चला। और फिर जब ईडर हाँथ से निकल ही गया तब क्या आपको मुँह दिखाता।"

"इस में मुँह दिखाने की ऐसी कौन सी बात थी? ऐसा तो जीवन में प्रायः होता है। हार-जीत, सुख-दुःख के साथ जीवन सदा आँख मिचौनी खेला करता है। बहादुर कभी इसकी चिंता नहीं करता। सवार ही तो मैदाने जंग में गिरता है। वे क्या गिरेंगे जो घुटनों के बल चलते हैं।"

"इसी आशा के सहारे तो जीवित हूँ।"

"खैर जो हुआ सो हुआ। इस बार हम लोग इस बहमनी को ऐसा मजा चखायेंगे कि फिर कभी सिर न उठा सकेगा।"

"आपने इनसे परिचय नहीं कराया?" उदयसिंह ने राणा जी से प्रश्न किया।

"ओह ! मैं तो भूल ही गया। ये हैं ईडर के वास्तविक उत्तराधिकारी।"

"तो आप ही हैं रायमल जी ?" उदयसिंह ने उल्लासपूर्ण स्वर में पूछा।

"जी हाँ, परन्तु आप को मैंने पहले कभी नहीं देखा ?" रायमल ने कहा।

"ये हैं बागड़ के शासक उदयसिंह जी। इन्हीं के सहयोग से हम सुलतान की सेना का सामना करने चल रहे हैं।"

"आपका नाम तो प्राय: सुनने में आया करता था, परन्तु दर्शन का अवसर कभी न प्राप्त हो सका। आप की वीरतापूर्ण कार्यों की कहानियाँ तो प्रत्येक राजपूत की जवान पर रहती हैं।"

"अवस्था तो कम ही है, परन्तु वाक् चातुर्य में आप किसी से पीछे नहीं प्रतीत होते।"

"आपको सम्भवत: इसमें असत्य का आभास हो रहा है।"

"खैर, अब सत्य-असत्य के निर्णय का अवसर नहीं है। अब हमें आगे बढ़ना चाहिये।" राणा जी ने कहा।

कुछ ही क्षणों में तीनों सेनायें एक रूप धारण करके आगे बढ़ने लगीं। सेना के आगमन का समाचार ईडर नगर में जोरों से फैल गया। नगर की जनता को यह जान कर अतीव प्रसन्नता हुई कि रायमल भी साथ में आ रहे हैं। हुसेन बहमनी भी इस समाचार से अपरिचित न रह सका और साथ ही साथ सेना की शक्ति का अनुमान भी पा गया। अपनी शक्ति की ओर दृष्टिपात करते ही उसने अपने को शक्तिहीन पाया और ईडर से भाग खड़ा हुआ। भागता हुआ वह मुहमदाबाद पहुँचा। सुलतान भी किसी कार्यवश मुहमदाबाद में पहले से ही टिका हुआ था। हुसेन को देखते ही उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सुलतान ने हुसेन का अभिवादन स्वीकार करते हुये कहा।

"फरमाइये, आप यहाँ कैसे ?"

"क्या फरमाऊँ हुजूर !

"सब खैरियत तो है ?"

"ईडर कब्जे से बाहर हो गया।"

"कैसे ?"

"राणा की मदद से रायमल ने हमला कर दिया है।"

"हमला करने से क्या होता है आपने उन्हें मौत के घाट क्यों नहीं उतार दिया ?"

"जहाँपनाह ! उनकी फौजी ताकत इतनी ज्यादा है कि मेरा टिकना मुमकिन नहीं।"

"अगर ऐसी बात थी तो आपने मुझे इत्तला क्यों नहीं भेजी ?"

"उनके तूफानी हमले की खबर तब हमें मिली जब वे ईडर इलाके में दाखिल हो चुके थे।"

"तो क्या तुम बिना जंग किये ही भाग खड़े हुये हो ?"

"जहाँपनाह ! वहाँ की हालत इस समय ऐसी थी कि कुछ पीछे हटना ही बेहतर था।"

"तब तो ईडर शत्रु के कब्जे में अच्छी तरह हो गया होगा ?"

"इसमें क्या शक है, मगर मैं उन्हें मार भगाऊँगा।"

"कैसे ?"

"आप थोड़ी शाही फौज भेज दीजिये मैं ईडर पर हमला करूँगा और उन्हें इस धोखेसे हमला करने का मजा चखाऊँगा।"

"अच्छा, भेज दूँगा, लेकिन कहाँ भेजूँ ?"

"यहीं मुहम्मदाबाद में भेज दीजियेगा। जब तक फौज नहीं आजायेगी तब तक मैं यहीं रुका हूँ।"

सुलतान हुसेन की बात सुनकर कुछ समय तक विचार करते रहे। तत्पश्चात् आवश्यक परामर्श देकर चले गये।

४१

राणा जी को बिना युद्ध किये ही ईडर पर अधिकार प्राप्त हो गया। किसी ने कल्पना भी न की थी कि हुसेन इतनी सरलता से ईडर पर अधिकार दे देगा। नगर निवासियों ने बड़ा उत्साह मनाया। नगर सजाया गया। स्थान-स्थान पर फाटक बनाये गये। कई रातों तक नगर को प्रकाशित किया जाता रहा। नर-नारी, बाल-वृद्ध सभी उमंग से भरे हुये थे। राणा को अपने उद्देश्य में तो सफलता प्राप्त हो गई थी, परन्तु अभी क्रोधाग्नि शान्त न हुई थी। बहमनी द्वारा किये गये अपमान का बदला लेना चाहते थे। उन्होंने रायमल को राजगद्दी पर बड़े धूम-धाम से बैठाया और आवश्यक व्यवस्था करके वहां से चल दिये।

साँगा को यह ज्ञात हो चुका था कि बहमनी ने मुहमदाबाद भाग कर शरण ली है। अतएव वह भी उसी ओर को बढ़ने लगे। बहमनी को साँगा के पीछा करने की बात का पता लग गया। वह चूहे की भाँति इधर-उधर छिपता फिर रहा था। परन्तु भय के कारण स्थिर रूप से कहीं भी नहीं रह पाता। अन्ततोगत्वा वह भागकर अहमद नगर के किले में गया। यह किला आस-पास के सभी किलों में सुदृढ़ समझा जाता था। अनेक आक्रमण कारियों ने इस किले पर आक्रमण किये परन्तु सफलता किसी को न मिली। इसके अविजित रहने का एक और रहस्य था और वह था उसका फाटक। उसका फाटक आजतक कोई न तोड़ सका था। इस किले में आने के पश्चात् बहमनी अपने को सुरक्षित समझने लगा फिर भी उसने सुलतान को सेना शीघ्रातिशीघ्र भेजने को कहला भेजा।

साँगा भी पीछा करते हुये अहमद नगर आ पहुँचे। उनके पहुँचते ही किले को बन्द कर दिया गया। साँगा ने किले को चारो ओर से घेर लिया। न कोई किले के बाहर जा सकता था और न भीतर ही। प्रातःकाल से ही किले के फाटक को तोड़ने के प्रयास प्रारम्भ हो गये। बड़े-बड़े हाँथी फाटक तोड़ने के लिये फाटक के पास लाये जाते और टक्कर मारने के लिये ज्योंही वेग से आगे बढ़ते त्योंही फाटक में जड़े नुकीले बड़े-बड़े भालों को देखकर वापस लौट पड़ते। किसी भी हाँथी का साहस नहीं पड़ रहा था प्रत्येक प्रयास निष्फल हो रहा था। शनैः शनैः निराशा बढ़ती गई। सूर्यास्त ने संध्या के आगमन की सूचना दी। कालिमा बढ़ने लगी। फाटक तोड़ने के प्रयास भी रोक दिये गये अपनी इस असफलता से साँगा बहुत चिंतित थे। साँगा और उदयसिंह एक ही तम्बू में बैठे उपस्थित समस्या पर विचार-विमर्ष कर रहे थे, परन्तु कोई भी तरकीब समझ में नहीं आ रही थी। तम्बू से बाहर निकल कर साँगा ने सभी प्रमुख सरदारों को बुलाया। एक-एक करके सभी सरदार निश्चित स्थान पर एकत्र होने लगे। शीघ्र ही सरदारों का आगमन एक सभा में परिणत हो गया। साँगा ने समस्त उपस्थित सरदारों को सम्बोधित करते हुये कहा—"प्रिय सहयोगियो! आप लोगों ने फाटक तोड़ने में जो लगन और तत्परता दिखाई वह सराहनीय है, परन्तु सफलता नहीं मिल सकी इसके लिये खेद ही नहीं वरन् अपनी पराजय है। दिन भर परिश्रम करने के उपरान्त आपलोगों को यहाँ इस समय एकत्र होने का जो कष्ट मैंने दिया है वह टाला नहीं जा सकता था। मैं कभी नहीं चाहता कि आप लोगों को किसी प्रकार का कष्ट हो परन्तु फाटक न टूट सकने के कारण यह आवश्यक हो गया कि आप लोग एक स्थान पर एकत्र होकर किसी ऐसे सम्मिलित प्रयास पर विचार करे ताकि प्रातःकाल तक फाटक अवश्य टूट जाय। मुझे आशा है कि आपलोग अपना-अपना अभिमत प्रकट करेंगे।"

यह राणा जी की विशेषता थी कि वह ऐसे संकट के समय अपने सभी सहयोगियों की सलाह से कार्य करते थे। छोटे-छोटे सरदार की

बात को भी वह ऐसे अवसर पर ध्यान से सुनते थे। एक साधारण सरदार से राणा जी सलाह लें या उसकी बात ध्यान से सुने इससे अधिक गौरव की बात सरदार के लिये क्य। हो सकती थी। राणा जी के इसी गुण पर सरदार अपने प्राणों सो न्योछावर करने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। राणा जी की बात सब लोगों ने सुनी कुछ क्षणों के लिये सन्नटा छा गया प्रत्येक एक दूसरे का मुँह देखने लगा। एक सैनिक ने मौन भंग करते हुये कहा—"फाटक का तोड़ना तो असम्भव प्रतीत हो रहा है यदि फाटक न तोड़ कर दीवाल ही तोड़ दी जाय तो कैसा ए रहेगा ?"

"किले की मोटी दीवाल का तोड़ना भी आसान कार्य नहीं है। इसमें काफी समय लगेगा। शत्रुओं के रक्षात्मक युद्ध के कारण आज हमारे अनेक साथी घायल हो चुके हैं। इस से अधिक लोगों को बलिदान होना पड़ेगा।" एक अन्य सरदार ने अपना अभिमत प्रकट किया।

"यदि फाटक के भालों को सर्व प्रथम उखाड़ा या मोड़ दिया जाय तो हाँथी सम्भवत: टक्कर मारने के लिये तैयार हो जायेंगे।"

"भालों का तोड़ना या मोड़ना तो दीवाल के तोड़ने से भी कठिन कार्य है।"

"क्यों ?"

"सर्व प्रथम तो उनका मुड़ना कठिन है और यदि मुड़ेंगे भी तो दो दिन से कम समय नहीं लगेगा।"

राणा जी चुप-चाप सैनिकों की बातें सुन रहे थे, परन्तु कुछ भी निर्णय न हो पा रहा था। राणा जी ने नैराश्य प्रकट करते हुये कहा—"काश ! आज डूँगरसिंह चौहान जीवित होते। के अवश्य कोई न कोई तरकीब निकालते। ऐसे संकट के अवसरों पर उनकी सूझ-बूझ बड़े कामकी होती थी।"

"यदि पिता जी आज नहीं हैं तो उनका पुत्र तो अभी जीवित है। मैं तोड़ूँगा इस फाटक को।" कान्ह ने कहा।

सब की दृष्टि उसकी ओर उठ गई। राणा जी को निराशा के अन्धकार में आशा की एक किरण प्रतीत हुई। उन्होंने कान्ह की ओर उन्मुख होते हुये पूँछा "कैसे ?"

"ये हाँथी भाला लगे फाटक को कभी न तोड़ सकेंगे। उन्हें परेशान करने से कोई लाभ नहीं। मैं आगे बढ़ कर भालों से सीना अड़ा दूँगा और आप पीछे से हाँथियों को उत्साहित करिये। भालों की नोक सामने न देख कर हाथी मुँहरा* करेंगे। फाटक एक ही धक्के में चूर-चर हो जायेगा। देखियेगा, कल इस राजपूत की छाती का कमाल।" कान्ह ने अपनी छाती ठोंक कर गर्वीले स्वर में कहा।"

"धन्य हो राजपूत धन्य हो। तुम्हारा ही तो जीवन सफल है। तुम जैसे राजपूतों के बलिदान पर ही तो राजपूतों का मस्तक संसार में ऊँचा है। राजपूतों की सत्ता की नीव तुम्हारे ऐसे राजपूतों के पराक्रम पर ही तो रखी हुई है। यह सत्य है कि तुम नष्ट हो जाओगे परन्तु तुम्हारा यह बलिदान क्या कभी भूलाया जा सकेगा। भावी भारत का सन्तान तुम्हारे बलिदान की कहानी बड़े ही शान से पढ़ेंगे। राजपूतों के बलिदान की कहानियों में तुम्हारा यह बलिदान अनोखा होगा।" राणाजी ने उत्साहित होकर कहा और खड़े होकर कान्ह को छाती से लिपटा लिया। पीठ पर हाँथ फेरते हुये कहा—"खूब, तुमने अपने पिता के अभाव की पूर्ति की। तुम्हारा बलिदान देख कर स्वर्ग में वह भी प्रसन्न होंगे।"

"आपके पूर्वजों का आशीर्वाद पिता जी के साथ था और आपका आशीर्वाद मेरे साथ है। आप ही तो मेरी प्रेरणा के स्त्रोत हैं।" कान्ह ने कहा।

"प्रेरणा का स्रोत में नहीं हमारी मातृभूमि की स्वतन्त्रता है। उसने हमारे पूर्व न जाने कितने बीरों को बलिदान होने के लिये प्रेरित किया है।"

---

*फाटक तोड़ने के लिये हाँथी का धक्का मारना मुहरा कहलता है।

सभा में नया उत्साह छा गया। आशा की लहर दौड़ गई। प्रत्येक कान्ह की तरकीब और बलिदान की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा कर रहा था। कान्ह ने अत्भार होते हुये कहा। "महाराज जो हमें आज्ञा दीजिये। हम कर्तव्य का पालन करें।"

"इस अन्धकार में ?"

"क्यों अन्धकार कहाँ है। चन्द्रमा की चाँदनी बिखरी हुई है और फिर शत्रु भी निश्चिन्त होकर विश्राम कर रहे होंगे। इस समय हम अपना कार्य सफलता से सम्पन्न कर सकेंगे।"

"जैसी तुम लोगों की इच्छा।" राणा कुछ क्षणों के लिये रुके और पुनः पभाव पूर्णस्वर में बोले—"वीरो! आज की रात कान्ह से बलिदान के लिये चिर स्मर्णीय रहेगी। कन्ह हम सबके लिये आदर्श हैं। आज हमारा नेतृत्व यही करेंगे। आइये! हम सब लोग इनका अनुसरण करें।"

"राणा जी की जय हो।" कान्ह का स्वर फूट पड़ा। साथ ही साथ हजारों स्वरों ने गर्जना की और कान्ह चल पड़ा।

रात्रि आधी से अधिक बीत चुकी थी। चन्द्रमा अपनी सेना तारा-गणों के साथ कान्ह का बलिदान देखने के लिये आकाश मण्डल में उपस्थित थे। तारागणों की दृष्टि कान्ह की प्रत्येक गतिविधि पर थी। कान्ह आगे बढ़ रहे थे। सैनिक भी साथ दे रहे थे। फाटक तोड़ने को ऐसी अद्भुत तरकीब कभी काम में न लाई गई थी। शनैः शनैः फाटक के पास पहुँचे। कान्ह ने एक बार फाटक को देखा और उसके चेहरे पर मुस्कराहट खेल गई। कान्ह ने पीछे मुड़कर देखा और साथियों को दृष्टि से संकेत किया। साथियों ने उसके संकेत को समझ लिया और मुहरा करने वाले हांथी को तैयार किया। कान्ह ने अपनी छाती नुकीले भालों पर टिका दी। कान्ह का मुखमण्डल गरिमा से प्रदीप्त हो रहा था। हाँथी दूर खड़े थे। महावतों ने उन्हें ललकारा। हाँथी बढ़े और बढ़े। फाटक के पास कान्ह की पीठ पर अपने मस्तक से धक्का मारा। छाती

भालों से चलनी हो गई। फाटक हिल गया। दूसरी टक्कर लगी। फाटक से चर-चर की ध्वनि हुई। तीसरी टक्कर द्वार न सह सका और द्वार टूट गया। आँधी की तरह सब सैनिक घुस पड़े। यवन सैनिक अचेतावस्था में थे। राजपूतों का शोर सुनकर कुछ जगे परन्तु उठने के पूर्व ही वे इस संसार से विदा हो गये। जो उठ सके उनके हांथ में नंगी तलवारें थी। मार-काट हो रही थी। रक्तरञ्जित वीर सैनिक एक दूसरे के प्राण लेने पर तुले हुये थे परन्तु लेने वालों को देना भी पड़ रहा था। यवन कट-कट कर गिर रहे थे। कोई भाग नहीं पा रहा था। प्राण ही उनके शरीर को छोड़ कर भाग रहे थे। कोई न भाग सका। सभी मारे गये। किला रक्त से लाल हो उठा। चारों ओर तड़फती हुयी लाशें दिखाई दे रही थीं घायलों की चीत्कार राना के हृदय को प्रकम्पित किये दे रही थी। तारागण इस वीमत्स दृश्य को न देख सके और एक-एक करके सब भागने लगे। पक्षीगण इस राजपूती विजय का संदेश पहुँचाने के लिये अपने-अपने निविड़ों से प्रस्थान करने लगे। 'महाकाली की जय' 'रण चण्डि के जय' 'चामुण्डे जयभवानी' की जय जय कार से वातावरण प्रध्वनित हो उठा। विजय पताका फहराने लगी राजपूतों के हृदय विजयों से नर्तन करने लगे। अहमदनगर को खूब लूटने के पश्चात् राजपूत सरदार अपनी जन्म भूमि की ओर लौट पड़े।

४२

इब्राहीम लोदी अपने पिता सिकन्दर लोदी के मृत्योपरान्त गद्दी पर बैठा। सर्व प्रथम उसकी दृष्टि मेवाड़ के शासक की ओर ही गई। साँगा की महत्वाकाक्षायें असीमित हो रही थी। राज्य विस्तार की लालसा ने ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, राईसन, कालपी, आबू, चन्देरी, गागरौन, रामपुर आदि के राजाओं, तथा सामन्तों को मेवाड़ शासक की छात्र छाया में ला खड़ा किया था। लोदी शासन के कुछ इलाकों पर भी राजपूती अधिकार हो चुका था। राजपूतों की इस बढ़ती हुई शक्ति को देखकर इब्राहीम लोदी चिंतित हुआ। उसने अपने प्रमुख सरदारों को बुलाया और उन्हें सम्बोधित करके कहा—"राजपूतों की गुस्ताखो बेहद बढ़ गयी है।"

"क्या हो गया जहाँपनाह ?" माखन खाँ ने पूँछा।

"हो क्या गया है ? यह पूँछो कि क्या नहीं हो गया है ? मैं पूँछता हूँ कि हमारे इलाके की रियाया को परेशान करने का राजपूतों को क्या हक है ?"

"कोई हक नहीं जहाँपनाह।"

"लेकिन वे लोग तो रियाया के साथ वेजा पेश आ रहे हैं।"

"यह तो उनकी सरासर ज्यादती है।"

"यही ज्यादती तो मुझे वरदास्त नहीं हो रही है।"

"होना भी नहीं चाहिये। आप जो हुक्म दें। हम लोग तैयार है।"

"मैं उन्हें उनकी गुस्ताखी का मजा चखाना चाहता हूँ।"

"तो फिर हुक्म दीजिये।"

"इस के लिये भी हुक्म की जरूरत है ? इन लोगों का तो पहले ही सफाया हो जाना चाहिये था।"

"अभी कौन सी देरी हो गई है। कहिये तो हम लोग तैयारी शुरू कर दें।"

"हां, तैयारी शुरू कर दो और देखो ऐसा खदेड़-खदेड़ कर मारना कि फिर कभी जिन्दगी में इस तरफ निगाह न उठा सकें।"

"आप फिक्र न करिये। हम लोगों के लिये तो आप का इशारा ही काफी है। देखिये कैसा मजा चखाता हूँ।"

"इसका तो मुझे पूरा यकीन है। मैं आप लोगों की बफादारी से बाखूबी वाकिफ हूँ। अब्बाजान के जमाने में आपलोगों ने जिस बफादारी का सबूत दिया है यदि आप उसी बफादारी को कायम रखेंगे तो मैं आपलोगों को उस जमाने से भी ज्यादा खुश कर दूँगा।"

"अपनी बफादारी से आप को खुश करके ही तो हम लोग कुछ हासिल कर सकते हैं वरना दगाबाज तो सल्तनत में हजारों की तादात में मिल जायेंगे।"

"हजारों दगाबाजों से एक बफादार ज्यादा ताकतवर होता है। वह अपनी बात को जोरदार लब्जों में कह सकता है। सीनातान कर चल सकता है। और उसके हजारों मददगार मौके पर पैदा हो जाते हैं और दगाबाज की तरक्की तो चन्द लहमों की होती है। उसकी दगाबाजी खुलने पर वह कहीं का नहीं रहता। उसे अपने ऊपर भी यकीन नहीं रह जाता। हमेशा अपने से ही खौफ खाया करता है। चोरों की तरह सबकी निगाहों से बचने की कोशिश करता है।"

"वाकई आप जो फरमाते हैं जहांपनाह। आप बोलते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि जैसे आपके वालिद की आवाज हो, मगर आप तो उनसे भी बढ़-चढ़ कर हैं।"

"वाकई हुसेन खां आपही इतने लोगों में एक समझदार मालूम देते हैं। अब्बाजान ने खूब-सोच-समझ कर ही आपको यह ओहदा दिया था। आपकी काबलियत भी आलादर्जे की है।"

वहाँ बैठे हुये सभी सरदार इस बात से भली भाँति परिचित थे कि किस प्रकार माखन खाँ ने सिकन्दर लोदी को खुश किया था। बादशाह की धारणा अपने ही कानों सुनकर सभी मन ही मन क्रुद्ध हो रहे थे। हुसेन खां नरम मिजाज का सरदार था। उससे न रहा गया। वह तत्क्षण बोल उठा—"वाकई जहांपनाह, आपके दरबार में माखन खां को छोड़कर सभी बेवकूफ भरे हैं।"

"देखो हुसेन खाँ! तुम मेरे दरबार की तौहीनी कर रहे हो।" बादशाह ने कहा।"

"हुजूर! गुस्ताखी माफ हो। मैंने तो अपने साथियों को ही बेवकूफ कहा है।"

हुसेन खां द्वारा कहे गये वाक्य के अन्दर छिपे हुये व्यंग्य को माखन खां समझ गया। वह नहीं चाहता था कि उसके विरोधियों की संख्या में बृद्धि हो, अतएव उसने मुस्कराते हुये कहा—"हुजूर! आप अभी हुसेन खां की दिमागी ताकत से वाकिफ नहीं हैं। इसीलिये आप ऐसा फरमा रहे हैं, वरना हुसेन खाँ किसी से कम नहीं हैं।"

माखन खाँ की बात से हुसेन खाँ तिलमिला उठा। वह आवेश में आकर कुछ कहना चाहता था परन्तु अवसर की अनुपयुक्तता को ध्यान में रखकर वहाँ से हटना ही उचित समझा और उठकर चल दिया। हुसेन खाँ के जाते ही एक-एक करके अन्य सभी सरदार चले गये। सभी के जाने उपरान्त माखन खाँ ने कहा—"आप किसी के सामने हमारी तारीफ न किया करें।"

"क्यों ?"

"लोगों को जलन होती है।" वे यह नहीं बरदास्त कर सकते कि उनके सामने किसी की तारीफ हो।"

"वाकई जो काबिलेतारीफ है उसकी तारीफ क्यों न की जाय ?"

"हुजूर! आप हुकूमत करने बैठे हैं। हुकूमत हाँथ में लेकर बहुत सम्हल कर चलने की जरूरत है।"

"मगर मुझे तो कोई बुराई इसमें नजर नहीं आती।"

"बहुत लोगों के बीच एक की तारीफ करना दूसरों की तौहीनी करना होता है। आपने अभी मेरी तारीफ करके उन लोगों को नाराज कर दिया है।"

"नाराज हो गये तो हो जाने दो। मैं गलत बात कभी बरदास्त नहीं कर सकता।"

"हुजूर! हुसेन खाँ को नाराज करना खतरे से खाली नहीं है। वह बड़ा बहादुर सिपाही है। उसकी गैरहाजिरी से सल्तनत को बहुत बड़ा नुकसान उठाना पड़ेगा।"

"तो क्या मैं ऐसे आदमियों को भी बरदास्त करूँ जिन्हें मेरे सामने बोलने तक की तमीज नहीं है?"

"हो सकता है कि उसमें बात करने की तमीज न हो मगर दुश्मन से टक्कर लेने में उसका मुकाबला कोई नहीं कर सकता है।"

"क्या आप भी नहीं कर सकते?"

"यदि एक-आध आदमी कर भी सका तो क्या होता है। हुकूमत कहीं एक-आध आदमियों पर चलती है?"

"अगर वह इतनी अहमियत रखता है तब तो वह किसी भी वक्त बगावत कर सकता है।"

"मुमकिन है, मगर वह ऐसा नहीं कर सकता"

"क्यों?"

"बगावत वह करता है जिस के पास दौलत होती है। फौजी ताकत होती है और दिमाग होता है। वह सल्तनत के लिये तो अहमियत रखता है, मगर सल्तनत से बगावत करके वह दो कौड़ी का भी नहीं रह जायेगा।"

"तब फिर उससे खौफ खाने की क्या जरूरत?"

"मगर उसे नाराज करने से ही क्या फायदा?"

बादशाह शान्त हो गये। उन्हें कुछ भी उत्तर न देते बना। माखन खां ने बादशाह को अनुत्तर पाकर कहा—"आप इन सब झगड़ों में क्यों पड़ते हैं ? आप तख्त पर रौनक अफरोज इसलिए नहीं हुए हैं कि ऐसे मामलों में पड़कर अपनी जिन्दगी बरबाद करें। आप की जिन्दगी तो ऐस करने के लिए है। जब तक आपकी खिदमत के लिए यह खिदमतगार हाजिर है आप को किसी बात की फिकर नही होनी चाहिए।" कहकर माखन खां ने सिर झुका दिया।

"वाकई मुझे इन सब झगड़ों से दूर रहना चाहिये। अब अगर इस तरह की कोई बात हो तो आप खुद ही सम्हाल लिया करिये। (कुछ-रुक कर) अच्छा तो अब आप जानिये।" कहकर बादशाह उठे और चल दिये।

४३

अहमदनगर के किले से भागकर बहमनी सीधा गुजरात सुलतान के पास पहुँचा। सुलतान मदिरा में मस्त नृत्य-संगीत का रसास्वादन कर रहे थे। दरबारी नर्तकी की कला एवं सौंदर्य को देखकर झूम रहे थे। उन्हें उस वक्त नर्तकी के अतिरिक्त संसार में कुछ भी प्रतीत नहीं हो रहा था। वातावरण सरस था। वाह–वाह की ध्वनि रह-रह कर गूँज उठती थी। इसी समय बहमनी ने दरबार में प्रवेश किया। बहमनी का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। उसके निर्णय के विरुद्ध सुलतान भी कोई कार्य न करता था। और दरबारी तो उसके सामने बोलने तक का साहस न करते थे। सर्व प्रथम उस पर दृष्टि नर्तकी की

पड़ी। वह रुक गई। सहसा नृत्य बन्द हो जाने पर सब चौंक पड़े। सुलतान ने पूँछा - "नाच क्यों बन्द हो गया ?"

"मेरे आने के कारण।" आगे बढ़कर बहमनी ने कहा

"ओह ! बहमनी तुम !', बादशाह ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हाँ मैं।"

"और इस हालत में ! न शरीर पर सावित कपड़ा है। न हाँथ में तलवार। सिर पर पगड़ी भी नहीं है। (गौर से देखते हुये) तुम तो खून से रंगे हो।"

"हाँ! मैं खून में नहा कर आया हूँ।"

"मगर यह सब कैसे हुआ ?"

"इसी नाच के कारण।"

"ताज्जुब है। साफ-साफ क्यों नहीं कहते ?"

"मेरी हालत देखकर आप नहीं समझ सकते ? अब भी समझाना जरूरी है ?"

"हां।"

"तो फिर सुनिये। मैंने आप से मुहमदाबाद में फौज भेजने के के लिये कहा था, परन्तु आपकी फौज पहुँचने के पहले ही राजपूतों की फौजें पहुँच गईं। मुझे भाग कर अहमदनगर के किले में पनाह लेनी पड़ी, परन्तु वह राजपूत जाति है। प्राण देना उनके लिये बच्चों का खेल है। उन्होंने वहां भी आकर किले का फाटक तोड़ डाला।'

"अहमदनगर का फाटक तोड़ डाला ? सुलतान ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हाँ, तोड़ डाला !"

"लेकिन कैसे ?"

"इसकी कहानी सुनकर आप ताज्जुब में पड़ जायेंगे।"

"मुझे ताज्जुब इसी बात पर हो रहा है कि जिस फाटक को आज

तक कोई न तोड़ सका उसे राजपूतों ने तोड़ डाला। कई हमले हुये। दुश्मन उससे टकरा-टकरा कर वापस लौट गये, मगर उसका टूटना मुमकिन न हो सका।"

"परन्तु जिस तरह उन लोगों ने इसे तोड़ा है वह इतिहास में बलिदान की एक अभूतपूर्व कहानी है।"

"क्या है?" सुलतान का औत्सुक्य अपनी चरम सीमा पर था।

बहमनी ने फाटक टूटने का सम्पूर्ण वृत्तान्त सबको सुना दिया। सभी सुनकर आश्चर्य चकित रह गये। सुलतान के मुँह से निकला— "वाकई, कमाल कर दिया।"

"अभी कमाल नहीं किया है, मगर अब करेंगे।" बहमनी ने कहा

"क्या मतलब ?"

"अभी तो उन्होंने आपकी फौज को अहमदनगर में मौत के घाट उतारा है, हो सकता है वह इधर भी आ रहे हों।"

"इसी से तो मैं फौजें न भेज सका। मैं जानता था कि जब वह चालीस हजार फौज लेकर हमला करने के लिये निकला है तो जरूर ही इधर आयेगा।"

"अच्छा ! तो आपने इस डर से मेरी मदद नहीं की कि आप अपनी हिफाजत बेहतर समझते थे; परन्तु आप यह क्यों भूल जाते हैं कि वे भी आप की ही सल्तनत के टुकड़े थे।"

"वाकई, इस पर तो मैंने कभी गौर ही नहीं फरमाया।"

"दरबार के अक्लमन्द सलाहकारों से आपने सलाह नहीं ली थी ?"

"उन्हीं की सलाह से तो ऐसा हुआ हैं, वरना मैं तो फौज भेजने को आप से कह ही आया था।"

"तो फिर यह कहिए कि आप ने नहीं बल्कि सल्तनत के दुश्मनों ने आपकी मर्जी के खिलाफ आपसे यह करवाया।"

"यह आप क्या कर रहे हैं ? वे तो सल्तनत का भला चाहने वाले हैं। जिसका नमक खाते हैं उसी का बुरा कैसे सोचेंगे ?"

"आप भूलते हैं जहाँपनाह ! पुराना वक्त गुजर गया जब नमक खाने वाला अपनी वफादारी दिखाता था। आज तो ऐसा जमाना आ गया है कि जिस पत्तल में खाते हैं उसी में छेद करते हैं।"

"वाकई जब से आप चले गये तब से दरबार की रौनक चली गई दरबार सूना-सूना लगता है—कोई सलाहकार नहीं रह गया। अब आप आ गये हैं। यहीं रहकर हमले की तैयारी करिये। मैं उन्हें उनकी गुस्ताखी का मजा जरूर चखाऊँगा।'

"जो हुक्म।" बहमनी ने आज्ञाकारिता व्यक्त की।

दरबार में सन्नाटा छा गया था। सभी बड़-बड़े अमीर उमरे और सरदार सुलतान और बहमनी की वार्तालाप सुन रहे थे कि इतने में सोरठ के हाकिम मलिक अय्याज के आगमन की सूचना प्राप्त हुई। सुलतान ने उन्हें आदरपूर्वक दरबार में बुलाया और उचित आसन दिया। बैठने के उपरान्त अय्याज ने कहा—"मैंने सुना है कि राणा साँगा ने आपकी फौजों को ईडर और अहमदनगर से खदेड़ दिया है।"

"खदेड़ ही नहीं दिया है बल्कि सफाया कर दिया है।"

"ओह ! तब तो गजब हो गया।"

"खुदा का शुक्र कहिये कि बहमनी जिन्दा लौट आये।"

"आप कमाल के बहादुर हैं। आपकी बहादुरी की कहानियाँ घर-घर सुनने को मिल रहीं हैं। आप ने खूब बहादुरी से राजपूतों का सामना किया।" अय्याज ने बहमनी की ओर मुड़ते हुए कहा।

बहमनी चुप रहा।

"मुझे इन पर नाज है। मेरे ये सबसे बहादुर और वफादार सरदार हैं।" सुलतान ने कहा।

"वह तो मैं जानता हूँ, मगर इधर राणा के हौसले काफी बढ़

गये हैं, अगर इसे न रोका गया तो एक दिन वह आफत मचा देगा।"

"अभी उसने कौन सी कसर उठा रखी है। उसकी सबब से रात-दिन बेचैनी रहती है। पहाड़ी नदी की बाढ़ की तरह आता है। पता नहीं कब हमला कर बैठे।"

"तब तो उसे दबाना निहायत जरूरी है।"

"उसी बाबत तो रात-दिन सोचा करता हूँ।"

"वह तो आप की सेहत से ही मालूम हो रहा है, मगर सिर्फ फिक्र करने से तो काम चलेगा नहीं। कुछ करना भी तो चाहिये।" अय्याज ने कहा।

"तो फिर आप ही बताइये ?"

"मेरे खयाल से तो उस पर हमला करना चाहिये।"

"मेरा भी यही ख्याल है। हमला किये बिना उसका दिमाग दुरुस्त नहीं होगा। उसे अपनी ताकत पर बहुत नाज है।"

"उसकी आप परवाह मत करिये। वह अय्याज के पैरों की धूल भी नहीं है। अगर आप हुक्म दें तो मैं पूरे मेवाड़ को रौंद डालूँ और जिन्दा या मुर्दा पकड़ कर उसे आपके सामने पेश करूँ।"

"शाबास, अय्याज खाँ शाबास ! मैं तुम्हारी ताकत को जानता हूँ। तुम जो कहते हो मुझे उस पर पूरा यकीन है, मगर राणा की फौजी ताकत कुछ कम नहीं है।" सुलतान ने चिन्ता व्यक्त की।

"बीस हजार नौजवान सिपाही मेरी फौज में हैं और बीस तोपें हैं। वह क्या खाकर मेरा मुकाबला करेगा ?"

"लेकिन उसके पास तो इससे भी ज्यादा फौज है।"

"फौज में ज्यादा होने से क्या होता है। सिपाहियों में तो लड़ने को दम होनी चाहिये। मेरा एक-एक सिपाही उसके बीस-बीस सिपाहियों के बराबर है और फिर आप भी कुछ फौज दे ही दीजियेगा।"

"हाँ, हां क्यों नहीं! वह तो मैं दूँगा ही। तुम जितनी फौज चाहो ले जा सकते हो। इस बार तो राणा को मात देना ही है।"

"मेरे रहते आप बेफिक्र रहिये।"

"वाकई आज मेरी सारी परेशानी दूर हो गई।" कह कर सुलतान दरबार से उठ कर चल दिया।

——————

४४

मेवाड़ निवासी अहमद नगर की विजयोपरान्त निश्चिन्त होकर दिन व्यतीत करने लगे। घर-घर मस्ती छा गई। मंगल गीत गाये जाने लगे। हास-परिहास चलने लगा। दिन दूनी रात चौगुनी मस्ती से कटने लगे, परन्तु राजपूतों के जीवन में शान्ति कहाँ? उन्हें तो जीवन भर लड़ना है। युद्ध-भूमि ही उनकी शैय्या है। हाँथ तलवार से कभी खाली नहीं रहते। यह सुनते ही कि दिल्ली का सुलतान मेवाड़ की ओर बढ़ा चला आ रहा है, सम्पूर्ण मेवाड़ में गर्मी फैल गई। शान्त जीवन आन्दोलित हो उठा। परस्पर वार्तालाप होने लगा। राणा जी सभायें करने लगे। देखते-देखते युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। राजपूत को सजने में क्या देर लगती है। वह तो रण के लिये सदैव प्रस्तुत रहता है। चल पड़ी राणा की सेना शत्रु का सामना करने के लिये। दिल्ली के सुलतान को सबसे शक्तिशाली माना जाता था। राणा जी ने सम्पूर्ण राजपूत जाति को एकत्रित किया था। सैनिक उल्लास दृष्टव्य था। सेनायें अग्रसर हो रही थीं।

हड़ौती की सीमा पर खतौली गांव के पास दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ। सैनिक भूखे सिंह की तरह गर्जना करते और शत्रु को यमपुर पहुँचा देते। कटने लगे वीर। होने लगी पृथ्वी लाल। प्रकम्पित होने लगा आकाश। तलवारों की चमक आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर रही थी। रणोन्मत्त सैनिक अधाधुन्ध मार-काट कर रहे थे। इब्राहीम ने ऐसी मार-काट कभी न देखी थी। वह कांप उठा। उसकी भयावह आकृति पराजय के चिन्ह प्रगट कर रही थी। एक पहर तक भी युद्ध न चल सका। राजपूतों ने शत्रु को खदेड़-खदेड़ कर मारा। राणा जी ने युद्ध में विशेष वीरता दिखायी। वह उस युद्ध के पश्चात् दिल्ली का सम्राट बनने का स्वप्न देख रहे थे। अतएव उन्होंने घनघोर युद्ध किया। एक-एक सैनिक को बीन-बीन कर मारा। सुलतान की सेना बुरी तरह भाग रही थी। विजय की खुशी से सम्पूर्ण सेना पागल हो रही थी। जिस युद्ध के लिये इतनी तैयारी करनी पड़ी थी वह इतनी शीघ्र समाप्त हो जायेगी—इसकी कल्पना मात्र से वह आनन्दित हो रहे थे। सेना मेवाड़ को लौट पड़ी।

यह विजय मेवाड़ निवासियों के लिये विशेष महत्व रखती थी। इसके पश्चात् वे अपने को अजेय समझने लगे। दिल्ली का सुलतान ही एक ऐसी शक्ति थी जो भारत में सबसे बड़ी शक्ति समझी जाती थी और उस पर राजपूतों ने विजय प्राप्त कर ली थी। उन्हें अपना भविष्य शान्त दिखाई देने लगा था। इस विजय को एक त्योहार का रूप दे दिया गया। दरबार की सज्जा तो देखते ही बनती थी। राणा जी के कहने पर सभी राजा, राव, रावत, आमन्त्रित किये गये थे। प्रत्येक बड़ी सज-धज के साथ दरबार में उपस्थित हुआ था। उनकी वेश-भूषा रंग विरंगी थी। आनन्दातिरेक से मन-मयूर नर्तन

कर रहा था। सारा दरबार खचाखच भरा था। कुछ समयोपरान्त राणा जी दरबार में पधारे। परन्तु यह क्या ! वह तो बहँगी के सहारे आते दिखाई दिये। उनके वस्त्र भी तो सादे हैं। उनका एक हाँथ भी तो कुछ ढीला-ढीला शक्तिहीन सा प्रतीत हो रहा है। धीरे-धीरे वह आगे बढ़ रहे थे। दरबार का प्रत्येक व्यक्ति खड़ा था। शांति इतनी थी कि प्रत्येक की चलती हुई प्राण वायु को भी सुना जा सकता था। राणा जी मञ्च की ओर बढ़ने लगे। मञ्च आ गया। ऊपर चढ़ने लगे, परन्तु पैर साथ नहीं दे रहा है। हाँथ भी तो धोखा दे रहा है। राणा जी का शरीर काँप रहा है। पेशानी पर पसीना झलक आया। उनकी मुद्रा गम्भीर है। दरवार स्तब्ध है। सभी टक-टकी लगाये उन्हीं की ओर देख रहे हैं। मँच पर पहुँच कर वह खड़े होगये और बोले—"भाइयो ! आपको इस विजय के लिये बधाई है। आपने इस बार उस शक्ति को पराजित किया है जिसके लिये हमारे पूर्वजों ने अनेक प्रयास किये, परन्तु असफल रहे। यह विजय आपकी है,-मेवाड़ निवासियों की है-राजपूत जाति की है और आन पर मर मिटने वाले पूर्वजोंकी है। जिन्होंने इस वीर परम्परा की नीव डाली जो हमारे प्रेरक हैं, जिनका स्मरण मात्र हमारी नसों में रक्त को गति की तीव्रता प्रदान करता है। अब आप लोग अजेय हैं। आज सम्पूर्ण भारत ने आपकी शक्ति का लोहा स्वीकार कर लिया है। आप लोग अपना सिर ऊँचा कर सकते हैं। इतिहास आपके इस गौरव को कभी विस्मरण न कर सकेगा। आप लोग आज मुझे कुछ परिवर्तन के साथ देख रहे होंगे। आपको आश्चर्य हो रहा होगा। स्वाभाविक है। होना भी चाहिये। इसका कारण जानने की स्वाभाविक उत्कण्ठा को सम्भवतः आप दबा न पा रहे होंगे। तो सुनिये—मैं आप लोगों के समक्ष इस विलक्षण रूप में इसलिये प्रस्तुत हुआ हूँ कि अब मैं राणा नहीं रहा। आप लोगों की ही भाँति एक सैनिक हूँ।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?" एक राजपूत सरदार ने बीच से प्रश्न किया।

'मैं जो कुछ कह रहा हूँ ठीक ही कह रहा हूँ। अब मैं राणा नहीं रहा। आज से यह सिंहासन खाली है आप लोग जिसे चाहें इस पर बैठाइये।" राणा जी ने शान्त भाव से कहा।

"यह क्या ?"

"मैं अपनी स्थिति की वास्तविकता पर प्रकाश डाल रहा हूँ। मैं अब राणा के उपयुक्त नहीं रहा।"

"क्यों ?"

"मेरी एक भुजा और टाँग व्यर्थ हो गई है। पूर्व प्रथा के अनुसार कोई भी विकलाँग व्यक्ति राणा के पद पर नहीं रह सकता।"

राणा जी की बात सुन कर सभी सन्न रह गये। इस ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया था। राणा जी के मुँह से सहसा यह बात सुन एक दूसरे का मुँह देखने लगे। प्रत्येक एक दूसरे से उत्तर देने की आशा करता परन्तु कोई कुछ न बोलता। राणा जी ने पुनः कहा—"परम्परा का पालन करना हम लोगों का कर्तव्य है।"

एक बृद्ध राणा जी की बात सुनकर उठ खड़ा हुआ और उच्च स्वर में बोला—"मेरी धृष्टता क्षमा हो। हम लोग आपकी आज्ञा मानने को तैयार नहीं।"

"मेरे भाई ! इसे मेरी आज्ञा न समझो—ऐसा कह कर तो मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है।"

"आपका कथन तथ्यपूर्ण होते हुये भी हमें स्वीकार न होगा।"

"क्यों।"

"हम सब आपको राणा के पद पर ही देखना चाहते हैं।"

"तो क्या आप लोग परम्परा का विरोध करना चाहते हैं ?"

"परम्परा का निर्माण महापुरुष करते हैं और उसमें परिवर्तन भी महापुरुषों के ही द्वारा होना चाहिये।"

"तो क्या आप लोग इस परम्परा को परिवर्तित कर डालना चाहते हैं—जिसे सदियों से हमारे पूर्वज मानते चले आ रहे हैं।"

"राजपूत जाति स्वातन्त्र्य-प्रिय है। उसे किसी की दासता स्वीकार नहीं। फिर परम्परा की परतन्त्रता यों ही हम क्यों स्वीकार करें ?"

"स्वातन्त्र्य प्रियता का यह तात्पर्य तो नहीं कि हम अपनी प्रिय परम्पराओं को उखाड़ कर फेंक दे।"

"महाराज परम्परायें हमारी दास हैं हम परम्पराओं के नहीं। इनका अस्तित्व सुख-सुविधा के लिये होता है। यदि ये हमारी प्रगति के मार्ग में बाधक बनेंगी तो हमें इनका अस्तित्व एक क्षण के लिये भी असह्य होगा।"

"यदि आप लोग परम्परा के परिवर्तन पर तुले हैं तो मैं आप लोगों को रोकूँगा नहीं, परन्तु मैं अब इस शरीर से आप लोगों की कुछ सेवा भी तो नहीं कर सकता।"

"आप राजपूती शक्ति-संगठन के प्रतीक हैं। हमारी प्रेरणा के श्रोत हैं। जातीय गौरव के रक्षक हैं। आपको देख कर हम अतीत की शक्ति का अनुभव करते हैं। आप के नेतृत्व की अभी हम लोगों को आवश्यकता है"

"परन्तु मैं तो कुछ भी सेवा कर सकने में असमर्थ हूँ।"

"आप सर्व शक्तिमान होते हुये भी अपने को अशक्त क्यों समझते हैं ? समस्त मेवाड़ की शक्ति आप की ही तो है।"

शक्ति के सागर तो आप ही लोग हैं ......।"

"परन्तु श्रोत तो आप हैं।"

सभा में हास्य बिखर गया। राणा जी भी अपनी मुस्कान न रोक सके। हास्य पर नियन्त्रण पाते हुये राणा जी ने कहा-"आप लोग अब भी मुझे वह सम्मान दे रहे हैं जिसके लिये मैं सर्वथा अनुपयुक्त हूँ।"

"तो फिर उपयुक्त कौन है ?"

राणाजी चुप हो गये। कुछ उत्तर देते न बना। कुछ क्षणोपरान्त वह बोले-"आप लोग जिसे उचित समझें।"

"आप के औचित्य पर किसी को सन्देह नहीं है।"

"आप के आग्रह को मैं कैसे टाल सकता हूँ।" राणाजी ने कहा।

सम्पूर्ण दरबार राणा जी की जय, 'मेवाड़ की जय, आदि नारों से गूँज उठा। जो परम्परा अभी तक राजाओं को परिवर्तित करती रही वह स्वयं परिवर्तित हो गई। समस्त सभासद आनन्द-सागर में हिलोरें ले रहे थे कि यकायक एक सैनिक ने प्रवेश किया और उचित अभिवादन के पश्चात् बोला-"दिल्ली का सुलतान पुन: आक्रमण के लिये बढ़ता चला आ रहा है।"

"ओफ ! मैं तो पहिले ही जानता था कि वह पराजय का बदला अवश्य लेने का प्रयास करेगा। आखिरकार वह घड़ी आ ही गई।"

राणाजी पुन: मंच से उठ खड़े हुये और दाहिनी भुजा उठा कर कहा-"वीरों ! सुलतान पुन: हमारी शक्ति की परीक्षा लेने आ रहा है। हमें उसका डटकर सामना करना है।" राणा जी का इतना कहना था कि समस्त तलवारें आकाश की ओर उठ गईं और एक स्वर से सबने कहा-"हम लड़ेंगे।"

४५

राणा सांगा के नेतृत्व में पुन: दिल्ली के सुलतान की सेना से टक्कर लेने के लिये राजपूत सेना चल पड़ी।

सुलतान की सेना का माखन खाँ बड़ा ही महत्वाकाँक्षी था। अपनी महात्वाकाक्षाओं को मूर्त रूप में देखने के लिये वह औचित्य-अनौचित्य का कुछ भी ध्यान नहीं रखता था। इससे उसका विरोध बढ़ता गया।

हुसेन खाँ अत्यन्त आत्मसम्मानी व्यक्ति था। उसे अपनी प्रतिष्ठा के बिरूद्ध एक भी बात सह्य न होती थी। अनेक ऐसे अवसर आये जब उसने सुलतान तक को उत्तर देने में अपनी निर्भीकता का परिचय दिया। बढ़ती हुई शक्ति के समक्ष सभी झुकते हैं। माखन खां की शक्ति का सभी लोहा मानते थे; परन्तु हुसेन खां के सामने माखन खां की दाल न गलती। दोनों में विरोध बढ़ता गया। एक दूसरे की जान के प्यासे हो गये। वह माखन खां के नेतृत्व में युद्ध नहीं करना चाहता था, अतएव उसने रात्रि के समय जब कि सेना मार्ग में विश्राम कर रही थी, अपने कुछ सैनिकों को लेकर चल पड़ा।

राणा भी अपनी सेना सहित कुछ ही अन्तर पर प्रातःकाल की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रकाशित डेरे में राणा जी बैठै कुछ अन्तरंग सहयोगियों के साथ विचार विमर्ष कर रहे थे। इसी समय द्वारपाल ने सूचना दी की कोई उनसे मिलना चाहता है। राणा जी ने उसे अन्दर ले आने को कहा। आगन्तुक ने अन्दर प्रवेश किया और अभिवादन किया। राणा जी ने अभिवादन कर उत्तर देते हुये सम्मान पूर्वक बैठाया और अपनी जिज्ञासा व्यक्त की–"मैं आप को पहचान नहीं सका। क्या आप अपना परिचय देने का कष्ट करेंगे ?"

"मेरा नाम हुसेन खाँ जरबख्श है। मैं सुलतान की सेना का प्रमुख सरदार हूँ।"

राणा जी ने सतर्क होकर पूँछा–"आपके यहाँ आने का आशय ?"

"मैं माखन खां के सेनापतित्व में युद्ध नहीं कर सकता, इसलिये मैंने युद्ध करने से इन्कार किया। इस पर सुलतान से कुछ कहा-सुनी हो गई, जिससे मैं उन्हें छोड़कर चला आया हूँ।"

"आप मेरे पास आये हैं इसके लिये आपका स्वागत, परन्तु ऐसा करना उचित नहीं है।"

"इन्सान अपनी इज्जत के लिये सब कुछ करता है। मैं अपनी तौहीनी बरदास्त नहीं कर सकता।"

"आप के साथ मुझे पूरी सहानुभूति है। जब तक युद्ध समाप्त न हो जाय आप मेरे अतिथि बन कर रहिये।"

"मैं बैठकर युद्ध देखने नहीं आया हूँ।"

"तो फिर आप किस लिये आये हैं ?"

"मैं आपकी ओर से युद्ध करके उन्हें बताना चाहता हूँ कि किसी बहादुर इन्सान की बेइज्जती करने का क्या नतीजा होता है। मेरे पास तीस सिपाही और तीन सौ हाथी हैं, जिन्हें मैं कुछ ही दूरी पर छोड़ आया हूँ।"

राणा जी ने हुसेन की बात ध्यान से सुनी। और विचार करने लगे। हुसेन ने राणा जी को शान्त देखकर कहा—

शायद आपको मेरी बातों पर यकीन नहीं हो रहा है। आप बहादुर हैं। बहादुर की बात का बहादुर को ही यकीन करना चाहिये। झूठ बोलना कायरों का काम है।"

राणा जी ने उसकी बात सुनी, उसकी ओर देखा और तत्क्षण हाथ फैलाते हुए कहा—"अच्छा, तो मित्र जाओ और सेना ले आओ। मैं प्रत्येक वीर पुरुष का उतना ही विश्वास करता हूँ जितना स्वयं अपना।"

"वाकई जैसा आप के बारे में सुना था वैसा ही पाया। आप बहादुर हैं। बहादुरों की कद्र करना जानते हैं।" उठते हुये हुसेन ने कहा और डेरे के बाहर हो गया।

हुसेन के जाने के पश्चात् डेरे के अन्दर बैठे हुए एक राजपूत सरदार ने कहा—"आपने एक यवन पर विश्वास कर लिया, और फिर उस पर जो हमारा शत्रु है।"

"प्रत्येक को संदिग्ध दृष्टि से देखना उचित नहीं। उसकी बातों में सच्चाई थी। वह धोखा नहीं देगा।"

"जो सुलतान को धोखा दे सकता है, वह आप को भी दे सकता

है। ऐसे धोखेबाज का विश्वास न करना ही हितकर होगा।"

"तुम्हारी दूरदर्शिता प्रशंसा के योग्य है, परन्तु राजपूत की बात एक है, दो नहीं। मैंने उसे बचन दे दिया है। उसके बिरुद्ध आचरण नहीं कर सकता।"

"फिर भी उससे सतर्क रहने की आवश्यकता है ही।"

"हां उस पर ध्यान रखना आवश्यक है। तुम्हीं अपने ऊपर इस कार्य-भार को क्यों नहीं ले लेते।"

"जो आज्ञा।"

"प्रात:कालीन युद्ध के लिए सब तैयारियाँ हैं ?"

"जी हां, आपके कथनानुसार सेना को तीन भागों में बांट दिया है।"

"अब तो सम्भवत: थोड़ी ही रात रह गई है।"

"ध्रुवतारा निकल आया है।" बाहर उत्तर की ओर झांक कर सरदार ने कहा।

"तो फिर रात कहाँ ? अब तो सैनिकों को तैयार होना चाहिये।"

"आज सैनिक सोये ही नहीं हैं।"

"क्यों ?"

"मुझे पता नहीं क्यों प्रत्येक सरदार इस युद्ध के लिए विशेष चिन्तित प्रतीत हो रहा है।'

"मुझे अशक्त समझकर ही सम्भवत: यह दशा है। खैर ! चलो अच्छा ही है, आज प्रत्येक सैनिक राणा बनकर युद्ध करेगा।"

प्रहरी ने सेना सहित हुसेन के आगमन की सूचना दी। राणा जी बाहर निकले और हुसेन की सेना का निरीक्षण किया। हुसेन को आवश्यक निर्देश देकर राणा जी ने एक चक्कर लगाकर प्रत्येक सैनिक पर दृष्टि डाली। प्रत्येक सरदार तैयार था। अपनी रुचि के अनुकूल सेना की तैयारी और मोर्चा-बन्दी देखकर वह मन ही मन प्रसन्न हुये।

अंधकार क्षीण होने लगा। पक्षी चहचहाने लगे। सुलतान की सेना का घोर-शब्द सुनाई देने लगा। राजपूत भी आगे बढ़े। दोनों सेनायें भिड़ गईं। शक्ति आदान प्रदान होने लगा। पृथ्वी की प्यास बुझने लगी। सैनिकों की संख्या में कमी होने लगी। दोपहर तक खूब घमासान युद्ध होता रहा। शनैः शनैः संध्या होने लगी। अंधकार बढ़ता गया। युद्ध बन्द हो गया। दोनों ओर शेष सैनिक अपने-अपने डेरों की ओर जाने लगे। चन्द्रमा की चाँदनी कफन बनकर सभी मृतक सैनिकों पर फैली हुई थी। वे सब चिर निद्रा में निमग्न थे। हारे-थके सैनिक निद्रा में निमग्न हो गये, परन्तु माखन खां की आखों में नींद न थी। वह चुप-चाप लेटे हुये विचार कर रहा था। सहसा उसके मस्तिष्क में कोई ऐसा विचार आया जिसने उसे उत्तेजित कर दिया। और वह उठ खड़ा हुआ। उसने अपने वस्त्रों में परिवर्तन किया और हुसेन खाँ के डेरे की ओर चल दिया। पूँछते हुये वह हुसेन खां के डेरे के द्वार पर पहुँच गया। प्रहरी के द्वारा अन्दर प्रवेश करने की आज्ञा प्राप्त की। हुसेन मसनद के सहारे लेटा हुआ कुछ विचार कर रहा था। साधारण वस्त्रों में माखन खाँ को देखकर वह चौंक पड़ा, परन्तु इसके पूर्व कि वह कुछ कह सके माखन खाँ ने पास ही सामने बैठते हुए कहा—"घबड़ाइये नहीं, मैं आप से कुछ बातें करने आया हूँ।"

प्रकृतिस्थ होते हुए हुसेन खां ने पूँछा—"फरमाइये।"

"दिन भर के युद्ध से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि आप की गैरहाजिरी में हमारे सरदार राजपूतों का सामना नहीं कर सकते।"

"फिर मैं क्या करूँ?"

"आप कल सुबह अपनी तरफ से लड़िये।"

"यह आप क्या कह रहे हैं? मैंने राणा जी को जवान दी है। मैंने उन्हें यकीन दिलाया है कि मैं उन्हें धोखा नहीं दूँगा।"

"मगर यह याद रखो कि इतिहास में यह नहीं लिखा जायगा कि माखन-

खां हार गया और राणा जीत गये बल्कि यह लिखा होगा कि मुसलमान हिन्दुओं से हार गए।" कह कर माखन खां डेरे से बाहर हो गया।

हुसेन खां रात भर सो न सका और कर्तव्याकर्तव्य पर विचार करता रहा।

रात बीती। अंधेरा समाप्त हुआ। दोनों सेनायें पुन: आमने-सामने हुईं। आगे बढ़ीं। तलवारें लपकीं। सैनिक कटने लगे। राजपूती मार करारी थी। मुसलमान सैनिक दब रहे थे। हुसेन खां अभी राणा की ओर से ही लड़ रहा था, परन्तु उसके मस्तिष्क में 'मुसलमान हारे और हिन्दू जीते' यही बात चक्कर काट रही थी। उसने अपने सैनिकों को ललकारा और सुलतान की ओर से युद्ध करने लगा। राजपूत इस अचानक परिवर्तन को देखते ही रह गये। उसी राजपूत सरदार ने राणा जी के पास जाकर कहा—"देखा राणा जी! दे गया धोखा।" राणा जी की तलवार तेजी से चल रही थी उन्होंने 'हूँ' कहा और दूने वेग से शत्रु की सेना का संहार करने लगे। अपनी अदूरदर्शिता पर वह विचार कर रहे थे। कि सहसा हुसेन सामने आया और आक्रमण कर दिया। राणा जी ने वह वार बचा लिया और तलवार का ऐसा भरपूर हाँथ मारा कि हुसेन का सिर भूमि पर लोटने लगा। हुसेन का सिर कटना था कि राणा जी के शरीर में बिजली दौड़ गई। एक ही भुजा की मार इतनी करारी थी कि शत्रु विचलित होने लगे। राजपूत सांसारिक मायामोह छोड़ कर युद्ध में रत थे। देखते ही देखते कुछ ही क्षणों में सुलतान के शेष सैनिक भागते दृष्टिगोचर हुये। भगवा फहराने लगा। जीत का डंका बज उठा। राजपूतों के हर्ष का पारावार न रहा।

४६

राणा जी शान्ति पूर्वक अपने कक्ष में विश्राम कर रहे थे। संध्या रात्रि में परिवर्तित होती जा रही थी। अन्धकार छाता जा रहा था। चांदनी छिटक रही थी। प्रकृति श्वेतवर्ण हो रही थी। राणा जी कभी मुस्कराते कभी गम्भीर हो जाते। विचारों के साथ ही साथ उनकी मुद्रा भी परिवर्तित होती थी। सहसा द्वार पर किसी के आने की आहट हुई। राणा जी ने द्वार की ओर देखा और स्वाभाविक मुस्कराहट चेहरे पर लाते हुए कहा—"आओ महारानी ! वहीं क्यों रुक गई ? अन्दर मेरे पास तक क्यों न चली आई ?"

"महाराज के पास आने के पूर्व आज्ञा लेना भी तो आवश्यक होती है।" रानी कर्मवती ने कक्ष में प्रवेश करते हुए कहा।

रानी कर्मवती को राणा जी विशेष स्नेह करते थे। यद्यपि राणा जी ने पूर्व परम्परानुसार अनेक ब्याह किये थे और अनेक रानियाँ भी थीं परन्तु जिन गुणों के कारण वह कर्मवती को स्नेह करते थे वे गुण किसी में भी न मिलते थे। रानी को गौर से देखते हुये राणा जी ने कहा—

"आज तुम में कुछ परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है ?"

"परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है। प्रकृति में प्रति क्षण परिवर्तन परिलक्षित होता है। सृष्टि को इसी परिवर्तन से तो गति प्राप्त होती है। गतिहीन जीवनमृत्यु है।"

परिवर्तन और दार्शनिक का।" रानी को पास खींचते हुये राणा ने कहा।

"दार्शनिक तो सृष्टि आत्मा-परमात्मा के विषय में चिन्तन करता है मुझे तो क्षुद्र बातों से ही अवकाश नहीं।"

"वही क्षुद्र बातें तो मैं जानना चाहता हूँ।"

"आज आप दिन भर के बाद तो आखेट से लौटे हैं; थक गये होंगे लाइये पैर दबा दूँ।" पैर पकड़ने का रानी उपक्रम करने लगी।

"नहीं, पैरों में कोई थकावट नहीं अनुभव हो रही है। हाँ, सिर अवश्य भारी-भारी लग रहा है।"

"तो फिर लीजिये, वही दबा दूँ।" राणा जी का सिर अपनी गोद में रखकर दबाने लगी। कुछ क्षणों तक दोनों मौन रहे। कोई किसी से कुछ न बोला। राणा जी पुन: अपने विचारों में लीन हो गये; परन्तु शीघ्र ही कोई ऐसा विचार आया कि उनका ध्यान रानी की ओर आकृष्ट हो गया। रानी के हाँथ तो सिर दबाने में व्यस्त थे और वह देख बाहर की ओर रही थीं। राणा ने उनकी ओर देखते हुये कहा—"बाहर क्या देख रही हो महारानी?"

"परिव्याप्त शान्ति।"

"परन्तु मुझे यह अशान्ति क्यों दृष्टिगोचर हो रही है?"

"कहाँ? कैसी? कौन सी अशान्ति?"

"तुम्हारे हृदय की अशान्ति।"

रानी मौन हो गई।

"बोलो रानी मौन क्यों हो गई?"

"कुछ नहीं।"

"मुझसे गुप्त रखने की चेष्टा कर रही हो?"

"नहीं आप को बताये बिना शान्ति कैसे मिलेगी?"

"तो फिर बताती क्यों नहीं?"

"बताती हूँ।" कहकर रानी पुन: शान्त हो गई।

रानी का इस समय मौन राणा जी को असह्य हो उठा। उन्होंने

अधैर्य होकर पूछा--"कौन सी ऐसी गम्भीर बात है जिसके औचित्य पर तुम विचार कर रही हो। ?"

"मुझे कुछ अनिष्टकारी परिणाम परिलक्षित हो रहे हैं।"

क्या मुझे उसमें समभागी नहीं बनाओगी ?"

"बनाऊंगी अवश्य बनाऊंगी। आप के अतिरिक्त और हैं ही कौन मेरा !"

"क्यों दोनों पुत्र विक्रमादित्य और उदयसिंह नहीं हैं ? सम्पूर्ण राज्य की प्रजा तुम्हारी नहीं है।"

इन्हीं ने ही तो मुझे बेचैन कर रखा है।"

'क्या किसी ने कुछ कह दिया ?

"जब तक आप हैं तबतक कौन क्या कह सकता।'

"तो फिर यह हाहाकार हृदय के अन्दर क्यों मचा हुआ है ?

"आपने रत्नसिंह को तो युवराज बना ही दिया है। मैं चाहती हूँ कि विक्रम और उदय की भी कोई व्यवस्था हो जाय तो अच्छा है।"

"हूँ।" राणा ने कहा।

"क्या मालूम किस समय क्या हो जाय। जीवन का कोई भरोसा नहीं। आज है कल न रहे। हमदोनों तो पके आम की भाँति हैं, पता नहीं कब चू पड़ें।"

"अच्छा।" कहकर राणा जी शान्त हो गये।

"परन्तु शीघ्रता करने की कोई आवश्यकता नहीं।"

"नहीं जो करना आवश्यक हो, उसमें बिलम्ब करना उचित नहीं।"

"तो क्या आप शीघ्र ही कुछ व्यवस्था कर डालेंगे ?"

"हाँ अगर शत्रु से न निपटना होता तो कल ही इस कार्य को कर डालता।"

"कौन शत्रु ? कैसा शत्रु ?

''आज ही सुनने में आया है कि गुजरात का सुलतान आक्रमण के लिये चल पड़ा है।

''कितनी बार तो यह आप से परास्त हो चुका है। फिर भी आक्रमण करने आ रहा है ?''

''प्रतिशोध की भावना बड़ी प्रबल होती है। वही उसे ऐसा करने को बाध्य करती है।''

''परन्तु जब प्रत्येक बार उसे मुँह की खानी पड़ती है तब फिर शान्त होकर क्यों नहीं बैठता ?''

''शासक की महत्वाकाक्षायें असीम होती हैं।

''उन्हीं की पूर्ति के लिये वह निरन्तर संघर्ष करता है।''

''आपके भी जीवन में विश्राम नहीं।''

''शासक बनकर शान्ति कहाँ ?'' निरन्तर एक न एक समस्या मुँह खोले खड़ी रहती हैं।''

''राजपूतों का भी क्या जीवन है ! निरन्तर युद्ध संघर्ष' मारकाट, निरीह प्राणियों की हत्या। क्या मिलता है इस शक्ति के आदान-प्रदान में ?

''आदान-प्रदान में मिलता कुछ नहीं बल्कि शक्ति का अपव्यय होता है।''

''क्या इस सत्य से सब लोग परिचित नहीं ?''

होंगे, अवश्य परिचित हैं ; परन्तु परिस्थितियाँ मनुष्य को अपनी इच्छा के बिरूद्ध आचरण करने को वाध्य करती हैं। प्रत्येक मानव शान्ति चाहता है। संघर्ष किसे प्रिय है ? प्रत्येक की अभिलाषा है कि उसका जीवन सुरक्षित हो। हार-जीत से परे समस्याओं पर विचार कर सके ; परन्तु पारस्परिक बैर–भाव सबको नष्ट किये डाल रहे हैं।''

''हे ईश्वर ! कब इन युद्ध प्रिय प्राणियों में सदबुद्धि जाग्रत होगी।''

"प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती। अवश्य किसी न किसी दिन सबमें सद्बुद्धि जाग्रत होगी और अपने अतीत के आचरणों पर पश्चाताप करेंगे।"

"मानव स्वभाव तो अतीत की ही प्रशंसा करता है। उसे उसका अतीत सदैव स्वर्णिम प्रतीत होता है।"

"हाँ, परन्तु विचारशील व्यक्ति अतीत की घटनाओं को विवेक की कसौटी पर कसते हैं। वे निन्दात्मक घटनाओं की प्रशंसा कभी नहीं करते।"

"परन्तु ऐसे विचारशील प्राणी हैं कितने इस संसार में?"

"जितने भी हैं, काफी हैं। उन्हीं के विचार युगों-युगों तक जीवित रहते हैं। भावी संतानें उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करती हैं।"

'सन्तान' शब्द के उच्चारण से रानी को विक्रम का स्मरण हो आया। विक्रम प्रातःकाल से ही बाहर गया हुआ था। अभी तक वापस नहीं लौटा था। तत्क्षण रानी ने उठते हुये कहा—"जरा देखूँ तो विक्रम अभी आया या नहीं।" कह कर रानी कक्ष के बाहर हो गई।

४७

गुजरात के सुलतान ने अय्याज की अध्यक्षता में सेना रवाना की। अय्याज सेना सहित आगे बढ़ा। खूब जोरों की तैयारी की गई थी। अय्याज में असीम उत्साह था। वह आँधी के समान जिस ओर जाता सफ़ाया कर देता। सेना मोड़ासा होती हुई बागड़ पहुँची। सैनिकों ने बागड़ को खूब लूटा। बागड़ निवासी मौत के घाट उतारे गये। घर

जलाये गये । सारा इलाका नष्ट कर दिया गया । सेना लूटती-पाटती आगे बढ़ी । डूंगरपुर रास्ते में ही पड़ा । उसकी भी वही दशा हुई । अत्याचार की कहानी कहने को पक्षियों के अतिरिक्त और कोई प्राणी न बचा । सेना ने आगे बढ़कर सांगवाड़े पर छापा मारा । अधिकांश निवासी यहाँ से भाग गये । जो माया-मोह न छोड़सके वे सबके सब यमपुर पहुँचा दिये गये । धन सम्पत्ति खूब हाँथ लगी । अत्याचार ने अपने नग्न रूप का प्रदर्शन किया । उसी सांगबाड़े से मिला हुआ एक स्थान बाँसवाड़ी हैं । यहाँ पहाड़ियां अधिक है । इन्हीं पहाड़ियों में कुछ राजपूत सैनिक निवास करते थे, परन्तु विशाल सैनिक शक्ति देखकर वे छिपे ही रहगये । उन्होंने सेना को छेड़ना उचित न समझा और सेना को अग्रसर होने दिया । ज्यों ज्यों सेना लूटती हुई आगे बढ़ रही थी त्यों-त्यों उनका उत्साह बृद्धिपाता जा रहा था ।

मन्दसौर राजपूतों का एक अच्छा गढ़ था । यहाँ अधिक संख्या में राजपूत निवास करते थे । यद्यपि यह इलाका छोटा, था, परन्तु था बड़ा खुशहाल और खूब धन-धान्य से ,परिपूर्ण । कृषि की उत्तमावस्था थी । अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये भी वह आस-पास प्रसिद्ध था । यहाँ अशोकमल का आधिपत्य था । वह अत्यन्त उदार एवं वीर शासक था । जनता को अपना सहयोगी समझता था । जनता के साथ स्वजनों का सा व्यवहार था । उसके एक संकेत पर प्रजा का एक एक बच्चा मरने को सदैव प्रस्तुत रहता था । जैसे ही उसको सूचना मिली कि गुजरात की सेना बढ़ती चली आ रही है । उसने भी अपने नौजवानों को तैयार होने को कहा । मन्दसौर के प्रत्येक नागरिक ने सैनिक वेष धारण किया और दुर्ग में एकत्र हो गये । शत्रु ने दुर्ग को घेर लिया । राजपूत कि सेना भीतर से और सुलतान की सेना बाहर से युद्ध रत हो गई । अशोकमल कई दिन तक सामना करता रहा । उसकी सेना कम होती जा रही थी । दुर्ग को तोड़ने के लिए कई दिनों से निरन्तर प्रयास किये जा रहे थे । दुर्ग टूटने ही वाला था । अशोकमल

बड़े संकट में फँसा हुआ था। शत्रु कुछ ही समय में दुर्ग पर अधिकार करने की बात सोच रहे थे कि सुनने में आया कि राणा सांगा अपनी सेना लेकर आगया है। शत्रुओं का ध्यान दुर्ग की ओर से हटकर सांगा की ओर चलागया।

सांगा के पास बिशाल सेना थी। अनेक राजपूत जागीरदार आ-आ कर राणा की सेना में सम्मिलित हो गये थे। अय्याज राणा का सामना करने के लिये आगे बढ़ा और आक्रमण करना चाहता था परन्तु राणा की विशाल सेना को देखकर वह दंग रह गया। इतनी विशाल सेना की तो उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी। उसका सारा उत्साह ठंढा पड गया। समस्त विरोधी विचार एक-एक करके खिसकने लगे। राणा से युद्ध करना अपनी सेना कटवाना था। उसने दूरदर्शिता से काम लिया। राणा के पास संधि का प्रस्ताव भेजा। राजपूत शरण में आये हुए शत्रु को क्षमा करने में कभी न चूकते थे। राणा राजी हो गये और संधि हो गई। इतनी जोरदार तैयारियों का अन्त इस प्रकार हो जायगा किसी ने कल्पना तक न की थी।

४८

राणा जी ने रतन सिंह को अपने समक्ष खड़ा हुआ देखकर कहा—"आओ, बेटा बैठो। मुझे तुमसे कुछ आवश्यक बातें करनी हैं।"

"मुझसे ?" रतनसिंह ने प्रश्न किया।

"हाँ, तुमसे। कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं कि मनुष्य उनका विरोध नहीं कर पाता। इस समय मुझे एक ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा है। उसमें तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता है।"

"यदि आपका कोई कार्य मेरे प्राण देने से सिद्ध हो तो भी मैं प्रस्तुत हूँ।"

"शाबास। वास्तव में तुम रत्न हो।" कुछ रुक कर कोई भी पिता कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहता है जिससे उसकी सन्तान का अहित हो। मैं नहीं चाहता कि भविष्य में तुम्हारे भाइयों के बीच किसी प्रकार का बिरोध उत्पन्न हो। इसलये मैंने सोचा था कि तुम्हारे दोनों छोटे भाइयों को भी जागीर आदि की व्यवस्था कर दूँ।

"तो इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ?"

"तुम्हें मेरी यह योजना उचित प्रतीत हो रही है ?"

"क्यों नहीं ! इसमें अनुचित क्या है ? वे मेरे दोनों भाई हैं। आप हम सबके पिता हैं। राज्य आपका है। आप जिसे चाहें दें। इसमें मुझे आपत्ति होनी ही नहीं चाहिये।"

"परन्तु युवराज तो तुम घोषित किये जा चुके हो ?"

"युवराज घोषित होने से क्या हो जाता है। यह बनिया की कमाई तो है नहीं, जो बराबर-बराबर सभी भाइयों में बाँटी जा सके। जिसकी तलवार में शक्ति होगी वह इसे भोगेगा।"

'ऐसी बात नहीं है बेटा ! युवराज ही उत्तराधिकारी होता है। और फिर तुम सब से बड़े राजकुमार हो। परम्परानुसार तुम्ही राज्य के उत्तराधिकारी हो।"

आपके जीवित रहते मैं इस प्रकार की कोई बात सोचना नहीं चाहता। आप जो भी चाहें करिये मुझे आपके किसी भी कार्य में कोई आपत्ति नहीं।"

"तो फिर मैं कल दरबार में कार्य को सम्पादित करना चाहता हूँ।"

"प्रसन्नता से करिये पिता जी। मेरे योग्य भी यदि कुछ कार्य हो तो आज्ञा दीजिये।"

राणा जी रत्नसिंह के सौजन्य पर इतना मोहित होगये कि उन्होंने रत्नसिंह को पकड़ कर छाती से लगा लिया।

४६

दूसरे दिन दरबार लगा । दरबार खचाखच भरा हुआ था । अचानक दरबार होने की बात किसी को भी ज्ञात न थी । प्रत्येक विस्मित होकर एक दूसरे से पूछता परन्तु प्रत्येक अपनी असमर्थता प्रकट करता । कुछ क्षणोपरान्त राणा जी दरबार में पधारे । आज उनके साथ तीनों राजकुमार भी थे । राणा जी ने मञ्च पर खड़े होकर दरबारियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"प्रिय मित्रो ! आप लोगों को दरबार के अचानक लगने पर आश्चर्य हो रहा होगा । मैंने आप लोगों को एक आवश्यक कार्य के लिये कष्ट दिया है । आप लोग तो जानते ही हैं कि आये दिन हम लोगों को युद्ध करना पड़ता है जीवन का क्या भरोसा । क्या मालूम कब मृत्यु का झोंका आ जाय और कौन चल बसे । मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मैं अपने जीते जी राजकुमारों के लिये उचित व्यवस्था कर दूँ । मैं जागीरों का बँटवारा अपने तीनों पुत्रों में करना चाहता हूँ । आप लोग तो जानते ही हैं कि पिता की मृत्योपरान्त राजकुमारों में राज्य के लिये कितना संघर्ष होता है । उस संघर्ष से इन राजकुमारों को मुक्त रखना चाहता हूँ ।"

सभा में सन्नाटा छाया हुआ था । राणा जी बड़ी ही सतर्कता पूर्वक अपनी बात के प्रभाव को देख रहे थे । अवसर से लाभ उठाते हुए उन्होंने कहा—

"क्यों युवराज ! तुम्हारी क्या सम्मति है ?"

"मुझे आपकी योजना में कोई आपत्ति नहीं । आप जो कुछ भी करेंगे । हम लोगों के हित के लिये ही होगा ।"

राणा जी ने दरबार के समक्ष रत्नसिंह की स्वीकृति ले ली। आशातीत उत्तर पाकर वह तत्क्षण बोल उठे—"रणथम्भौर की जागीर तुम्हारे छोटे भाइयों को दे दी जाय।"

"दे दीजिये मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

राणा जी ने अवसर से चूकना तो कभी सीखा ही नहीं था। उन्होंने उसी समय जागीर-पत्र लिखवाया और दोनों छोटे राजकुमारों से जागीर भूजरा* करने को कहा। दोनों राजकुमारों ने जागीर स्वीकार की। राणा जी ने दरबार में उपस्थित लोगों पर दृष्टि डाली और स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ कहा—"सूरजमल जी! ये राजकुमार अभी छोटे हैं। जब तक ये बड़े न हो जायँ तब तक आप इनका संरक्षकत्व स्वीकार करिये।"

"आप चितौड़ के स्वामी हैं और मैं आपका सेवक। जो कुछ भी आप आज्ञा देंगे मुझे स्वीकार होगा।" सूरजमल ने दबे स्वर में यह बात कही।

राणा जी कम चतुर न थे। वह तत्क्षण भाँप गये कि सूरज और कुछ कहना चाहता है अतएव बात को और आगे बढ़ाने के उद्देश्य से कहा—"इसमें स्वामी और सेवक की कोई बात नहीं है। ये बच्चे आपके भानजे हैं। आप से श्रेष्ठ संरक्षक इनके लिये और कौन हो सकता है?"

"मैं इस उत्तरदायित्व को अस्वीकार नहीं कर रहा हूँ, परन्तु एक बात है......।"

"हाँ, हाँ! कहो रुक क्यों गये?"

"आपके पश्चात् यदि रत्नसिंह ने विरोध किया तो?"

इसके पूर्व कि राणा जी कुछ कह सकें रत्नसिंह तपाक से उठ खड़ा हुआ और बोला—"मामा जी! विक्रम और उदय दोनों मेरे छोटे भाई हैं।

---

*मुजरा—जागीर स्वीकार करने की एक विशेष प्रथा।

जितना हित आप उनका चाहते हैं उससे कम मैं उन्हें प्रेम नहीं करता। मैं उनका कभी विरोध करूँगा -ऐसा विचार तो मैं स्वप्न में भी नहीं कर सकता। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि वे सदैव प्रसन्न रहें और सानन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करें।"

रतनसिंह की बात सुनकर सभी लोग सन्न रह गये। रतनसिंह के औदार्य ने सबको विमोहित कर दिया। सूरजमल आगे कुछ न बोल सके। राणा जी उठे और रतनसिंह की पीठ पर हाँथ रखकर ओज-पूर्ण स्वर में कहा—"यदि तुम्हारे ऐसे उदार शासक मेवाड़ के भावी शासक होंगे तो बप्पारावल के वंश का नाम सदैव जीता जागता बना रहेगा।"

राणा जी के इस आशीर्वाद के साथ ही दरबार समाप्त हुआ।

५०

दरबार समाप्त होने के पश्चात् राणा संग्रामसिंह सीधे अपनी माँ के पास गये। झालारानी अब राजमाता के पद पर विराजमान थी। राणा जी उन्हें बहुत मानते थे। प्रत्येक घटना की सूचना उन्हें दिये बिना नहीं रहते थे। राजमाता का परामर्श हित कर होता था। राणा ज्यों ही राजमाता के कक्ष में पहुँचे त्योंही झुककर चरण स्पर्श किये। राजमाता ने सिर पर हाँथ रख कर आशीर्वाद दिया। प्रसन्नता पूर्वक राणा जी वहां बैठ गये। माता ने स्नेहपूर्ण स्वर में पूछा—"आज कई दिनों के बाद इधर आये ?"

'हाँ, माता जी ! एक काम ही ऐसा आ पड़ा कि आ न सका।"

"ऐसा कौन सा आवश्यक कार्य था जिससे मैं अवगत न थी।"

"इसी से तो अवगत कराने आया हूँ।"

"कहो।"

"आज मैंने दरबार किया था।"

"यह तो मैंने भी सुना है।"

"आपको आश्चर्य हो रहा होगा कि दरबार क्यों हुआ है।"

"नहीं आश्चर्य की कोई बात नहीं। किसी शत्रु के आक्रमण का समाचार सुना होगा। उसी की तैयारी के लिए सेना नायकों से परामर्श करना होगा।"

"नहीं माता जी, दरबार इसलिये हुआ था कि दोनों छोटे राजकुमारों के लिए कुछ भावी व्यवस्था करनी थी।"

"कैसी व्यवस्था?"

"आपके कथनानुसार मैंने रतनसिंह को तो युवराज घोषित कर ही दिया था, इसलिए वही मेवाड़ का भावी शासक होगा।"

"हाँ वह तो है ही।"

"परन्तु यह सोचकर कि भविष्य में कोई संघर्ष न उठ खड़ा हो। मैंने रणथम्भौर की जागीर दोनों के नाम लिख दी।"

"यह तुमने क्या कर डाला बेटा ?"

"क्या कोई त्रुटि हो गई माता जी ?"

"हाँ बेटा ! त्रुटि नहीं महान त्रुटि हो गई है।"

"क्यों ?"

"तुम एकता के महत्व से भली भांति परिचित हो। इसी शक्ति के सहारे तुमने राज्य की सीमा इतनी बढ़ा ली है और अनेक युद्धों पर विजय भी प्राप्त की। आज उसी को अपने हांथों से छिन्न-भिन्न करना प्रारम्भ कर दिया है।"

"उसमें छिन्न-भिन्न होने की क्या बात है ?"

"है क्यों नहीं ? रणथम्भौर का मेवाड़ के भावी शासक के हांथ से निकल जाना क्या अच्छा समझते हो ?"

"रतनसिंह की स्वीकृति लेकर ही मैंने ऐसा किया है। मुझे विश्वास है कि वह अपने भाइयों के साथ शालीनतापूर्ण व्यवहार करेगा।"

"यह उसकी सौजन्यता है कि उसने जान-बूझ कर अपनी वस्तु दे दी। उसने तुम्हारे कार्य में बाधा डालकर अवज्ञाकारी पुत्रों की कोटि में नहीं आना चाहा, इसीलिए उसने ऐसा किया है; परन्तु भविष्य के लिए यह बड़ी राजनैतिक भूल है।"

"परन्तु माता जी आगे चलकर ये सब आपस में लड़ते हैं।"

"तो क्या समझते हो कि अब नहीं लड़ेंगे ?"

"आशा तो नहीं है।"

"अपनी ही भाँति सबको समझते हो जो छोटे भाइयों के लिए राज्य छोड़ कर भाग गये थे ? क्या तुम्हारे भाइयों में संघर्ष नहीं हुआ था। भूल गये वे दिन जब पृथ्वी तुम्हारी जान लेने पर उतारू था। क्या तुमने उसके साथ कोई अनुचित व्यवहार किया था ?"

"नहीं।"

"तो फिर कैसे आशा करते हो कि इनमें भावी सँघर्ष नहीं होगा और सभी मिल जुलकर रहेंगे। होगा अवश्य होगा। राज सुख के लिए मनुष्य रक्त के सम्बन्धों को भूल जाता है। यह कार्य ऐसा किया है जिसने लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होने की सम्भावना है। कदाचित इसमें कर्मवती का हाथ रहा होगा ?" राजमाता राणा की ओर देखने लगीं।

राणा चुप थे।

"क्यों चुप क्यों हो, बोलो न।"

"उसी की इच्छा से ऐसा हुआ है।"

"वह तो पहले ही जान गई थी कि यह उसी का कार्य होगा। वह

भला कब सहन कर सकती थीं कि तुम्हारी दूसरी रानी का पुत्र मेवाड़ का भावी शासक हो। उसने क्षुद्र स्वार्थ के लिये कितना अनर्थ कर डाला—वह नहीं समझ सकेगी।"

राणा जी सिर नीचा किये हुये बैठे थे। मन्द स्वर में बोले—

"तो फिर माता जी जो होना था सो हो गया। अब क्या हो ?"

"मुझे मेवाड़ का भावी जीवन असुरक्षित प्रतीत होता है। प्रत्येक कार्य के लिये बहुत सोच बिचार की आवश्यकता है।"

"सामने युवराज रतनसिंह आता हुआ दिखाई दिया। राजमाता ने उसकी ओर देख कर कहा—"आओ बेटा रतनसिंह, आओ।"

"रतनसिंह चरण स्पर्श के पश्चात् बैठ गया। राजमाता ने उसकी ओर देखते हुये पूँछा—"तुमने भी नहीं बताया कि दरबार क्यों होने जा रहा है ?"

"माता जी ! कौन कोई शुभ कार्य था जो मैं आपको सूचित करता।"

राणा जी की ओर उन्मुख होकर राजमाता ने कहा—"देखा ! यह भी जानता है कि यह कार्य अनुचित रहा।"

"यदि तुम जानते थे कि यह कार्य अनुचित है तो फिर तुमने स्वीकृति क्यों दे दी ?" संग्रामसिंह ने पूँछा।

"मैं जानता था कि आप इस कार्य को सम्पादन करना चाहते हैं। मैं नहीं चाहता था कि आपकी इच्छा के विरुद्ध मैं कुछ कहूँ।"

"अब कैसे कह रहे हो ?"

"उसके विरुद्ध कह मैं अब भी कुछ नहीं रहा हूँ, केवल यह बताना चाहता हूँ कि आज से मेरे दोनों भाई मुझे दूसरी ही दृष्टि से देखेंगे। आपने इस कार्य द्वारा उनके मस्तिष्क में यह बात भर दी कि मैं उन का शुभ चिंतक नहीं।"

"अगर तुम अपने कर्तव्य पथ पर डटे रहोगे तो वे इस भावना को कभी हृदय में न लायेंगे।"

"ऐसा हो सकना असम्भव है। मैं तो युवराज पद भी त्यागने को तैयार हूँ। केवल आपकी आज्ञा भर चाहिये।"

"खैर! अब मैं तुमसे यही चाहूँगा कि तुम ऐसा कोई भी कार्य न करना जिससे तुम्हारे भाइयों को कष्ट हो। उनके मंगल का सदैव ध्यान रखना।"

"आपके ये बचन मैं आजीवन स्मरण रखूँगा।"

"धन्य हो बेटा—धन्य हो। मेवाड़ को तुम जैसे शासक की ही आवश्यकता है।"

राणा जी इसके पश्चात् उठकर चले गये। राजमाता ने कहा—"बेटा रतनसिंह।"

"हाँ, माता जी।"

"बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है।"

"क्यों माता जी?"

"राजवंश में भेद उत्पन्न हो गया है। अपने-पराये की भावना ने जन्म ग्रहण कर लिया है। स्वार्थान्ध व्यक्ति अविवेकी हो जाता है। उसमें भले बुरे को समझ सकने की क्षमता नहीं रह जाती। वह ऐसे भी कार्य करने में आगा-पीछा नहीं सोचता जो अनिष्टकारी होते हैं।"

"माता जी? मुझे भी इन बातों का कुछ-कुछ आभास होने लगा है।" जब छोटी माँ के पास चरण स्पर्श करने जाता हूँ तो वह उतनी प्रसन्न होकर आशीर्वाद नहीं देती जितनी पहले होती थी। मेरा युवराज होना सबकी आँखों का कांटा बना हुआ है।"

"शासक का जीवन पथ कण्टकाकीर्ण है। प्रत्येक अड़चनों, विरोधों

का सामना करना पड़ता है ।"

"जब शासक होने के पूर्व ही स्वजनों ने मुझे शत्रु समझ लिया है, तो शासक बनने के पश्चात् तो ये लोग फूटी आँखों देखना भी न पसन्द करेंगे ।"

"इन सब बातों की चिन्ता तुम न करो। यह तो सब होता ही रहता है। मानव में यदि दुर्बलतायें न होतीं तो उसका जीवन अत्यन्त सुखी होता। यदि वह अन्य की उन्नति देखकर ईर्षा की अग्नि में न जले तो अकल्याण की सम्भावना ही न रहे। यदि दूसरों के अधिकारों को बलपूर्वक धूर्तता से हड़पने की कोई चेष्टा न करे तो अशान्ति का भय कभी न रहे ।"

"माता जी ! मैं कभी नहीं चाहता कि मेरे द्वारा किसी को कष्ट पहुँचे ।"

"यही तो प्रत्येक मानव का वास्तविक धर्म है ।"

"लेकिन प्रचलित धर्म कुछ और ही है ।"

"वह सब स्वार्थ-पूर्ति का साधन है । जिसे हम भ्रमवश धर्म समझ बैठे हैं वही सारे अधर्मों की जड़ है ।"

"तो फिर उसका विरोध क्यों नहीं होता ?"

"इसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि इनका उखाड़ फेंकना कोई सरल कार्य नहीं है । इसके लिये किसी अत्यन्त बलशाली महापुरुष की आवश्यकता है ।"

"क्या मैं यह कार्य नहीं कर सकता ?"

'क्यों नहीं कर सकते ? तुम्हीं से तो मुझे आशा है, परन्तु इसके लिए ज्ञान की बड़ी आवश्यकता होती है ।" राजमाता बाहर की ओर जाते हुये एक व्यक्ति की ओर संकेत करके—"देखो ! वह तुम्हारे गुरूजी तुम्हारे कक्ष की ओर जा रहे हैं । जाओ, मन लगाकर पढ़ा करो ।"

रतनसिंह ने राजमाता की चरणरज ली और चला गया ।

५१

इब्राहीमलोदी राजपूतों द्वारा दुबारा पराजित होने पर अत्यन्त बिक्षुब्ध हो उठा । मुनीम खां ने युद्ध का पूरा विवरण दिया । जब सम्राट को यह ज्ञात हुआ कि हुसेन खां ही उसकी पराजय का कारण है, तब उसके क्रोध की सीमा न रही और हुसेन खाँ को बुलवाकर दरबार में उसका अपमान किया । हुसेन खां अत्यन्त आत्मसम्मानी व्यक्ति था । वह अपमान सहन न कर सका और तत्क्षण दरबार से उठ कर चल दिया ।

हुसेन खां के जीवन का यह प्रथम अवसर था जब कि उसे किसी के द्वारा अपमानित होना पड़ा था । वह अपने कक्ष में लेटा हुआ अपनी वर्तमानावस्था पर विचार कर रहा था । विचारों की आँधी उसके मस्तिष्क को झकझोरे डाल रही थी । एक-एक करके अपमान में कहे गये शब्द मस्तिष्क में आते और रुककर बिच्छू के समान डंक मारकर पीड़ा पहुँचाते । वह रह-रह कर तिलमिला उठता, परन्तु उस अवस्था से मुक्त होने का कोई मार्ग न सूझता । उसने मदिरा की सुराही उठाई, उसे प्याले में उड़ेला और ज्योंही मुँह से लगाया त्योंही दौलत खाँ ने दूर से ही टोका —"यह क्या कर रहे हो हुसेन खाँ ?" हुसेन खां का मदिरा पूरित प्याला वहीं का वहीं रुक गया । उसने दृष्टि उठाकर सामने देखा, दौलता खाँ तब तक पास आ चुका था । उसने प्याला हाँथ से लेते हुये कहा—"यह क्या शराब पी रहे हो ?"

"हाँ ।"

"किसलिये ?"

"खो जाने के लिये ।"

"क्या अपने को बरबाद करने को अमादा हुए हो ?"

"अब बरबादी में क्या कसर रह गई है ?"

"तुम गलती कर रहे हो । मेरी तरफ देखो । कितनी बार जलील किए जाने पर भी मैंने दरबार का जाना नहीं छोड़ा ।"

"क्यों ?"

"मैं बदला लेना चाहता हूं । और शायद तुम भी तौहीनी का बदला लेना चाहते होगे, मगर अपने को कमजोर समझ कर ऐसा कर रहे हो ।"

"हाँ दोस्त यही बात है । मैं बादशाह से बदला लेने की ताकत अपने में महसूस नहीं करता । कहाँ वह हिन्दुस्तान का बादशाह और कहां मैं एक अदना सिपाही । मैं भला उससे बदला कैसे ले सकता हूँ ?"

"अपने को अकेले न समझो हुसेन खां । मैं तुम्हारा दोस्त हूँ । दोस्त का फर्ज मैं बाखूबी समझता हूँ ।"

"मगर तुम्हीं क्या कर सकते हो ?"

"अगर एक चिनगारी पूरे जंगल को जला कर खाक कर सकती है तो क्या हम तुम दोनों मिलकर दिल्ली की हुकूमत नहीं बदल सकते ?"

"कहीं ख्वाब तो नहीं देख रहे हो ?"

"ख्वाब नहीं हकीकत है हकीकत । तुम्हें मेरे ऊपर यकीन नहीं हो रहा है शायद ।"

"ऐसी नामुमकिन बात पर भी कहीं यकीन किया जा सकता है ?"

"आज जो नामुमकिन मालूम देती है कल वही हकीकत बन कर रहेगी ।"

"हो सकता है कि कल हमो लोग बादशाह की नाराजगी के शिकार हो जाय ।"

"आप तो पूरी तरह हिम्मत हार चुके हैं ।

"क्या करू ? कोई रास्ता भी तो नजर नहीं आरहा है ?"

"उसकी फिक्र तुम क्यों करते हो ? यह तो मेरे बायें हाँथ का खेल है । एक ऐसी तरकीब है जिससे लाठी भी न टूटे और साँप भी मर जाये ।"

"वह क्या ?"

"वह है बाबर का हमला ।"

"क्या मतलब ?"

"बाबर दिल्ली की सल्तनत को हड़पना चाहता है ।"

"यह तो कोई नई बात नहीं हुई ? वह कई बार हमले कर चुका है, मगर हमेशा नाकामयाब रहा ।"

"मैं मानता हू कि वह हर बार नाकामयाब रहा, मगर यह भी कभी सोचा है कि क्यों ?"

"हमारे बादशाह की ताकत का वह सामना न कर सका ।"

"बात दुरूस्त है, मगर इसे इस तरह क्यों नहीं कहते कि उसे हम लोगों के सबब से ही हर बार मुँह की खानी पड़ी । अगर हमलोग सुलतान का साथ न दें तो क्या वह बाबर का सामना कर सकेगा ?"

हुसेन खाँ शान्त था ।

"आप जरा सोचिये; हमलोगों का सुलतान का साथ न देने का मतलब होगा सुलतान की ताकत का कम होना और बाबर की ताकत का बढ़ना ।"

"तो आपके कहने का मतलब है कि आप बाबर को हिन्दुस्तान पर हमला करने के लिये आमन्त्रित करेंगे ?"

"जी हाँ ।"

"लेकिन उससे हमें क्या फायदा होगा ?"

"फायदा क्यों नहीं होगा। सुलतान को अपने किये का नतीजा भुगतना पड़ेगा और क्या समझते हो कि बाबर सुलतान की तरह लालची है ? नहीं, उसकी दरियादिली अभी आपने देखी नहीं है। देखी तो मैंने भी नहीं है, मगर मैंने सुना है कि जो कुछ भी वह लूट में हासिल करता है वह सब अपने सिपाहियों में बाँट देता है। मुझे पूरा यकीन है कि जरूर हमलोगों के हाँथ कोई न कोई जागीर लगेगी।"

"मगर भाई, यह काम है बड़े खतरे का।"

"खतरा तो जिन्दगी के हर कदम पर है। आज ही आप क्या कम खतरे का सामना करके आये हैं ? अगर कोई दूसरा सुलतान होता तो बिना हाँथी के पैरों के नीचे कुचलवाये न मानता।"

"भाई, खूब सोच-समझ कर ही कोई कदम उठाना अच्छा होगा।"

"मैंने खूब सोच लिया है। उसके हर पहेलू पर या कई महीने से माथा पच्ची कर रहा हूँ। मुझे तो हर तरह से यह रास्ता दुरूस्त नजर आ रहा है।"

"तो फिर बढ़ाओ कदम जो कुछ होगा देखा जायगा। अगर नाकामयाब रहे तो इस जिन्दगी से वह मौत भी बेहतर होगी।"

"ऐसा क्यों ख्याल करते हो ? हमें कामयाबी जरूर हासिल होगी। तुम समझते होगे कि क्या मैं अकेले ही ऐसा करना चाहता हूँ ?"

"और कौन है आपके साथ ?"

"मेरे साथ हैं आलम खाँ ....।"

"क्या कहा ? सुलतान के चाचा आलम खाँ भी सुलतान के खिलाफ हैं ?"

"जी हाँ, यह सब उन्हीं की साजिस है।"

तो क्या उन्होंने ही आपको मेरे पास भेजा है ?"

"हाँ।"

"कहीं इसमें भी कोई चाल न हो ?"

"इसमें क्या चाल हो सकती है ?"

'क्यों नहीं हो सकती ? सुलतान की खिलाफत करने वालों का पता लगाने की इससे बढ़िया तरकीब और क्या हो सकती है ?''

''आप का मिजाज भी वहमी हो गया है। हर चीज को वहम की नजर से देखना अच्छा नहीं होता। ऐसे आदमी का दिल और दिमाग दोनों ही कमजोर होता है। वह सही चीज को भी वहम के कारण कर सकने में आगा पीछा किया करता है और मौके से कभी भी फायदा नहीं उठा पाता। अमाँ ! आलम खाँ तो खुद ही सुलतान बनना चाहते हैं और वह इधर कई दिनों से बाबर से मिलने के लिये तैयारियां भी कर रहे हैं।''

''तो क्या बाबर से मिलने वह खुद जायेंगे ?''

''जी हाँ, वह खुद ही जा रहे हैं और शायद कल सुबह रवाना भी हो जायेंगे।''

''तब तो वहम की कोई गुंजाईश नहीं।

''वही तो मैं भी कहता हूँ, मगर आपको यकीन हो तब न।''

''ऐसी बात नहीं है, भाईजान। मेरे दिल में जो चोर था वह मैंने आप के सामने खोल दिया।''

''खैर यह तो अच्छा ही हुआ। किसी तरह का कोई शक या वहम नहीं रहना चाहिये। आगे फिर अल्लाह मालिक है। जो कुछ होगा देखा जायगा।''

''वाह ! आप तो अब वही बात कहने लगे जो अभी तक मैं कह रहा था। आगे क्या होगा। कामयाबी हासिल होगी। अफगानों की तलवार जिधर झुक जायेगी उधर ही कामयाबी नजर आयेगी।''

''बस ! यही बात तो मैं आपकी जबान से सुनना चाहता था। अब हमारी कामयाबी को कोई रोक नहीं सकता। इन्सान का किसी बात पर पूरा यकीन कर लेना ही आधी कामयाबी होती है। आपके यकीन को देखकर मैं अपने में दूनी ताकत महसूस कर रहा हूँ।''

"आप मुझे पीछे न पाइयेगा।"

"वह तो मैं जानता हूँ।"

"तो फिर अब मुझे इजाजत दीजिये। आलम की पूरी तैयारी की जिम्मेदारी मेरे ही ऊपर है। उन्हें रुखसत करने के बाद हमारी आपकी फिर बातें होंगी।"

"मैं भी एक बार आलम चाचा से मिलना चाहता हूँ।"

"बड़ी खुशी से। जब चाहो मिल लो।"

"मगर आप तो अभी कह रहे थे कि वह कल सुबह तक दिल्ली छोड़ देंगे।"

"हाँ, ऐसा मुमकिन है। आज ही क्यों न किसी वक्त मिल लीजिये?"

"अगर आप और कहीं न जा रहे हों तो आपके साथ ही क्यों न चला चलूँ।"

"इससे बेहतर क्या है। मैं सीधे उन्हीं के पास जा रहा हूँ। आइये रास्ते भर बातें भी होती चलेंगी।"

हुसेन खां ने वस्त्रों में यत्किंचित परिवर्तन किया। कमर में तलवार बांधी और दौलत खां के साथ चल दिये।

५२

आलम खां बाबर से मिलने सीधे काबुल पहुँचा। बाबर इधर महीनों से काबुल में डेरा डाले हुये था और उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। आलम खां के आने की सूचना उसे प्राप्त हुई। वह बैठा अपने अन्तरंग सरदारों के साथ विचार विमर्ष कर रहा था। आलम खां को वहीं बुलवा भेजा। आलम खां ने भीतर प्रवेश किया और उचित अभिवादन किया। बाबर ने उसका उचित सम्मान किया और

उपयुक्त आसन बैठने के लिये दिया। बाबर ने उड़ती हुई दृष्टि आलम खाँ पर डालते हुये प्रश्न किया—"तो जनाब दिल्ली-सुलतान के दरबार से तशरीफ ला रहे हैं ?"

"जी हाँ मैं सुलतान का चाचा हूँ।"

"ओह ! तो यह कहिये कि आप सुलतान के खानदानी हैं।"

"जी हाँ ! तो फिर हुक्म फरमाइये, बन्दा आप की ही खिदमत करने को तैयार है।"

"इसी उम्मीद को तो लेकर आया हूँ।"

"तो फिर आप को नाउम्मीद नहीं होना पड़ेगी।"

"मैं आप की मदद चाहता हूँ।"

"किस तरह की मदद ?"

"फौजी।"

"किस वास्ते ?"

"सुलतान को तख्त से उतारने के लिये।"

"तो यह कहिये कि आप खुद सुलतान बनना चाहते है ?"

"जी हाँ।" आलम खाँ ने सिर झुका कर उत्तर दिया।

"आप सुलतान की फौजी ताकत से तो बाखूबी वाकिफ होंगे ही"?

"जी हाँ, सुलतान की ताकत इस वक्त मेरे कब्जे में है।"

"क्या मतलब ?"

"सुलतान की फौजी ताकत अफगान सरदार हैं। और वे सब इस वक्त मेरी मदद के लिये तैयार हैं।"

"मगर ऐसी क्या बात हो गई कि सारे अफगान सरदार सुलतान की खिलाफत करने पर अमादा हो गये हैं ?"

"सुलतान का अफगानों के साथ बुरा व्यवहार करना ही इस खिलाफत का सबब है।"

"मगर आप को पूरा यकीन है कि वे अफगान सरदार आप का

साथ देंगे ?"

"जी हाँ, मैं ही उनका सरदार हूँ। मेरे एक इशारे पर वे सब अपनी जान तक देने में पीछे नहीं हटेंगे।"

"वाकई में ऐसा है भी या आप सिर्फ ख्याल ही करते हैं ?"

"ख्याल ही नहीं करता हूँ बल्कि दरअसल वहाँ हालत ही ऐसी है कि अफगान सुलतान के खून का प्यासा है। आये दिन किसी न किसी को सुलतान के गुस्से का शिकार होना पड़ता है।"

"गुस्से में शिकार होने से आप का क्या मतलब ?"

"जो आम दरबार में सुलतान हर एक की बेइज्जती कर डालता है।"

"मारता, नहीं ?"

"नहीं, एक बहादुर सरदार के लिये बेइज्जत होना क्या किसी तरह मरने से कम है ?"

"साँपों को छेड़ कर छोड़ देता है।"

"जी हाँ, आपने ठीक ही फरमाया। हर अफगान साँप की तरह फुफकार रहा है। मौका मिलते ही हजारों फन एक ही साथ सुलतान को डसने के लिये तैयार हो जायेंगे।"

"तो फिर आप मेरे पास सिर्फ फौजी ताकत की मदद लेने के लिये आये हैं ?"

"जी हां, आप को इस मदद के बदले में मैं पूरा पंजाब का सूबा दे दूँगा।"

"मैं आप की मदक किसी लालच में आकर नहीं करना चाहता। मुझे आपने अपनी मदद के काबिल समझा-यह मेरे लिये कौन कम खुशी की बात है। आप मुझे दोस्त की निगाह से देखते हैं। और मैं दोस्ती का फर्ज अदा करना चाहता हूँ।"

"आप का अहसान मैं जिन्दगी भर न भूलूँगा।"

"इसमें अहसान की क्या बात ? मेरे जवान कई महीनों से पड़े-

पड़े आराम कर रहे हैं। सब आलसी हुये जा रहे हैं। तलवारों में जंग लगने की नौबत आ रही है। इसी बहाने कुछ हिलने–डुलने को मिल जायगा।"

"मगर जनाब सिर्फ हिलने-डुलने से ही काम नहीं चलेगा। डटकर मुकाबिला करना होगा। और हो सकता है कि दिल्ली पर कब्जा करने के बाद एक और ताकत का सामना करना पड़े।"

"वह कौन है ?"

"वह है राजपूती ताकत।"

"जिसका सरदार राणा संग्राम सिंह है ?"

"जी हाँ।"

"क्या वह बहुत ताकतवर है ?"

"उसकी ताकत को आप क्या पूँछते हैं ? वह तो आफत है आफत। जिधर बढ़ता है तूफानी लहरों की तरह बढ़ता है। उसका सामना करना तो मौत का सामना करना होता है। सुलतान ने दो बार उस पर चढ़ाई की, मगर दोनों बार मुँह की खानी पड़ी।"

"तो क्या कोई भी हिन्दुस्तानी बादशाह उसका सामना नहीं कर सकता ?"

मेरे ख्याल से तो शायद ही कोई हो जो राजपूतों का सामना कर सके। उनकी मार के आगे बड़े-बड़े ताकतवर सरदारों के छक्के छूट जाते हैं और भाग खड़े होते हैं।"

"ऐसी भी ताकत अभी हिन्दुस्तान में मौजूद है ?"

"हिन्दुस्तान में सब से बड़ी कमजोरी है उनकी फूट। अगर वे एक होकर रहें तो उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। और राजपूत तो अजीब किस्म की जाति है। वैसे तो वे सब अलग–अलग दिखाई देते हैं मगर जंग के मौके पर सब एक हो जाते हैं। उस वक्त उनकी कितनी ताकत बढ़ जाती है–इसका अन्दाजा लगाना मुश्किल हो जाता है।"

"अगर वे इतने ताकतवर हैं तो दिल्ली पर हुकूमत क्यों नहीं करते ?"

"यही सोचकर तो मुझे भी ताज्जुब होता है कि इतनी ताकत रखते हुये भी दिल्ली पर हुकूमत क्यों नहीं करना चाहते ?"

"हो सकता हैं कि वे इतने ताकतवर न हों जितना आप लोग समझते हैं।"

"जी नहीं, ऐसी बात नहीं। उन्हें अपनी ताकत पर जरूरत से ज्यादा भरोसा है। वे जो चाहते हैं हासिल कर लेते हैं।"

"तो फिर मुझे यह जाति आलसी मालूम देती है।"

"हो सकता है कि आपका खयाल दुरुस्त हो।"

"अगर ऐसी बात है तो फिर उन्हें हराना कोई बड़ी बात नहीं।"

"मगर आज तक उन्हें कोई हरा नहीं सका है।"

"खैर, जब उनका सामना करना पड़ेगा तब देखा जायगा। अभी से उनसे खौफ खाने से क्या फायदा ?"

"जी हाँ, मैंने तो योंही जिक्र कर दिया। उनसे हमें खौफ खाने का कोई सबब ही नहीं।"

बाबर कुछ विचार करने लगा। सभी साथ में बैठे हुये सरदार शान्ति-पूर्वक दोनों के मध्य होने वाली वार्तालाप सुन रहे थे। कोई कुछ भी अपनी ओर से नहीं कह रहा था। बाबर ने अपना मौन भंग करते हुये पूँछा – "आपतो वहां पूरी तैयारी कर ही चुके होंगे ?"

"जी हां वहाँ की तैयारी में कोई कसर नहीं है। बस, सिर्फ आप की मन्जूरी की ही देर है।"

"तो फिर आप मुझे तैयार ही समझिये। मेरे सिपाही हमेंशा तैयार रहते हैं। मैं तो अपने मुल्क से लड़ने के लिये ही निकला हूँ।

मुझे किसी तैयारी की जरूरत नहीं।"

"तो फिर आप कब तशरीफ ला रहे हैं ?"

"जब कहिये अगर आप कहें तो आपके साथ ही कूँच कर दूँ।"

"मेरे साथ ठीक नहीं रहेगा। मैं आज ही दिल्ली के लिए रवाना हो जाऊँगा। आप एक दो दिन ठहर कर चल दीजियेगा।"

"तब तक आप भी वहाँ पहुँचकर सब ठीक-ठाक कर लेंगे।"

"जी हाँ।"

"मियाँ अजीज ! आप इनकी खातिर का इन्तजाम करिये।" अपने एक सैनिक को सम्बोधित करके बाबर ने कहा।

अजीज खां उठ खड़े हुये और डेरे के बाहर होने के लिये पैर बढ़ा दिये।

"आप इनके साथ जाइये। कई दिन के थके होंगे। आराम करिये जाकर।" बाबर ने दौलत खाँ से कहा।

दौलत खाँ उस सरदार के पीछे-पीछे चल दिये।

५३

बाबर अपने ग्यारह हजार सिपाहियों की एक छोटी सी सेना के साथ काबुल से चल पड़ा और नदी, नाले, बन उपत्यकायें आदि पार करता हुआ खैबर की घाटी को पार करके भारत की सीमा पर पहुँचा। वह और आगे बढ़ा। उसे सामने पानीपत का मैदान दिखाई दिया। उसने अपनी सेनायें वहीं रोक दीं। सेना की गति रुक गई। तम्बू गड़ गये। मोर्चाबन्दी प्रारम्भ हो गई। स्थान देखा-भाला जाने लगा। बाबर सैनिक व्यवस्था में विशेष चतुर था। किले और नगर के बाईं ओर उसने खाइयां खुदवाईं। उन खाइयों के उस पार बड़े-बड़े पेड़ कटवा कर रखवा दिये ताकि शत्रु उन्हें आसानी से पार न कर सके। उनके इसी ओर अपनी आग उगलने वाली बड़ी-बड़ी भयंकर तोपें लगवा दीं। उन तोपों के पीछे बालू के भरे हजारों बोरे लगवा दिये। बोरे इस प्रकार चुनवाये कि एक प्रकार से दीवार सी बन गई। युद्ध के समय बाबर इसी दीवार की आड़ से गोलियाँ चलवाता था।

बीस अप्रैल पन्द्रह सौ छप्पन ई० को इब्राहीम लोदी की सेनायें भी पानीपत के मैदान में आ डटीं। दोनों ओर के सैनिक आगे बढ़े। हाँथों में चमचमाती तलवारें थीं। और आगे बढ़े। मार-काट प्रारम्भ हो गई। सैनिक कट-कट कर गिरने लगे। पृथ्वी रक्त से लाल हो उठी। घनघोर युद्ध होने लगा। बाबर के सैनिक बराबर गोलियों की बौछार कर रहे थे। इब्राहीम के एक गोली लगी और वह धराशायी हो गया। उसके गिरते ही उसके सैनिकों में भगदड़ मच गई। बाबर को

अप्रत्याशित विजय प्राप्त हुई। बाबर आगे बढ़ा। आगे दिल्ली उसके स्वागत के लिये खड़ी थी। उसने उसका स्वागत स्वीकार किया और दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

विजयोपरान्त दौलत खाँ बाबर के पास गया। उसने बाबर से कहा—"मैं तख्त पर बैठ रहा हूँ। तब तक आप ऊपरी इन्तजाम करिये।" बाबर ने कहा—"अभी क्या जल्दी है। वह तो अपने कब्जे में हो ही गया है। जब चाहियेगा बैठ जाइयेगा। अभी तो बहुत से काम इससे भी जरूरी करने हैं। उन्हें कर डालिये। दिल्ली का तख्त उठकर कहीं चला थोड़े ही जायेगा।"

दौलत खाँ बाबर की बातों में आ गया। बाबर ने उसे अनेक ऐसे कार्य सौंप दिये जिनके लिये दीर्घ समय की आवश्यकता थी। वह उन कार्यों में व्यस्त हो गया। बाबर ने दिल्ली का सम्पूर्ण खजाना खुले हाँथों लुटाया। प्रत्येक सैनिक को एक अच्छी-खासी दौलत प्राप्त हुई। सभी सैनिक प्रसन्न थे।

बाबर अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। उसने चारो ओर दृष्टि दौड़ाई। आगरा निकट था। उस पर अधिकार करना उसने सरल समझा। वह आगरे की ओर बढ़ गया। आगरा में उसका किसी ने खुल कर विरोध न किया और सरलता से बिना लड़े ही वह उसके अधिकार में आगया। आगरे का खजाना सम्पत्ति से भरा था। उसने सारी सम्पत्ति निकलवाई और उदार हो खूब बाँटी। प्रत्येक सैनिक मालो-माल हो रहा था। पैसा क्या नहीं करा सकता है सब अफ़गान सरदार दौलत खाँ की अपेक्षा बाबर को चाहने लगे। उन्हें दौलत खाँ से इतनी दौलत प्राप्त होने की आशा न थी जितनी बाबर से प्राप्त हो सकी थी। अतएव बाबर की उदारता ने उन्हें बाबर का प्रशंसक बना दिया। बाबर ने अवसर से लाभ उठाया। उसने उचित अवसर समझ कर अपने को शाहंशाह घोषित कर दिया।

बेचारे दौलत खाँ के सपने अधूरे रह गये। उसके हाँथ कुछ भी न लगा। वह हाँथ मलता रह गया।

———

५४

महाराणा अभी तक यही समझे बैठे थे कि तैमूरलंग और चगेज-खाँ की तरह बाबर भी लूट-पाट कर चला जायेगा, परन्तु बाबर ने जब अपने को आगरा विजय के उपरान्त शहंशाह घोषित कर दिया तो राणा की आँखों से परदा हटा। वह चौंक पड़े। उनके प्रमाद ने अवसर खो दिया। राणा जी इधर कुछ पारिवारिक समस्याओं में ऐसे उलझ गये थे कि राजनैतिक समस्याओं के प्रति उदासीनता होती चली गई। उन्होंने तत्क्षण राजपूतों को एकत्र किया और उन्हें सम्बोधित करके बोले—"वीर मित्रों ! मनुष्य यदि शक्तिशाली है तो दुर्बल भी है। उसकी दुर्बलतायें ही उसकी असफलता के प्रति उत्तरदायी होती हैं। इधर एक बहुत बड़ी त्रुटि हो गई, जिसके लिए सम्भवत: जीवन भर पश्चाताप करना पड़े और फिर भी हम उसके घाटे को पूरा न कर सकें।"

सभी राजपूत सरदार आश्चर्यान्वित होकर एक दूसरे की ओर देख रहे थे। राणा जी ने जिज्ञासा उत्पन्न कर दी थी। राणा जी यह भली-भांति जानते थे कि लोहे पर चोट तभी करनी चाहिए जबकि वह गर्म हो। उन्होने आगे कहा—"दिल्ली और आगरा बाबर के हाथ में जा चुके हैं। भारतवर्ष लोदियों के हाँथ से निकल कर मुगलों के हांथ में जा रहा है। और हम सो रहे हैं। बड़ी लम्बी नींद ली है हमने। यदि अब भी तलवार पकड़ कर रण के लिए तैयार नहीं होते तो शीघ्र ही हम मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता खो देंगे।"

समस्त एकत्र राजपूत जोश में आकर एक स्वर से बोल उठे। "हम सब लड़ने को तैयार हैं।"

राजपूतों की तुमुल ध्वनि वायुमण्डल में गूँज उठी। प्रत्येक सैनिक में जोश उत्पन्न हो गया। रणस्थल के वीभत्स दृश्य नेत्रों के समक्ष नर्तन करने लगे। पारस्परिक वार्ता चलने लगी। राणा ने पुनः उन्हें शान्त करते हुये कहा—"आप लोगों ने आज तक जितने युद्ध किये हैं उन सबों में और इसमें एक बहुत बड़ा अन्तर है।"

"वह क्या ?" एक राजपूत उठ खड़ा हुआ।

"अभी तक शासकों से नहीं लड़ना पड़ा है। जिनसे लड़ना पड़ा है वे सब शासकों के टुकड़ों पर पलने वाले रहे हैं। इस बार हमें एक ऐसे व्यक्ति का सामना करना है जो स्वयं आगे-आगे लड़ता है। इसके लिए हमें विशेष व्यवस्था करनी पड़ेगी।"

"आज्ञा दीजिये।" उसी राजपूत ने कहा।

"खण्डार पर सर्व प्रथम अधिकार करना होगा। खण्डार सैनिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। वहां इस समय मकन का बेटा हसन शासक है।"

"उस पर अधिकार करने की क्या आवश्यकता ? वह तो जागीर आपकी ही दी हुई है।"

"यह ठीक है, परन्तु हो सकता है कि वह आसानी से हमें प्रविष्ट न होने दे।"

"तो हम उसकी ईंट-ईंट बजा देंगे।"

"शाबाश, साथियो ! मुझे आप लोगों की शक्ति पर भरोसा है। तो फिर इस कार्य को जितना शीघ्र हो सके कर डालना चाहिए।"

राजपूत तैयार होने लगे। राणा की अध्यक्षता में एक सुसज्जित वाहिनी खण्डार की ओर चल पड़ी। खण्डार बहुत दूर नहीं था। थोड़े

समय की यात्रा में ही सैनिक खण्डार की सीमा पर जा पहुँचे। सर्व प्रथम राणा ने हसन को समझाने की चेष्टा की परन्तु हसन न माना और कुछ देर के लिए दोनों ओर से तलवारें निकल पड़ीं। कुछ सैनिक धराशायी हो गये। हसन अन्ततोगत्वा राणा की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

राणा जी वहीं रुककर शक्ति एकत्र करने लगे। चारो ओर से राजपूत आ-आकर मिलने लगे।

५५

बाबर दिन भर कार्य करने के उपरान्त बैठा विश्राम कर रहा था। संध्या का समय था। सूर्य अस्त हो चुका था। पक्षी अपने नीड़ों की ओर लौट रहे थे। तरदबेग और कुचबेग ने कक्ष में प्रवेश किया। बाबर ने उन्हें देखते ही समाचार जानने के लिए उत्सुकता व्यक्त की—"कहो बेग, क्या खबर लाये हो ?"

"हुजूर, बयाना का जागीरदार राजी नहीं हुआ।"

"क्यों, क्या जंग करना चाहता है ?"

"जी हां, वह जंग के लिये बिलकुल तैयार है।"

"उसे समझाने की कोशिश नहीं की थी ?"

"हुजूर उसे समझाता-समझाता मैं हार गया, लेकिन वह एक ही धुन का आदमी है। वह अपने फैसले से जरा भी न हिला।"

"ऐसा मालूम पड़ता है कि उसके साथ भी जंग करना पड़ेगा।"

"इसमें क्या शक है, मगर उसे हम आसानी से फतेह कर लेंगे।"

"कैसे ?"

"उसके छोटे भाई आलम खाँ को अपनी तरफ मिला लिया है।"

"शाबाश, बेग शाबाश। यह तुमने कमाल कर दिया। वाकई में इस वक्त ऐसे ही सख्स की जरूरत है। तो फिर उससे उसकी फौजी ताकत का अन्दाजा लगाया है या नहीं ?"

"जी हाँ, उसकी फौजी ताकत हमारी ताकत से बहुत कम है।"

"आलम खाँ धोखा तो नहीं देगा ?"

"ऐसा मुमकिन नहीं। उसकी भाई के साथ जरा भी नहीं बनती। वह जागीर को हड़पना चाहता है। जैसे ही मैं बयाना पहुँचा वैसे ही वह खुद आकर हम लोगों से मिलने आया।"

"तब तो यकीन किया जा सकता है। अगर दोनों भाइयों को ही एक दूसरे से लड़ा दिया जाय तो वह तैयार हो जायेगा ?"

"इस बाबत भी मैंने उससे बात की थी, मगर उसका कहना है कि वह अकेले नहीं लड़ेगा। हमारे साथ वह लड़ने को तैयार है।"

"खैर, ऐसा ही सही। अब तुम लोग जल्दी से फौज तैयार करो और बयाना की ओर सुबह तक जरूर कूँच कर दो।"

"इतनी जल्दी करने की क्या जरूरत है ?"

"ऐसे कामों में हम जितनी ही देर करते हैं, दुश्मन उतना ही ताकतवर होता जाता है।"

"तो फिर जितने सिपाही हमारे पास हैं वही काफी होंगे।"

"ऐसी गलती न कर बैठना कहीं। दुश्मन को कभी अपने से कमजोर मत समझो। ज्यादा से ज्यादा फौजी ताकत साथ में लेकर जाओ।"

"जो हुक्म।" कहकर तरदबेग और कुचबेग चल दिये।

———

५६

राणा जी खण्डार की विजय के उपरान्त वहीं रुककर राजपूतों को एकत्र करने लगे। चारो ओर अपने अदमी दौड़गये। सब को सूचित किया। एक-एक करके राजपूत शक्ति संगठित होने लगी। राणा जी किले में बैठे कुछ सरदारों को आवश्यक आदेश दे रहे थे। इसी बीच सूरजमल ने प्रवेश किया। सूरजमल के आते ही समस्त क्रिया कलाप को जैसे लकवा मार गया। सूरजमल तीव्र गति से आये थे। अतएव उनकी साँस भी उसी गति से चल रही थी। उन्होंने बैठते हुये कहा—"महाराज जी! गजब हो गया।"

"क्या हो गया ?" राणा जी ने आश्चर्य में आकर प्रश्न किया।

"बयाना हाँथ से निकल गया।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"मैं ठीक ही कह रहा हूँ।"

"किसके अधिकार में चला गया ?"

"बाबर के।"

"परन्तु कैसे ? वह तो अपनी दी हुई जागीर थी। क्या निजाम खाँ उससे मिल गया ?"

"जी नहीं। बाबर के आदमी उसके पास संधि का प्रस्ताव लेकर आये थे, लेकिन उसने उनका प्रस्ताव ठुकरा दिया और युद्ध करने का

निश्चय किया। वह बयाना बाबर को नहीं सौंपना चाहता था' लेकिन उसका भाई आलम खाँ विभीषण निकला। वह शत्रु से मिल गया। उसके शत्रु से मिल जाने के कारण निजाम खाँ ने अपने को कमजोर पाया। जब बाबर फौज लेकर चढ़ा तो निजाम खाँ ने सन्धि कर ली।"

"बयाना का हाँथ से निकल जाना तो बहुत ही बुरा हुआ। राज-नैतिक दृष्टि से उसका बड़ा महत्व है। इससे तो बाबर हमारी सीमा तक आ गया।"

"मैंने आप से पहले ही कहा था कि बयाना को अधिकार में कर लेना चाहिए, लेकिन आप ने ध्यान ही नहीं दिया।" सूरजमल ने कहा।

"बयाना को तो मैं अपनी दी हुई जागीर समझता था। सोचता था कि वह तो जब चाहूँगा ले लूँगा, लेकिन मुझे आश्चर्य इस बात पर हो रहा है कि निजाम खाँ ने मुझे इसकी सूचना क्यों नहीं दी?"

"मेरा बिचार है कि वह आपकी आधीनता भी स्वीकार नहीं करना चाहता होगा।"

"मेरे आधीन तो वह पहले ही था। मेरा ही बनाया हुआ वह जागीरदार था। मेरी ही आधीनता से इनकार?"

"इस समय छोटा से छोटा जागीरदार भी अपने को सम्राट समझता है। वह भी अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता होगा।"

"मैं नहीं सोचता था कि बाबर नाकाबन्दी करने में इतनी शीघ्रता करेगा।"

"वह आपकी भांति अवसर की प्रतीक्षा नहीं करता। उसे जो कुछ करना होता है शीघ्र ही कर डालता है।"

"शीघ्रता का काम शैतान का होता है।" राणा जी ने कहा।

"ऐसा वे ही लोग कहते हैं जिन्हें अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं होता। सोच-विचार के पर्दे से आलस्य पर तो पर्दा नहीं डाला जा सकता। हमारी आँखें तब खुलती हैं जब बन्द आंखों की अवस्था में एक बड़ी ठोकर लगती है। गया हुआ 'बयाना' अब बिना युद्ध किये प्राप्त नहीं होने का।"

"गया तो जाने दो। गई हुई वस्तु के लिए मैं चिन्ता नहीं करता। मुझे अपनी तलवार पर भरोसा है, अपने सरदारों की शक्ति पर विश्वास है और पूर्वजों का आशीर्वाद हमारे साथ है। हम बयाना के बिना ही युद्ध करेंगे और शत्रुओं को मातृ-भूमि से खदेड़ कर मानेंगे।"

सूरजमल जी आवश्यकता के अधिक बोल चुके थे। आवेश में मनुष्य बोलता चला जाता है। क्या बोल गया—इसका भान तो उसे तब होता है जब वह बोलने के पश्चात उस पर बिचार करता है। राणा जी ने भी सूरजमल की अत्यन्त कटु बातों का बुरा नहीं माना क्योंकि उनमें सत्य निहित था। उन्होंने अनुभव किया कि उन्हीं के प्रमादवश बयाना अधिकार के बाहर हो गया। उन्हें अपने दीर्घसूत्री स्वभाव पर पश्चाताप हो रहा था, परन्तु आत्मविश्वास की कमी नहीं थी। उन्हें अब भी अपने शौर्य पर आत्मविश्वास था। वह जानते थे कि बयाना शत्रु के हाथ में चले जाने पर भी शत्रु उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। सूरजमल को शान्त देखकर मन्द वाणी में कहा—

"अब पछताये होत का जब चिड़ियाँ चुग-गई खेत। सूरजमल-जी! जो कुछ होना था सो हो गया। अब उसके लिये पश्चाताप करने से क्या लाभ?"

"नहीं महाराज! मुझे उसके लिये पश्चाताप नहीं हो रहा है। मुझे तो दुःख इस बात का हो रहा है कि आवेश में आकर मैंने ऐसी-ऐसी बातें कह दीं जो मुझे नहीं कहनी चाहिए थीं।"

"तुमने सत्य पर प्रकाश डाला है। सत्य बात कहने में किसी को संकोच नहीं करना चाहिये।"

"फिर भी किसी के सम्मान को तो नहीं भूल जाना चाहिये।"

"सम्मान को ध्यान में रखकर सत्य का उद्‌घाटन नहीं किया जा सकता। यदि तुम्हें इस समय यह ध्यान रहता कि तुम मेवाड़ के शासक महाराणा संग्रामसिंह के समक्ष बोल रहे हो तो तुम मेरे दीर्घ-सूत्री स्वभाव तथा अकर्मण्यता पर प्रकाश न डाल पाते।"

"महाराज जी ! आप जैसा कर्मठ शासक तो आज तक मेवाड़ की गद्दी पर कभी बैठा ही नहीं।"

"तुमने अपने इस वाक्य में सत्य की हत्या की है। मुझे ऐसा शिष्टाचार पसन्द नहीं, जिसके कारण सत्य बात खुल कर न की जा सके। मुझे तुम्हारा वही वास्तविक स्वरूप अधिक पसन्द है।" कहकर राणा जी मुस्करा उठे और सूरजमल का हाँथ पकड़ कर खड़े होते हुये कहा—"चलो, हमें शत्रु का सामना करने के लिये तैयारी करनी चाहिये।"

५७

बयाना हाँथ से निकल जाने के कारण राणा को बाबर की अपेक्षा निजाम खाँ पर अधिक क्रोध आ रहा था। उनके तन में आग लग गई थी। प्रतिशोध की ज्वाला हृदय में धधक रही थी। मन में यह सोचते हुये कि सब विधर्मी दया के पात्र नहीं होते राणा जी अपने दल-बल सहित बयाना की ओर बढ़ने लगे। बयाना कुछ ही दूर रह गया था कि राणा जी ने डेरे लगवा दिये और अश्वरोहियों को किला घेर लेने की आज्ञा दी। आज्ञा सिरोधार्य करके अश्वरोही उड़ चले। बात की बात में किले को चारो ओर से घेर लिया। राजपूतों का यह अचानक आक्रमण था। न कोई किले के भीतर आ सकता था और न बाहर। जो जहाँ था वहीं रुक कर रह गया। बाबर के गुप्तचर भी न निकल सके। राजपूतों द्वारा डाला गया डेरा अत्यन्त सुदृढ़ था। उसका तोड़ना नाकों चने चबाने थे। कुछ सैनिक असफल प्रयास के लिये किले के बाहर आये परन्तु राजपूतों ने उन्हें शीघ्र ही मौत के घाट उतार दिया। राजपूत क्रोध में फुफकार रहे थे। बयाना की सेना राजपूतों के लिये तप्त तवा में कुछ बूंद पानी के समान थी। उसका उत्साह अप्रतिम था। उत्साह क्रोध को बढ़ावा दे रहा था। राजपूतों की मार भयंकर थी। कोई टिक न रहा था। बयाना के सैनिकों की जान आफत में फँसी थी। उन्हें कुछ करते धरते न बन रहा था। अन्ततोगत्वा वे तलवार लेकर निकल पड़े। संगर खाँ राजपूतों का कुछ समय तक बहादुरी के साथ सामना करता रहा और अनेक राजपूतों

को मौत के घाट उतारता हुआ स्वयं बलिदान हो गया। संगर खाँ के गिरते ही किताबेग प्राणों का मोह छोड़कर भयंकर युद्ध करने लगा। युद्ध सरगर्मी के साथ चल रहा था। एक राजपूत सैनिक ने भाला फेंक कर मारा मगर किताबेग बचा गया। वह उसकी ओर लपका और तलवार का भरपूर हाँथ मारा. परन्तु राजपूत कम खिलाड़ी न था। ये थे सूरजमल। सूरजमल ने किताबेग के नौकर की तलवार छीन ली और किताबेग से भिड़ गये। किताबेग भी आक्रमण बचाता और आक्रमण करता। सूरजमल वीभत्स रूप धारण किये हुये थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो साक्षात् काल ही हो। किताबेग कब तक लड़ता। आखिरकार सूरजमल ने किताबेग के कन्धे पर वार किया। वार अचूक था। वह भागा। ऐसा भागा कि फिर कभी उसने राजपूतों का सामना करने का साहस न किया। बयाना पर पुनः राणा जी का अधिकार हो गया।

———

५८

किताबेग खाँ भागता हुआ सीधे आगरे पहुँचा। किताबेग को लहू-लुहान देखकर बाबर का हृदय शंका से भर गया। उसने घोड़े से उतरते हुये पूँछा—"यह क्या हुआ ?" किताबेग घोड़े से उतर कर खड़ा नहीं हो सका और पृथ्वी पर गिर पड़ा। बड़ी कठिनाई के साथ वह इतना ही कह पाया 'व ऽ ऽ ऽ या ऽ ऽ न ऽ ऽ रा ऽ ऽ ज ·········।' किताबेग के प्राण पखेरू उड़ गये। बाबर एक क्षण के लिये द्रवित हो उठा, परन्तु शीघ्र ही वह सम्हला और उसकी मुट्ठी बँध गई। दांत पीसता हुआ बोला—"इन राजपूतों ने तो उठना-बैठना हराम कर दिया है।" इस समय तक आस-पास के काफी लोग एकत्र हो गये थे। बाबर ने किताबेग की लाश को उनके हवाले किया और स्वयं किले की ओर चल दिया। किले में फैले हुये सैनिकों को बाबर ने एकत्र किया और उन्हें सम्बोधित करके कहा—"साथियों ! हम लोग काफी अरसे से हिन्दुस्तान में जंग करते आ रहे हैं। जो भी सामने आया उसको मुहँ की खानी पड़ी। अब हमारा सिर्फ एक दुश्मन रह गया है·········।"

"वह कौन है ?" एक तुर्क सरदार ने पूछा।

"राणा संग्रामसिंह।"

"राजपूतों का सरदार ?"

"सरदार क्यों-वह तो उनका बादशाह है। उसे भी अपनी ताकत पर बड़ा घमण्ड है। वह किसी को कुछ नहीं समझता। अभी-अभी

कितावेग ने अपनी जिन्दगी की आखिरी सांस में बताया कि बयाना पर राजपूतों का फिर कब्जा हो गया है और हमारे साथियों को उन्होंने मौत के घाट उतार दिया है।"

"हम अपने साथियों की मौत का बदला लेंगे।"

"शाबाश साथियों! हमें आप लोगों से यही उम्मीद है, मगर यह कोई मामूली दुश्मन नहीं है। उस पर फतह पाने के लिये हमें काफी तैयारी करनी पड़ेगी।"

"हमारे साथ अफगान सरदार भी तो काफी हैं।"

"लेकिन मुझे उन पर यकीन नहीं।"

"उन्होंने तो आप को हिन्दुस्तान बुलाया। आप का जंग में साथ दिया। इब्राहीम लोदी उन्हीं की बदौलत हराया जा सका मगर आप ।"

"हां, मैं अब भी उन पर यकीन नहीं करता। वे हमारा अभी भी विरोध कर सकते हैं।"

"आप ने उन्हें खिलअत दी। दौलत दी। बड़ी-बड़ी आमदनी के परगने दिये फिर भी वे आप का ·······।"

हां, वे फिर भी हमारी खिलाफत कर सकते हैं। उनकी तमन्नाओं का खात्मा खिलअत या दौलत पा जाने से नहीं हो जाता। उन्होंने हमें हिन्दुस्तान इसलिये नहीं बुलाया था कि मैं लोदी को हटा कर उन्हीं पर हुकूमत करने लगूँ। वह तो समझते थे कि मैं लोदी को हराने में उनकी मदद करूँगा और लूट-मार कर लौट जाऊँगा। वे चाहते थे हिन्दुस्तान की बादशाहत। उनकी यह तमन्ना न पूरी हो सकी। उसे वे अपने दिल में छुपाये हमारी ताकत के सामने सिर झुकाये हैं। किसी भी वक्त वे हमारे दुश्मन से मिलकर हमें धोखा दे सकते हैं।"

"अगर ऐसा कभी भी हो गया तो हमारी ताकत काफी कम हो जायगी?"

हां, हमारी ताकत का एक बड़ा हिस्सा वे लोग भी हैं।"

"तब तो हमें ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहिये जिससे वे हमारी खिलाफत करने को तैयार हो जाँय।"

"हाँ, मैं भी नहीं चाहता कि ऐसा हो। हमें यह बात भी नहीं कहनी चाहिये थी कि वे कभी हमारी खिलाफत कर सकते हैं; क्योंकि जो अभी मदद करने को तैयार हैं, वे भी हमारे दुश्मन बन जायेंगे।"

बाबर के चातुर्य का तुर्क सरदारों पर प्रभाव गहरा होता जा रहा था। बाबर का अत्यन्त गम्भीर व्यक्तित्व उनकी दृष्टि का केन्द्रबिन्दु था। बाबर ने अपनी चिंता व्यक्त करते हुये कहा—"इन राजपूतों से हमें जरूर जंग करना पड़ेगा। ये कभी भी हम पर हमला कर सकते हैं। हमें चुप-चाप नहीं बैठना चाहिये।"

"हम लोग ही क्यों न हमला कर दें?"

"मैं भी यही सोचता हूँ कि हमला कर दूँ, मगर इस वक्त हमारी ताकत कम है।"

"अपनी ताकत तो अफगान सैनिकों को भरती करके बढ़ाई जा सकती है।"

"मैं सोचता हूँ कि बाहर के किलों की हिफाजत के लिये जो तुर्क सरदार फैले हुये हैं, उन्हें बुलाकर उनकी जगह पर अफगानों को भेज दिया जाय।"

"वाह जहाँपनाह! यह तरकीब बहुत बेहतर रहेगी। इससे दो फायदे होंगे। एक तो हमारी ताकत बढ़ेगी और दूसरे अफगान सरदार भी खुश हो जायेंगे।"

इस वार्तालाप को सभी शान्ति पूर्वक सुन रहे थे कि यकायक एक सरदार ने हुमायूँ के आने की सूचना दी।

"क्या शाहजादा हुमायूँ?"

"जी हाँ जहाँपनाह।" सिर झुका कर सरदार ने कहा।

"कहाँ?"

"वह आ रहे हैं।" एक ओर को संकेत करके सरदार ने कहा।

सब उसी ओर देखने लगे। हुमायूँ की चढ़ती उमर थी। यौवन फूटा पड़ रहा था। भड़कीली पोशाक थी। दोनों ओर कमर में तलवारें लटक रही थीं जो शीघ्रगति से चलने के कारण हिल रही थीं। हुमायूँ ने कुछ दूर पूर्व ही झुककर बाबर का अभिवादन किया। बाबर ने मुस्करा कर हुमायूँ का स्वागत किया और पास खींच कर पीठ पर हाँथ फेरते हुये पूँछा — 'जौनपुर में तो कोई खास बात नहीं हुई ?"

"नहीं तो, ऐसी तो कोई बात नहीं हुई। क्या आपको ऐसी कोई खबर मिली है ?" हुमायूँ ने आश्चर्य चकित होकर पूँछा।

"नहीं; मैंने यों ही जानना चाहा। आज कल चारों ओर लोगों की निगाहें हमारे ही ऊपर तो लगी हुई हैं।"

"सो तो हैं ही ; मगर लोदी के खतम हो जाने के बाद अब हिन्दुस्तान में किस की मजाल जो आपकी तरफ नजर उठाकर भी देखे।"

"ऐसा मत सोचो शाहजादे। अभी एक और ताकत है जिसे हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी ताकत कहा जाता है।"

"वह कौन है ?"

"मेवाड़ का बादशाह राणा संग्रामसिंह।"

"उसकी क्या मजाल जो आपका सामना करे। अगर उसमें आप से ही टक्कर लेने की ताक़त होती तो उसने न जाने कब दिल्ली सुलतान को फतह कर लिया होता।"

"वाकई में बात तो शाहजादे तुम्हारी काबिले तारीफ है। मगर ऐसा न करने का असली सबब क्या है सो तो मैं नहीं बता सकता, मगर हमारे बचे हुये सिपाहियों ने उनके सिपाहियों की काफी तारीफ की है।"

"क्या कहीं सामना हो गया उनसे ?"

"हाँ, मैंने उनके बयाना पर कब्जा कर लिया था। उन लोगों ने कुछ दिन के बाद उस पर चढ़ाई कर दी और मेरे सिपाहियों को मार भगाया।"

"तब तो मालूम होता है कि उन लोगों से जंग करनी पड़ेगी।"

"यही मैं भी सोचता हूँ। मैं तो तुम्हें बुलवाना चाहता था, लेकिन तुम खुद ही आ गये?"

"हुक्म।"

इन्हीं राजपूतों का सामना करने के लिये काफी जोरदार तैयारी करनी है।"

"आप फिक्र न करिये। मैं आ गया हूँ। अपने साथ कुछ सिपाही भी लाया हूँ।"

"चलो, यह अच्छा ही किया। अच्छा, अब तुम जाओ कुछ देर आराम कर लो। थक गये होगे।"

बाबर का आदेश पाकर हुमायूँ अन्दर की ओर चला गया।

६०

बयाना पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात सांगा ने एक विशाल शक्ति संगठित की और आगे बढ़े। बसावर बयाना से दस मील दूर था। वहाँ आकर सांगा ने डेरा डाल दिया और नाका बन्दी प्रारम्भ कर दी।

अब्दुल अजीज बाबर का मुख्य सेनापति था। उसे नित्यप्रति राणा सांगा के विषय में वीरता पूर्ण बातें सुनने को मिलतीं थीं। वह उन्हें सुनकर आग बबूला हो उठता। एक दिन वह बाबर के सामने पहुँचा और आवश्यक शिष्टाचार के पश्चात् बोला—"आजकल राजपूत बसावर में होली मना रहे हैं। इस वक्त अगर उन पर हमला कर दिया जाय तो फतह आसानी से हासिल हो जायेगी।"

"राजपूतों से लड़ना जितना आसान तुम समझते हो उतना है नहीं। राजपूत सरदार एक कान से पायलों की झंकार सुनता है और दूसरे से रणभेरी। उन्हें बेहोश मत समझो। उन्हें तैयार होने में देर नहीं लगती। इस वक्त वे पूरी तैयारी में हैं। जब तक उनका सामना करने के लिये पूरी तैयारी न कर लोगे तब तक उन पर हमला करना खतरे से खाली नहीं है।"

"पता नहीं आप क्यों राजपूतों से खौफ खाते हैं। जितनी बार मैंने हमला करने को कहा आप हर बार यही जबाब दे देते हैं।"

"तुमने बहुत सी लड़ाइयां जीती हैं। तुम्हें अपनी ताकत पर गरूर होना लाजमी है तुम दुश्मन की ताकत से वाकिफ नहीं हो, इसीलिये ऐसा कह रहे हो।"

"मैंने अपने कुछ जासूस बसावर में भेज दिये हैं जो हमें वहाँ की खबर दिया करते हैं। उन लोगों के मुताबिक तो ऐसा मालूम होता है कि अगर हम इस वक्त हमला करदें तो बिना लड़े ही हमें फतह हासिल हो जायेगी।"

"कहीं इस धोखे में न आ जाना। मुझे भी अपने जासूसों से यह पता चल गया है कि वे अपनी ताकत दिन पर दिन बढ़ाते जा रहे हैं।"

"तब तो और भी जल्दी करनी चाहिये।"

"क्यों ?"

"जितनी ही देर होगी उतनी ही उनकी फौजी ताकत बढ़ेगी।"

"लेकिन उस डर से हम अपनी कम ताकत से हमला तो नहीं कर सकते।"

अब्दुल अजीज ने समझ लिया कि बाबर किसी भी तरह आक्रमण करने को तैयार नहीं हो सकते, अतएव उसने प्रसंग को आगे न बढ़ाने के उद्देश्य से कहा—"हमला तो पूरी तैयारी होने पर ही करना चाहिये।"

कुछ क्षण वहां रुककर वह वापस लौट आया। उसके निवास स्थान पर पहले से ही एक गुप्तचर बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। अब्दुल अजीज के आते ही वह उठ खड़ा हुआ और शिष्टाचार का पालन किया। गुप्तचर की ओर दृष्टपात करते हुये अब्दुल अजीज ने कहा—"कहो, हुसेन क्या खबर लाये हो ?"

"मौका बढ़िया है।"

"किस चीज का मौका ?"

"हमले का।"

"नहीं करना है हमला। मत लाया करो ऐसी खबरें।" अब्दुल अजीज ने झुँझला कर कहा।

"क्या गुस्ताखी हो गई सरकार ?"

"कोई गुस्ताखी-उस्ताखी नहीं। जाओ अपना काम करो।"

हुसेन ने समझ लिया कि अब्दुल अजीज का पारा गरम है। उसने चुप हो जाना ही उचित समझा। थोड़ी देर तक वहीं बैठा रहा। अब्दुल अजीज भी बैठे कुछ सोचते रहे। कुछ समयोपरान्त मौन भंग करते हुये पूँछा—"कब आये बखावर से ?"

"सीधे आप ही के पास चला आ रहा हूँ।"

"हुसेन मियां दरअसल बात यह है कि मैं अभी-सीधे शहन्शाह के पास से आ रहा हूँ। उनसे मैंने तुम्हारे कहने के मुताबिक राजपूतों पर हमला करने को कहा, परन्तु वह तैयार नहीं हो रहे हैं।"

"क्या ख्याल है उनका ?"

"वह राजपूतों से बहुत खौफ खाये हुये मालूम देते हैं। वह किसी भी कीमत पर इस वक्त हमला करने को तैयार नहीं हो रहे हैं।"

"मगर हुजूर, मैं आप को क्या ब्यान करूँ। वहाँ का रंग देख कर तो मालूम ही नहीं होता है कि वे लोग जंग के लिये तैयार हैं। सभी राग रंग में मस्त हैं। खूब गाना—बजाना होता है। चैन की बंसी बजती है। इस वक्त वे दूसरी ही दुनियां में रह रहे हैं। हुजूर, ऐसा वक्त बार-बार नहीं आता है।"

"मगर जब जहाँपनाह ही नहीं तैयार हैं तो फिर मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"हुसेन, आप अपने को ऐसा क्यों समझते हैं ? आप क्या नहीं कर सकते ? आप की ही ताकत पर तो शहन्शाह ने इतनी लड़ाइयाँ लड़ी हैं। आप अपनी बहादुरी पर यकीन क्यों नहीं करते ?"

"मुझे तो पूरा यकीन है, मगर शहन्शाह की मर्जी के खिलाफ कोई भी कदम उठाना खतरे से खाली नहीं है।"

"मगर सरकार आपसे शहन्शाह की मर्जी के खिलाफ कदम उठाने को कौन कहता है। क्या शहन्शाह राजपूतों को शिकस्त नहीं देना चाहते हैं ?"

"चाहते क्यों नहीं ?"

"तो फिर यही आप करिये।"

"क्या मतलब ?"

"आप हमला कर दीजिये।"

"शहन्शाह की मर्जी के खिलाफ ?"

"जी नहीं, यह हमला उनकी मर्जी के खिलाफ नहीं होगा, बल्कि वह खुश होंगे ?"

"कैसे ?"

"यह सुनकर कि आपने राजपूतों पर हमला कर दिया है।"

"क्यों ?"

"क्यों कि आप राजपूतों को मैदाने-जंग में शिकस्त दे ही देंगे। बिना तकलीफ उठाये उनकी परेशानी दूर हो जायेगी। तब आप जानते हैं वह आप पर कितने खुश होंगे ?"

"कितने खुश होंगे ?"

"जितने इस समय आप हैं।"

"तरकीब तो अच्छी है, मगर कहीं कामयाबी न मिली तो फिर

कहीं के न रहेंगे।"

"हुजूर इस वक्त आपकी तकदीर का सितारा बुलन्द है। आप जिस काम में हाँथ डालेंगे कामयाबी ही कामयाबी हासिल होगी। फिर क्या कोई आपको हिन्दुस्तान का वजीरे आजम बनने से रोक सकता है ?"

अब्दुल अजीज पर अपना रंग चढ़ता हुआ समझकर हुसेन ने पुनः कहा—"इसके अलावा जो दौलत आपके हाँथ लगेगी उससे आप जिन्दगी भर ऐश कर सकेंगे। मैं अभी देखकर आ रहा हूँ। राजपूतों के पास वेशुमार दौलत है। सोने-चाँदी के थालों में तो उनके नौकर-चाकर खाना खाते हैं। हीरे-जवाहरातों के ढेर के ढेर मैंने अपनी आँखों से देखे हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि इतनी दौलत इन लोगों के पास कहां से आगई। अगर आप सोने की चिड़िया हिन्दुस्तान का शिकार करना चाहते हैं तो फिर इस मौके को हाँथ से न जाने दीजिये।"

हुसेन का अब्दुल अजीज पर ऐसा रंग चढ़ा कि उसके विजय के स्वप्न साकार हो उठे। अपनी आन्तरिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुये उन्होंने कहा—"हम ऐसा हमला करेंगे कि शहन्शाह को मालूम भी न होने पायेगा और जब हम एक दम से आकर उनको फतह की बात सुनायेंगे तो वह इतना खुश होंगे कि बस फिर मेरी पाँचो अगुलियाँ घी में होंगी।"

"तो फिर वक्त जाया न करिये। दुश्मन पर फौरन शेर की तरह अकस्मात टूट पड़िये। वह सुख की नींद सो रहा है। जगने के पहले ही उसका सफाया कर दीजिये।" हुसेन ने और उत्साहित किया।

"अब्दुल अजीज अपनी सेना लेकर आगे बढ़े। घोड़े हवा के समान उड़ने लगे। जवानों में दुगुना उत्साह था। प्रत्येक सोच रहा था कि राणा को भुनगे के समान मसल देंगे। इसी कल्पना की तरंगों में

बहते चले जा रहे थे। धीरे-धीरे खानवा का मैदान आ गया।

राणा जी को शत्रु के आगमन का समाचार ज्ञात हो गया। वह तो पहले से ही तैयार बैठे थे। राजपूत भी आगे बढ़ने लगे। खानवा के मैदान की धूल आकाश में छाने लगी। चारों ओर भाग दौड़ दिखाई दे रही थी। शक्ति प्रदर्शन का अवसर आ गया। वीरों ने वीरों को ललकारा। ललकार एक-दूसरे को चुनौती थी। वीर को भला चुनौती कब अस्वीकार हो सकती है। जिस प्रकार चुम्बक को देखकर लोहा उसकी ओर आकर्षित होता है उसी प्रकार शत्रु को देखकर वीर सैनिक आकर्षित होने लगे। नौजवानो के आगे-आगे तलवारें बढ़ रहीं थी। मिल गये जवान। तलवारें टकरा गईं। मार-काट होने लगी। भुट्टे के समान सिर कट-कट कर गिरने लगे। पकी खेती की भाँति नौजवान कट रहे थे। पृथ्वी पर वीर गिर-गिर कर तड़फने लगे। घोड़ों की हिनहिनाहट, वीरों की चीत्कार ध्वनि और अस्त्र-शस्त्रों की झंकार वातावरण को अत्यन्त भयावह बनाये हुये थे। तुर्क कट रहे थे। राजपूत काट रहे थे। राणा अब्दुल अजीज को खोजते हुये उसके पास पहुँच गये। अब्दुल अजीज वीरों को काट-काट कर गिरा रहा था। राणा को सामने देखते ही वह उनकी ओर लपका और आक्रमण कर दिया। राणा जी उसके वार को बचा गये। उसने पुनः तलवार का भरपूर हाँथ मारा राणा जी पुनः बच गये। वह वार-बार वार कर रहा था और राणा जी एक हाँथ से बचने की चेष्टा कर रहे थे कि इसी बीच मे राणा जी ने एक ऐसा हाँथ मारा कि अब्दुल अजीज की तलवार हाँथ से छूटकर गिर पड़ी और वह भी घोड़े से नीचे आ गया। वह चारो ओर से घिर गया, परन्तु पुनः तलवार हाथ में आते देर न लगी और वह फिर रक्षात्मक युद्ध करने लगा। एक ओर को वह भागने लगा। इस घेरे के बाहर निकलने पर उसने देखा कि कहीं-कहीं तुर्क सरदार लड़ रहे हैं। अधिकांश धराशायी हो गये हैं। वह घबड़ाया और भागने ही वाला था कि अचानक तुर्क सरदारों की एक विशाल

सेना आ गई। बचे-खुचे तुर्कों में पुनः जान आ गई। मुहिबअली अपनी सेना लेकर बाईं ओर से और खलाकी दाहिनी ओर से राजपूतों पर टूट पड़े। मुल्लाहुसेन की सेना में अधिक सिपाही थे। उसने सामने से आक्रमण किया। राजपूत इस नयी आफत से एक क्षण के लिये घबड़ा गये परन्तु राणा की ललकार ने उन्हें पुन: उत्साहित किया। और घनघोर युद्ध करने लगे। शत्रुओं को बढ़-बढ़ कर मारने लगे। तुर्क मरने के लिये लड़ रहें थे। राजपूत मातृ-भूमि की रक्षा के लिये युद्ध कर रहे थे। तुर्की सरदार अपने जौहर का प्रदर्शन कर रहे थे। परन्तु उनके प्रदर्शन को देखने वाला कोई न था। राजपूतों की मार ने तुर्कों को पुन: शिथिल कर दिया। भयंकर मार के सामने उनका टि-कना कठिन हो गया। मुल्ला न्यामत और मुल्ला दाऊद आदि के गिरते ही तुर्कों के हौसले पस्त पो गये। मुहिब अली के गिरते ही तुर्कों में भग-दड़ मच गई। सब भागने लगे। गिरते परते भाग रहे थे। भागते हुये मुहिब अली को उठा ले गये। राजपूतों ने तुर्कों को खदेड़ा। इस खदेड़ने की स्थिति में सैकड़ों तुर्क मारे गये। दो मील तक खदेड़ने के उपरान्त राजपूत सरदार लौट पड़े।

राणा जी खानवा का मैदान छोड़ कर बसावर लौट आये।

६१

बाबर युद्ध का परिणाम जानने के लिये बेचैन था। वह सैनिकों को लेकर स्वयं युद्धस्थल में जाने की चेष्टा कर रहा था। थोड़ी ही देर में पराजित सैनिक भागते हुये दिखाई दिये। बाबर ने उन्हें देखा और मन में उनकी पराजय का आभास पा लिया। पास आकर ज्यों ही अब्दुल अजीज ने बाबर को सामने देखा त्योंही सिर झुका कर खड़ा हो गया। बाबर से उसकी मनोव्यथा छिपी न रह सकी। बाबर ने अनजान बनते हुये कहा —"कहिये अजीज साहब जंग का क्या हाल है ?"

अजीज चुप थे।

"यह खामोशी क्यों नजर आ रही है ?"

"जहाँपनाह.................।"

"हाँ,हां, बोलो रुक क्यों गये ?"

"हमें मैदाने जंग छोड़ना पड़ा।"

"यह क्यों नहीं कहते कि भागना पड़ा।" अगर जान इतनी प्यारी थी तो लड़ने ही क्यों गये थे ? यहीं आराम करते पड़े–पड़े। अब तुम लोग यहीं आराम से रहो और मैं जाता हूँ।" कह कर बाबर मुड़ा और घोड़े पर सवार होकर चल दिया। जिस सैनिक टुकड़ी को अभी वह अपने साथ ले जाने को तैयार कर रहा था वह भी उसके संकेत पर उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़ी। बाबर क्रोध से पागल हो उठा। उस

का घोड़ा हवा से बातें कर रहा था। उसमें प्रतिशोध की भावना अपरिसीम थी। वह मरने या मारने के लिये निकल पड़ा था। इसे जीवन का अन्तिम युद्ध समझ कर वह आगे बढ़ रहा था। खानवा पहुँचते उसे देर न लगी। उसने वहां देखा चारों ओर तुर्क सरदार कटे हुये पड़े हैं। पृथ्वी लाशों से पट गई है। एक भी इन्च भूमि कहीं भी दिखाई नहीं दे रही है। जंगली मांसाहारी जीव आ-आकर मृतक शरीरों से मांस नोच-नोचकर अपना उदर भर रहे हैं। जहाँ अभी कुछ समय पूर्व हलचल मची हुई थी वहाँ इतनी ही देर में श्मशान का दृश्य उपस्थित हो गया। बाबर एक ओर खड़ा अपने तुर्क सरदारों की यह दुर्दशा देख रहा था। उसके हृदय के क्रोध ने वेदना का स्थान ग्रहण कर लिया। राजपूत सैनिक जा चुके थे। बाबर कुछ समय तक वहीं किंकर्तव्य विमूढ़ की स्थिति में खड़ा रहा। अनेक विचार उसके मस्तिष्क में आते परन्तु स्थिरता किसी को न मिलती। कुछ समयोपरान्त उसने अपनी मनः स्थिति सम्हाली और लौट पड़ा। साथ में गये हुये सैनिक भी पीछे हो लिये परन्तु बाबर ने रास्ते भर किसी से भी बात नहीं की।

बाबर ने सीकरी आते ही अपने प्रमुख सेना पतियों को आमन्त्रित किया। एक-एक करके सभी एकत्र होने लगे। एक छोटी-मोटी सभा सी प्रतीत होने लगी। बाबर ने गम्भीर स्वर में कहा—"खानवा का मैदान तो खाली पड़ा है। वहाँ लाशों के अलावा कुछ भी नहीं है।"

"तो क्या राजपूत वापस लौट गये ?" साश्चर्य मेहदी ख्वाजा ने कहा।

"बसावर में होंगे।" अब्दुल अजीज ने कहा।

"अगर कहीं पीछा करते हुये यहां तक आ जाते तो हम लोगों को सीकरी भी छोड़ना पड़ता।"

"हम उनका डटकर मुकाबला करते।" बाबर ने कहा।

"राजपूतों की मार से हमारे सैनिक इतना डर गये हैं कि अब वे उनसे लड़ना ही नहीं चाहते।"

"उनकी मार भी तो बड़ी गजब की होती है।"

"आप मार की बात कहते हैं। वहाँ तो हर राजपूत राणा जान पड़ता है। उनमें डर नाम की तो जैसे कोई चीज ही नहीं है।"

"बड़ी खौफनाक जाति है।"

"यह तोसब है, मगर अब क्या होना चाहिए?" बाबर काफी देर तक बैठे अपने सेनापतियों की बातें सुनते रहे। जब कोई निष्कर्ष निकलने का ढंग न देख पड़ा तो पूँछ बैठे।

सब मौन थे।

"मैं आप लोगों की राय जानना चाहता हूँ।" बाबर ने पुनः दोहराया।"

"जहाँपनाह! हम लोग तो आपके नौकर हैं। आप जो हुक्म देंगे उसके ही मुताबिक हम लोग चलेंगे।"

"मैदाने जंग में न कोई मालिक न कोई नौकर। मैं एक दोस्त की हैसियत से आप लोगों की राय जानना चाहता हूँ। आखिरकार आप लोगों की ताकत पर ही तो मैं दुश्मन पर फतह पा सकता हूँ।"

"सुलह कर लीजिये।" अब्दुल अजीज ने कहा।

"सुलह करना ही इस वक्त ठीक रहेगा।" कासिम हुसेन ने भी कहा।

"सुलह के अलावा और कोई रास्ता भी तो नजर नहीं आता है।" अहमद यूसुफ ने कहा।

बाबर ने जब समझ लिया कि उसके सभी सेनापति परास्त हैं तो

उसने अपनी अभिलाषा प्रगट की—"अगर आप लोगों की यही ख्वाहिश है कि सुलह ही कर ली जाय तो मुझे मंजूर है।"

"हुजूर ! अगर जान देने से कुछ फायदा होने की उम्मीद होती तो हम सुलह के लिये आपसे कभी दरख्वास्त न करते।" अब्दुल अजीज ने कहा।

"ठीक है, मुझे आप लोगो की मर्जी के मुताबिक चलना है।" कहकर बाबर उठा और सभा भंग हो गई।

———

६२

महाराणा प्रति-दिन घायल सैनिकों का निरीक्षण करते, उनका हाल चाल पूँछते और शीघ्र स्वस्थ हो जाने का ढाढ़स देते। यह कार्य वह प्राय: दोपहर के समय किया करते। एक-एक घायल सैनिक को वह देखते हुये आगे बढ़ रहे थे कि सहसा एक अनुचर ने सलहदी के आगमन की सूचना दी। सलहदी ने आगे बड़ कर राणा जी को प्रणाम किया। सर्व प्रथम सलहदी को देख कर राणा जी को आश्चर्य हुआ, परन्तु शीघ्र ही चेहरे पर स्वाभाविक मुस्कान लाते हुये पूँछा—"कहो, रायसेन जी तो सानन्द है।"

"अन्नदाता ! आपकी और भवानी की कृपा से वह आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।"

"मैंने उन्हें भी तुर्कों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये सेना में सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित किया था, परन्तु कारण न ज्ञात हो सका

कि वह क्यों नहीं आये। पहले तो मैंने समझा कि सम्भवत: तुर्कों की ओर से लड़ने आयेंगे लेकिन जब खानवा के मैदान में उनके सैनिक दिखाई न दिये तो मुझे कुछ विशेष चिन्ता हुई, लेकिन तुम कहते हो कि वह सानन्द हैं तो फिर कोई बात नहीं।" राणा जी अपने डेरे की ओर बढ़ रहे थे और वार्तालाप कर रहे थे। सलहदी ने उत्तर दिया— "जिस कार्य के लिये आप रायसेन जी को आमन्त्रित करना चाहते थे वह तो स्वत: हो गया ?"

"क्या तात्पर्य ?" बैठते हुये राणा जी ने आश्चर्य प्रकट किया।

"तुर्क बुरी तरह परास्त हो गये हैं। अब वे आपसे नहीं लड़ना चाहते हैं।"

"तुम्हें यह कैसे ज्ञात हुआ कि वे युद्ध नहीं करना चाहते ?"

मैं उन्हीं की ओर से संधि का प्रस्ताव लेकर तो आया हूँ।"

"तुर्कों ने तुम्हें मेरे पास संधि का प्रस्ताव लेकर भेजा है ?"

"जी हाँ।"

"आश्चर्य है कल तक गरजने वाला शेर बिल्ली कैसे बन गया ?"

"महाराज ! आप के सैनिकों की मार ने उनके छक्के छुड़ा दिये। अभी राजपूती जौहर उन्होंने देखा ही कहाँ है ?"

"इतने से ही उनके हौसले पस्त हो गये हैं।"

"हूँ।" राणा जी गम्भीर हो गये। कुछ क्षणों तक बैठे सोचते रहे फिर बोले—मैं अपने साथियों के परामर्श के बिना कुछ भी निर्णय नहीं दे सकता। तुम थक गये होगे। जाकर आराम करो। मैं तब तक अपने सरदारों से कुछ विचार-विमर्ष कर लूँ।"

"राणा जी ने अनुचर के साथ सलहदी को अन्य डेरे में भेज दिया और अपने समस्त प्रमुख सरदारों को बुला भेजा। सभी-एक-एक करके शीघ्र ही एकत्र हो गये, क्योंकि सलहदी के आगमन के कारण से अवगत होना चाहते थे। ज्यों ही राणा जी ने उनके मध्य प्रवेश किया

सभी सम्मानार्थ उठ कर खड़े हो गये। राणा जी उस सम्मान से फल उठे और स्वस्थ हाथ मस्तक तक ले जा कर अभिवादन का उत्तर दिया, तत्पश्चात उन्हीं के मध्य एक ऊँचे आसन पर बैठ गये। सभी सरदारों पर एक विहंगम दृष्टि डालते हुये राणा जी ने कहना प्रारम्भ किया—"सलहदी के आगमन से तो आप लोग परिचित हो ही गये होंगे, परन्तु एक ऐसे कार्य के लिये आया है जिसे सुनकर आप लोग आश्चर्य में पड़ जायेंगे।" राणा जी ने अनुभव किया कि सरदारों की उत्सुकता चरम सीमा का स्पर्श कर रही है। उन्हों ने आगे कहा—'सलहदी तुर्कों की ओर से संधि का प्रस्ताव लेकर आया है। अब आप लोगों की जैसी इच्छा हो वैसा कीजिये।"

,"हमें संधि स्वीकार नहीं।" एक वृद्ध राजपूत ने खड़े हो कर कहा।

"हां, हाँ, हमें संधि नहीं करना है।" एक अन्य सरदार ने कहा।

"हम तुर्कों को देश से बाहर निकालना चाहते हैं।" एक राजपूत ने खड़े हो कर कहा।

"महाराज! इस समय संधि करना उचित न होगा। शत्रु शक्ति-हीन प्रतीत हो रहा है। उस पर आक्रमण कर के हम उसे सरलता पूर्वक देश से खदेड़ सकते हैं।" शान्त भाव से एक वृद्ध राजपूत ने कहा।

"संधि परास्त होकर भी पराजय स्वीकार न करने का बहाना है।" राणा जी के दामाद रायमल ने कहा।

"बेटा, बात तुम्हारी सर्वथा उचित है, परन्तु शरण में आये हुये शत्रु को भी क्षमा करना हमारा धर्म है। क्या हम अपने धर्म से विमुख हो जायेंगे?"

"मगर सलहदी आया है; शत्रु नहीं। अगर तुर्क आते तो यह प्रश्न विचारणीय हो सकता था।" पुनः वृद्ध सैनिक ने गम्भीर हो कर कहा।

राणा जी कुछ बोलना ही चाहते थे, परन्तु उनके पूर्व ही एक नवयुवक राजपूत ने आवेश में आकर कहा—"जिसकी संकट के समय हम सदैव सहायता करते रहे हों और यदि वह हमारे आमन्त्रित करने पर भी न आवे उसे हम शत्रु से कम नहीं समझते।"

"हाँ, हाँ, रायसेन का व्यवहार उचित नहीं रहा।" तपाक से खड़े हो कर एक अन्य नवयुवक ने कहा।

"रायसेन जी यदि हमारी सहायतार्थ नहीं आये तो उनके लिये चिंता नहीं करनी चाहिये। यदि उन्हों ने अपने कर्तव्य की अवहेलना की है तो हम उसका बदला उनके एक राजपूत सैनिक को शत्रु समझ कर तो नहीं ले सकते हैं।" राणा जी ने शालीनता-पूर्ण बात कही।

सभी लोग मौन थे। राणा जी की बात का विरोध कोई न करना चाहता था। बात भी ठीक थी। राणा जी ने मुख्य प्रसंग पर आते हुये कहा—"आप लोगों के एकत्र होने का मुख्य प्रयोजन तुर्कों के साथ संधि है। उसी का निर्णय हमारा लक्ष्य होना चाहिये।"

फिर भी कोई न बोला।

राणा जी ने सूरजमल को सम्बोधित करते हुये कहा—"आप की क्या राय है?"

"मुझे तो रायमल जी की बात ठीक प्रतीत होती है।" सूरजमल ने अपना अभिप्राय व्यक्त कर दिया।

"तो फिर आप लोगों का ही निर्णय तुर्कों के पास भेज दिया जायेगा।" राणा जी कह कर उठ खड़े हुये। सभी लोग अपने-अपने डेरों में चले गये।

———

६३

सलहदी ने बाबर को राजपूतों के निर्णय से अवगत कराया। बाबर को पूर्ण विश्वास था कि संधि के लिये राजपूत अवश्य तैयार हो जायेंगे, परन्तु आशा के विरुद्ध निर्णय सुनकर उसे एक बहुत बड़ा धक्का लगा। अभी तक आशा की एक किरण के सहारे नैराश्य के सागर के तट पर बैठा हुआ सलहदी के उत्तर की प्रतिक्षा कर रहा था। सलहदी के उत्तर ने उसे उस सागर में ढकेल दिया। बाबर की उदासीनता बढ़ गई। वह किसीसे न बोलता। दिन-रात एकान्त में बैठे कुछ विचार किया करता। बाबर की इस चिंतितावस्था से अन्य सभी सैनिक चिंतित थे। जानते थे कि राजपूतों के साथ युद्ध न करना ही बाबर की चिंता का कारण है। चाह कर भी वे बाबर की सहायता नहीं कर पा रहे थे, क्योंकि राजपूतों के साथ युद्ध करने के लिये कोई तैयार न था। बाबर के दिन इसी दशा में कट रहे थे। दिन का चैन और रात की नींद हराम थी। जिस ओर दृष्टि डालता उसी ओर नैराश्य पूर्ण कालिमा प्रतीत होती।

रात्रि का अंतिम पहर था। निशा अपना अञ्चल समेट रही थी। पक्षीगण दिन भर के आगमन की आशा में मंगल ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे। प्रकृति में सजीवता परिलक्षित होने लगी थी। शनैः शनैः भुवन भास्कर का नेत्रोन्मीलन हुआ। किरणें चारो ओर प्रकाश बिखेरने लगीं। एक किरण बाबर के हृदय में भी प्रवेश कर गई। उसमें विवेक जाग्रत हो उठा। वह उठा और अपने सैनिकों के मध्य पहुँचा। उसके आते ही सैनिकों ने उसे चारो ओर से घेर लिया। आज बाबर के मुँह पर अप्रत्याशित प्रसन्नता झलक रही थी। रोम-रोम से आनन्द फूटा पड़

रहा था। बहुत दिनों के पश्चात् बाबर की यह प्रसन्न मुद्रा सैनिकों को देखने को मिली थी। जिस प्रकार वर्षा के दिनों में पानी चारो ओर से सिमट-सिमट कर गढ़े में एकत्र होता है उसी प्रकार चारो ओर से सैनिक आ-आकर बाबर की उपस्थिति का आनन्द प्राप्त करने लगे। सभी अपलक दृष्टि से बाबर की ओर निहार रहे थे। बाबर दूर दृष्टि गड़ाये न जाने क्या देख रहा था। सैनिक अपनी दृष्टि उस ओर कर के देखने की चेष्टा करते, परन्तु कुछ भी दृष्टिगत न होता। काफी देर तक बाबर इसी अवस्था में खड़ा रहा। एक-एक सैनिक सिमट कर आ गया। बाबर ने अभी तक एक भी शब्द मुहँ से नहीं कहा था। सभी बाबर के इस अप्रत्याशित व्यवहार पर चिंतत थे। सहसा बाबर का मुहँ खुला और उसने कहा: –

"अमीरों और दोस्तों।"

यह दुनिया फानी है। जो यहाँ नमूदार हुआ है, उसे एक न एक दिन इसे छोड़ना भी पड़ेगा। यहाँ कोई टिकने नहीं आया है। हम फना होंगे, आप फना होंगे और सभी फना होंगे। इस फानी दुनियाँ में अगर कोई बचेगा, तो वह अल्लाह होगा। पस बाइज्जत मर जाना बेगैरत जिन्दगी से कहीं बेहतर है। मैं जिन्दगी में शान का हामी हूँ। शिकश्ता जिन्दगी मौत से भी बदतर है। खुदा का शुक्र है कि हम जहाद करने जा रहे हैं। अगर हम इस जंग में मर जाते हैं तो शहीद कहलायेंगे। और अगर जिन्दा हैं तो गाजी का खिताब हासिल करेंगे। आइये ! हम लोग कुरान को हाँथ में लेकर कस्द करें कि जब तक जान रहेगी, हम लोग जंग से मुँह न मोड़ेगे।"

बाबर की वाणी सुनते ही सैनिकों की नसों में बिजली दौड़ गई। रुधिर की गति तीव्र हो गई उत्साह से अंग-अंग फड़कने लगा। निस्तेज चेहरे खिल उठे। आत्मायें प्रदीप्त हो उठीं। कर्तव्य भावना का भान होते ही समस्त सैनिक एक साथ चिल्ला उठे—"हम जंग के लिये तैयार हैं।"

"शाबास साथियों। आप लोगों से मुझे यही उम्मीद थी। जिन्हों ने हमारे सुलह के पैगाम को ठुकरा दिया था अब वे देखेंगे कि तुर्कों और अफगानों की तलवार में कितनी ताकत है। इस बार हम उन्हें वह सबक सिखायेंगे जिसे वे जिन्दगी भर न भुला सकेंगे।"

"आप हमें तैयार होने का हुक्म दीजिये।" एक सैनिक ने कहा।

"आप लोग बहादुर हैं। बहादुर हमेशा तैयार रहता है। मगर एक बार हम जल्दी का नतीजा भुगत चुके हैं। इस बार उससे सबक लेना है। जब तक हम पूरी तैयारी न कर लें तबतक कोई भी सिपाही कोई भी कदम नहीं उठायेगा।" बाबर के आदेश को सबने सिर झुका कर स्वीकार किया।

६४

बट वृक्ष की शीतल छाया के नीचे कुछ राजपूत सरदार एकत्र थे। एक ने दूसरे को सम्बोधित करते हुये कहा—"क्यों भाई, सबको बुला-बुला कर क्यों इकट्ठा कर रहे हो?"

"राणा जी ने आपकी पदोन्नति क्या करदी है आपतो किसी से मिलना-जुलना भी नहीं पसन्द करते।"

"आप तो ऐसा न कहिये। वह पदोन्नति मेरे लिये एक समस्या बन गई है। हर कोई यही कहता है।"

"सही बात सभी कहेंगे।"

"आप तो जानते ही हैं कि राणा जी ने बहुत बड़े कार्य का बोझ मेरे सिर पर डाल दिया है। यदि उसकी देख-भाल न करूँ तो भी ठीक नहीं है उसी में सारा समय चला जाता है। आप लोगों के साथ उठने-बैठने का अवसर ही नहीं मिल पाता।"

"यही सोचकर तो आज मैंने सब लोगों को बुलाया है। अपने सभी लोग एक साथ बैठकर कुछ देर हँसी-खुशी की बातें करेंगे। फिर शिकायत करने का मौका नहीं मिलेगा लोगों को।"

धीरे-धीरे लोग आते जा रहे थे। बीच-बीच में जो भी आता सबसे नमस्कार होता और मण्डली में सम्मिलित हो जाता। डोडिया के आते ही सब लोगों के चेहरोंपर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। सभी इधर-उधर खिसक कर डोडिया को बैठने का स्थान रिक्त करने लगे। डोडिया ने बैठते ही एक ऐसी फुलझड़ी छोड़ी कि कहकहा मच गया। वातावरण सरस हो उठा। एक ने हँसी पर नियन्त्रण पाते हुये कहा–"भाई, जहाँ डोडिया काका नहीं होते हैं वहाँ मुर्दनी सी छायी रहती है।"

"और इनके आते तो जैसे रेगिस्तान में बहार आ जाती है।" अन्य सरदार ने कहा। डोडिया गर्व से फूला नहीं समा रहा था। उसने मूँछों पर हाँथ फेरते हुये कहा—"भाई राघव जी नहीं दिखायी दे रहे है ?"

अभी तो यहीं थे "यहीं-कहीं होंगे।" सरदार ने इधर-उधर दृष्टि डालते हुये कहा–"वह देखो आ रहे हैं।"

राघव जी आये और घुटनों के बल बैठ गये। समस्त उपस्थित सरदारों पर एक विहंगम दृष्टि डालते हुये कहा–"आप लोगों ने मेरे आमन्त्रण पर ध्यान दिया और यहाँ पधारे इसके लिये हम विशेष आभारी हैं। मैं नहीं चाहता था कि आप लोगों को किसी प्रकार का कष्ट दूँ, परन्तु एक घटना ही ऐसी घटित हो गई जिससे आप लोगों को सूचित करना मैंने आवश्यक समझा।"

"अवश्य बताइये राघव जी।"

"घटना कोई बहुत बड़ी नहीं है, परन्तु कभी-कभी छोटी-छोटी बातें भी भविष्य में इतना भयंकर रूप धारण कर लेती हैं कि विनाश अवश्यम्भावी हो जाता है।"

"आप सुनाइये तो। हम लोग उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर लेंगे।" चरम औत्सुक्य व्यक्त करते हुये एक सरदार ने कहा।

राघव ने गम्भीर स्वर में कहना प्रारम्भ किया—"आज प्रातःकाल मैं कुँये पर पानी भरने गया। उसी समय उदयसिंह का एक सरदार भी आ गया। उसने भी पानी भरने के लिये अपना गगरा कुँयें में लटकाया और पानी खींचा। मैं तबतक पानी भर चुका था। रस्सी खोलने में पानी की दो चार छींटे उसके घड़े में पड़ गई। उसने मेरी ओर अग्नेय नेत्रों से देखा और कहा—"सम्हाल कर काम नहीं करते बनता; सारा पानी खराब करके रख दिया।"

मैंने कहा—"इसमें पानी क्या खराब हो गया ?"

इस पर वह जोश में आकर बोला—"देखो ठाकुर, तुम राणा जी के सरदार हो वरना अगर और कोई इस तरह का उत्तर देता तो देख लेता।"

हमारी गरमा गरम बातों को सुनकर उसके दो चार साथी और आ गये। उन्हों ने उससे पूँछा—क्या हो गया ?

उसने उन लोगों को पूरी बात बता दी। उनमें से एक ने कहा—तुर्कों पर फतह क्या पाली है जैसे सारा संसार इनके अधिकार में आ गया है। किसी को कुछ समझते ही नहीं। अगर मैं होता तो अभी मजा चखा देता।"

एक अन्य साथी ने कहा—"हम अपने महाराज को क्या कहें जो ऐसे नीच लोगों की सहायता के लिये आ गये हैं।"

'नीच' शब्द सुनते ही मेरा खून खौल उठा। मैंने आवेश में आकर कहा—"देखो ठाकुर, जबान सम्हाल कर बोलो, अगर कोई दूसरा होता तो जबान खींच लेता।"

"मेरा इतना कहना था कि उनकी तलवारें म्यान के बाहर निकल आई। मैं भी अपने को न रोक सका और तलवार खींच कर खड़ा हो गया......।"

"फिर क्या हुआ ?" बीच में ही एक सरदार ने पूँछा।

"हुआ क्या तलवारें तो खिंच ही चुकी थी। बस, चलने भर की देर थी कि न जाने किस कार्य वश राणा जी उधर से आ निकले और उन्होंने समझा-बुझा कर सबको शान्त कर दिया, परन्तु मुझे पता लगा है कि इस घटना की प्रातःकाल से ही उनके सरदारों में खूब चर्चा हो रही है। हम लोगों के लिये अपशब्दों का भी प्रयोग किया जा रहा है। मैं चाहता था कि आप लोगों को सूचित कर दूँ। न मालूम किस समय किसके साथ क्या हो जाय।"

"खैर, यह तो बहुत ही अच्छा किया आपने, मगर यह आग सुलग कर ही रहेगी।" एक सरदार ने कहा।

"वे हमारा अपमान करें और हम सहते रहें।" दूसरे ने कहा।

"वास्तव में यह राघव जी का अपमान नहीं; बल्कि हम सब चित्तौड़ निवासियों का अपमान है।"

"हम इसका बदला अवश्य लेंगे।" उत्तेजित होकर एक नव युवक राजपूत ने कहा।

"किसका बदला लोगे भाई?" राणा जी का स्वर सुनाई पड़ा। सब लोग खड़े हो गये। राणा जी के अचानक आगमन ने सबको चकित कर दिया। सभी चुप। किसी का स्वर न फूटा। राणा जी ने मुस्कराते हुये पुनः प्रश्न किया—"आप लोग क्या कोई सभा कर रहे थे?"

"सभा नहीं है महाराज जी! यों हीं समय काटने के लिये चार लोग बैठ गये थे।"

"क्या वार्तालाप चल रही थी?"

"यों हीं मैं एक समुद्र के राजा की कहानी सुना रहा था।"

"लेकिन मुझे तो बदला लेने का स्वर सुनाई दिया था।"

"जी, महाराज जी। कहानी सुनते-सुनते यह इतना उत्तेजित हो उठा कि स्वयं बदला लेने को तैयार हो गया।"

"वह तो मैं जानता हूँ तुम्हें। किसी बात को इस ढग से कहते हो कि सुनने वाला उत्तेजित हुये बिना नहीं रहता।"

"सब आपकी कृपा है महाराज जी।" डोडिया का कृतज्ञता पूर्ण स्वर फूट पड़ा।

"जब अपने साथियों को मैं एक स्थान पर संगठित रूप में देखता हूँ तो मेरा मन प्रसन्नता से भर जाता है और मेरा भी मन होता है कि आप लोगों के साथ बैठकर सत्संग का लाभ प्राप्त करूँ।"

"महाराज जी आपकी अनुपस्थिति का हमें अनुभव ही नहीं होता है। हम लोगों को तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप सदा हमारे बीच में ही विद्यमान हैं।"

"बातें बनाने में बड़े उस्ताद हो। डोडिया हो ना। तुम्हारे पिता भी तुम्हारी तरह बाक चतुर थे। उत्तर देने में कभी न चूकते थे और उत्तर भी ऐसा होता था कि सुनने वाला हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाता था। पिता का यह गुण तुमने खूब प्राप्त किया है। अच्छा, अब आप लोग युद्ध की तैयारी करिये।"

"क्या हो गया महाराज जी?" राघव ने साश्चर्य प्रश्न किया।

"तुर्क युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। उनकी खाइयाँ खोदी जा चुकी हैं। मोर्चाबन्दी मे सभी बड़ी तत्परता से व्यस्त हैं।"

"लेकिन महाराज जी, हम लोगों ने तो अभी तक कोई भी तैयारी नहीं की है।"

"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। सुबह का भूला अगर शाम को घर आ जाता है तो भूला नहीं कहलाता। हम लोगों को तैयार होते कितनी देर लगती है?"

"परन्तु उन लोगों ने तो खाइयाँ खुदवाई हैं।"

"खाइयाँ खुदवाने से क्या होता है। युद्ध में जय-पराजय सैनिकों की शक्ति पर निर्भर होती है। जिस सेना के सैनिकों की बाहुओं में बल होता है, तलवार में पानी होता है और हृदय में आत्म विश्वास होता है उसे विजय अवश्य प्राप्त होनी है। इन तीनों चीजों की हमारे सैनिकों में कोई कमी नहीं है। अच्छा, अब आप लोग तैयार होइये

और दूसरों को तैयार करिये। समय थोड़ा है और सूर्यास्त होने वाला है। आज ही मैं प्रत्येक सैनिक से मिल लेना चाहता हूँ।" कहकर राणा जी आगे बढ़ गये।

— — —

६५

"अरे यहाँ कहाँ तुम मुझे ले आये ? यह तो खानवा का मैदान है। कुछ दिन पहले यहाँ बड़ा भयंकर युद्ध हुआ था। पृथ्वी लाशों से पट गई थी। उनके सड़ने की बदबू तो अभी तक वातावरण में व्याप्त है।" वृक्ष पर बैठे हुये एक गिद्ध ने अपने मित्र दूसरे गिद्ध से कहा।

"कई दिन तक यहीं भर पेट भोजन करते रहे हो और अब यहाँ आने में भी आना-कानी करते हो ?"

"जब तक भोजन की सामग्री रही तब तक यहाँ रहे। अब यहाँ क्या रखा है ?"

"रहे तुम यार निरे बुद्धू के बुद्धू।"

"क्यों ?"

"सामने की ओर तनिक दूर तक दृष्टि डालो।"

"ये तो तुर्क सैनिक प्रतीत हो रहे हैं।" सामने की ओर कुछ क्षण तक देखने के उपरान्त गिद्ध ने कहा।

"तनिक और ध्यान से देखो।"

"और तो कुछ भी नहीं है।"

"वाह ! उस घोड़े पर क्षिप्र गति से चलने वाले तुर्क को नहीं देख रहे हो ?"

"देख तो रहा हूँ, मगर उसमें ऐसी कौन सी विशेषता है जो तुम मुझे दिखाना चाहते हो ?"

"अब तो गजब कर दिया तुमने । अरे तुम उस में कोई विशेषता ही नहीं देखते हो । यह है बाबर-बाबर ।"

"पहचान लिया-पहचान लिया, लेकिन यह इतनी तेजी से इधर से उधर दौड़ क्यों रहा है ?"

"मोर्चाबन्दी के लिये ।"

"मोर्चाबंदी किसलिए ।"

"युद्ध के लिये ।"

"किसके साथ ?"

"राजपूतों के साथ ?"

"तुम भी यार हँसी कर रहे हो । इन तुर्कों में क्या दम जो राजपूतों का सामना कर सकें ?"

"इन्हें राजपूतों से कम न समझो । ये भी कभी हिम्मत हारना नहीं जानते ।"

"तो क्या वास्तव में युद्ध करेंगे ?"

"इनकी तैयारी से तो ऐसा ही मालूम देता है ।"

"तब तो यार कुछ दिन फिर चैन से कटेंगे ।"

"कुछ दिन नहीं, काफी दिन कहो-काफी दिन "

"क्यों ?"

"मोर्चाबन्दी से तो ऐसा ही प्रतीत हो रहा है ।"

"क्या प्रतीत हो रहा है ?"

"भयंकर युद्ध होगा । हजारों सैनिक मरेंगे ।"

"तुम्हें इसका अनुमान कैसे हो गया ?"

"मैंने सैकड़ों युद्ध देखे हैं । जहाँ युद्ध होता है वहीं पहुंच जाता हूँ, परन्तु ऐसी मोर्चाबन्दी कभी नहीं देखी ।"

"यहाँ से तो कुछ साफ नहीं दिखाई दे रहा है । चलो जरा निकट से चल कर देखें ।"

"चलो ।" कह कर दोनों गिद्ध उड़ गये ।

उड़ते हुये गिद्ध ने कहा—"अरे यहाँ तो यह बड़ी लम्बी चौड़ी काफी गहरी खाई खुदी हुई हैं ।"

"इसे ही देखकर तो मुझे भी आश्चर्य हो रहा है मैंने अभी तक किले के चारो ओर खाई देखी थी, परन्तु रण स्थल में यह प्रथम बार देख रहा हूँ ।"

"लेकिन इसे खोदा क्यों है ।"

"इसे तो मैं भी नहीं बता सकता ।"

"मेरे साथ चलकर उस पेड़ पर बैठो मैं तुम्हें सब समझा दूँगा ।" पीछे से उड़ते हुये एक अन्य गिद्ध ने कहा ।

"क्या तुमने कभी देखा है ऐसा ?" पीछे की ओर घूम कर गिद्ध ने पूँछा ।

"हाँ, एक बार नहीं अनेक बार देखा है । तुर्कों का युद्ध करने का निराला ढंग होता है । शत्रु इनकी मोर्चाबन्दी से अपरिचित रहता है और धोखे में मारा जाता है ।"

"हां, यह तो तुमने बताया ही नहीं कि इतनी बड़ी खाई क्यों खोदी गई है ।"

"जरा आराम से बैठकर सुस्ता लो तो । अभी सब बताता हूँ ।"

"अच्छा भाई लो हम आराम से बैठ गये ।"

"यहाँ नहीं, मेरे साथ ऊपर चलकर बैठो ।"

"क्या कोई जगह बना रखी है ?"

"हाँ ।"

"यह तो बड़ी ही आरामदायक जगह है ।"

"ऐसी ही जगह की तो यहाँ जरूरत है ।"

"क्यों ?"

"एक आध दिन की बात हो तो कष्ट ही में काट लिये जांय । यहाँ तो काफी लम्बा बसेरा होगा ।"

"हमारे मित्र का भी यही कहना है, लेकिन उन्होंने ऐसे किसी भी स्थान का निर्माण नहीं किया है ।"

"उसकी क्या आवश्यकता ?"

"वाह ! क्या हम लोगो को आराम पसन्द नहीं ?"

"पसन्द है, खूब पसन्द है, मुझसे अधिक पसन्द है।"

"तो फिर ?"

"फिर क्या, अब दोस्त के यहाँ मेहमानी करो।"

"धन्यवाद, लेकिन हम लोंगो के रहने से तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं होगा ?"

"इसमें कष्ट की क्या बात है। आतिथ्य सत्कार का आनन्द तो अवर्णनीय होता है।"

"आप का यह सहृदयता पूर्ण व्यवहार हम कभी न भूल सकेंगे।"

"यह मेरा सौभाग्य होगा।"

"अच्छा मित्र ! अब तो हम लोग आराम से बैठ गये और सुस्ता भी चुके। खाई खोदने का तात्पर्य बताओ ?"

"ये तुर्क लोग खाई इसलिए खोदते हैं कि शत्रु इसे पार करके उनकी ओर बढ़ न सके।"

"तो कहो इसका निर्माण अपनी रक्षा के लिये किया है।"

"हाँ, यों ही समझ लो।"

"लेकिन इस खाई के पीछे ये क्या लगा रखा है ?"

"इनको नहीं जानते हो ?"

"नहीं।"

"अरे ये तोपें हैं।"

"इनका क्या उपयोग होता है ?"

"ये आग बरसाती हैं।"

"तो क्या इनके भीतर आग भरी है।"

"नहीं, भरी तो नहीं है, परन्तु इसमें बारूद के गोले भरे होते हैं और आग के स्पर्श करते ही दूर तक मार करते हैं।"

"राजपूतों के पास तो सम्भवतः ये हैं नहीं ?"

"नहीं, उनके पास ये तोपें नहीं है।"

"लेकिन इन्हें जंजीरों से क्यों बाँध दिया है ?"

"इसलिए कि पीछे न हट जांय।"

"क्या ये सैनिक हैं जो शत्रु की मार से पीछे हट जायेंगी ?"

"शत्रु की मार से तो ये पीछे नहीं हटती हैं, परन्तु अपनी ही मार से पीछे हटती हैं।"

"क्या तात्पर्य ?"

"जब ये गोला फेंकती हैं तब इतनी जोर का धक्का लगता है कि कुछ कदम पीछे इन्हें हटना पड़ता है।"

"तुम तो मित्र, इस तरह बता रहे हो जैसे यह सब तुम्हारी ही व्यवस्था हो ?"

"मित्र व्यवस्था मेरी नहीं है, परन्तु मैं इनके प्रयोग से भली-भाँति परिचित हूँ।"

"लेकिन कुछ दिन पूर्व जो यहीं युद्ध हुआ था, उसमें उन लोगों ने इनका प्रयोग नहीं किया था ?"

"हाँ, उसमें इनका प्रयोग नहीं हुआ था।"

"तो फिर तुमने इनका प्रयोग कैसे देखा ?"

"जब बाबर फरगाना से अपने थोड़े से सैनिकों के साथ चला था तभी से मैं इसके साथ हूँ।"

"तो क्या तुम फरगाना के रहने वाले विदेशी हो ?"

"देशी और विदेशी तो वे लोग होते हैं जो देश और विदेश का भेद-भाव रखते हैं। हम लोगों का न कोई देश है न विदेश। यहाँ तो जहाँ भोजन मिलने की आशा हुई वहीं डेरा डाल दिया।"

"हाँ भाई, बात तो ठीक ही कहते हो। हम लोगों को तो केवल पेट भर भोजन चाहिए। रहने के लिए तो ईश्वर ने पेड़ बना ही दिये हैं। व्यर्थ में ही ये मानव परस्पर लड़कर जीवन नष्ट किया करते हैं।"

"अपना तो इसमें हित ही है। जितना अधिक लड़ेंगे उतना ही अधिक हमें भोजन-सामग्री की प्राप्ति में सुविधा रहेगी।"

"अच्छा, तो गाड़ियां भी इसीलिए शायद लगा रखीं हैं ताकि ये तोपें पीछे न हट सकें ?"

"हाँ।"

"और यह तिपाइयाँ किसलिये हैं ?"

"तोपचियों के बैठने के लिए।"

"लेकिन..................।"

"जरा शान्त रहो।"

"क्यों ?"

"जरा सुनने दो।"

"क्या सुन रहे हो ?"

"वार्तालाप।"

"किसकी ?"

"बाबर और मुस्तफा रूमी की।"

"यह मुस्तफा रूमी कौन है ?"

"यह बाबर के तोप विभाग का प्रमुख अधिकारी है।"

"बाबर इससे क्या पूँछ रहे थे ?"

"पूँछ रहे थे कि सब तैयारी है या नहीं।"

"तो क्या कहा उसने ?"

"कहा, सब ठीक है।"

"तब तो तोपों का कमाल भी देखने को अबकी बार मिलेगा।"

"इनका कमाल बड़े-बड़े नहीं देख पाते हैं।"

"क्यों ?"

"इनकी आवाज इतनी तेज होती है कि जो अपरिचित होता है वह भाग खड़ा होता है।"

"अच्छा किया जो बता दिया नहीं तो सम्भवतः हम लोगों की भी यही दशा होती।"

"तुम लोग घबड़ाना नहीं। हम लोग ऐसे स्थान पर हैं जो सभी दृष्टियों से सुरक्षित है।"

"ये तोपें भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं ?"

"नहीं, इनकी क्या हस्ती ? हमारा बाबर भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

"तब तो ठीक है आराम से रहेंगे।"

"फिर भी सतर्क रहना। अगर किसी तोप का मुँह इस ओर घूम गया तो फिर खैर न समझना।"

"तब तो चलो भाग चलें।"

"नहीं भाई, डरने की कोई बात नहीं। जजीरों से बँधी होने के कारण ऐसी कोई सम्भावना नहीं है।"

"हमें तुम पर विश्वास है। जैसा कहोगे वैसा ही हम लोग करेंगे।"

"हम अपने प्राण रहते आप लोगों पर कोई संकट नहीं आने देंगे।"

"अब तो हम लोग तुम्हारे ही सहारे हैं।"

"तोपों की ओर देखते हुये सिद्ध ने पूँछा—"वह कौन है जो तोपों में गोले भर रहा है ?"

"यह है उस्ताद अली। यह तोप बनाने और तोप चलाने की कला का उस्ताद है।"

"शायद इसीलिए इसका नाम उस्ताद अली रखा गया है।" सभी हँस पड़े।

"सैनिक भी बड़े हिसाब से खड़े हैं।"

"यही तो तुर्कों की विशेषता है। तोपों के पीछे अग्र भाग की सेना

को देख रहे हो ?"

"हाँ।"

"इसे हरावल कहते हैं। यह दो भागों में विभक्त है। दक्षिणी भाग में चीन-तमूर, सुलेमान शाह, बरलास, शाह मन्सूर, यूनस अली आदि सरदार हैं और बाईं ओर अलाउद्दीन लोदी खड़ा है।"

"यह तो इब्राहीम लोदी का वंशज है।"

"हाँ, इसी की सहायता से तो बाबर ने इब्राहीम लोदी को परास्त किया है।"

"इसने अपने घर वालों के साथ विश्वासघात किया है।"

"अगर इसने ऐसा न किया होता तो बाबर हिन्दुस्तान में न आ पाता।"

"खैर, चलो आना अच्छा ही हुआ।"

"हाँ भाई, और यह देखो शेखजइन, मुहिबअली और शेर खाँ भी अपनी सेना के साथ आ खड़े हुये हैं।"

"बाबर क्या नहीं लड़ेगा ?"

"लड़ेगा।"

"लेकिन दिखाई नहीं दे रहा है ?"

"वह देखो पीछे की ओर खड़ा है।"

"कहाँ ?"

"हरावल के पीछे की सेना के बीच में।"

"हाँ,हाँ, वह खड़ा है। दिखाई पड़ गया।"

"बाबर के साथ उसका पुत्र हुमाऊँ और सुलतान, हिन्दूबेग कोवल ताश; मलिकदाद कर्टानी, कासिम हुसेन, दिलावर खाँ खानखान, मीर-हामा आदि अनेक वीर सेनापति खड़े कुछ विचार विमर्श कर रहे हैं।"

"मगर अभी तक राजपूत नहीं आये ?"

"रास्ते में होंगे। बसावर से तो चल चुके हैं।"

"क्या यहाँ से दिखाई पड़ रहा है ?"

"नहीं मैं अभी वहीं से तो आ रहा था कि तुम लोग मिल गये।"

"सबकी खबर रखते हो यार।"

"अपने भोजन की फिक्र किसे नहीं होती ?"

"वह तो सभी को होती है।"

"ये दाहिनी ओर दूर पर दो लोग कौन खड़े हैं ?"

"ये ईराक के राजपूत सुलेमान हुसेन आका और मीस्तान हुसेन आका हैं।"

"ये क्यों खड़े हैं ?"

"ये युद्ध देखने आये हैं।"

'हमी लोगों की तरह ?"

"नहीं भाई, हम लोग तो अपने भोजन के लिये आये हैं और ये लोग केवल युद्ध की कला देखने आये हैं।"

"बाबर के काफी दूर पीछे तो कुछ सैनिक खड़े मालूम हो रहे हैं।"

"हाँ, यह सैनिक व्यूह रचना की विशेषता है। कुछ सेना सुरक्षित रखी जाती है जो विशेष संकट के समय काम आती है। यह उसी समय के लिए सुरक्षित है।

"इनके सेनापति कौन हैं ?"

"दक्षिण की ओर की सेना के अध्यक्ष तदीक मलिक कासिम और बाबर कश्का प्रतीत होते हैं।"

"और बाईं ओर ?"

"बाईं ओर तो अनेक लोग दिखाई दे रहे हैं। मुहम्मद अली, ख्वाजा मेहदी, अब्दुल अजीज, मुहम्मद सुलतान, आदिल सुलेमान तथा सुलतान मिरजा आदि हैं।"

"अब्दुल अजीज तो बाबर का प्रमुख सेनापति है ?"

"हाँ।"

"उसे तो सबसे आगे रहना चाहिये।"

"आगे के सैनिकों से इस सुरक्षित सेना का विशेष महत्व होता है। ये शत्रु को चारो ओर से घेर कर युद्ध करते हैं।"

"भाई खूब ज्ञान है तुम्हें भी। एक एक का नाम जानते हो।"

"अरे, वह देखो। राजपूत सेना भी मैदान में आ गई।"

"अरे बाप रे बाप! इतनी विशाल सेना! क्या खाकर तुर्क इनका सामना करेंगे?"

"हाँ, भाई राणा जी की सेना है तो विशाल। इतनी बड़ी सेना कभी देखने में नहीं आई। मालूम होता है कि सारी राजपूत जाति एकत्र हो गई है।"

"तुम तो इन्हें भी जानते होगे?"

"हाँ, कुछ को तो जानता ही हूँ।"

"तो फिर बताओ ना कौन-कौन आये हैं युद्ध के लिये?"

"महाराणा जी को पहचानते ही होगे?"

"हाँ, उनसे तो हम लोग परिचित हैं। हाथी पर जो सवार हैं वही तो है ना?"

"हाँ वही हैं। राणा जी के आगे कुछ अफगान सरदार दिखाई दे रहे हैं।"

"हाँ"

"वे हैं हसन खाँ मेवाती और ईब्राहीम लोदी का पुत्र महमूद लोदी।"

"अच्छा! तो वे लोग बाबर से नहीं मिले?"

"नहीं, उन्हें बाबर की अपेक्षा राणा जी पर अधिक विश्वास है।"

"भला राणा जी पर कौन विश्वास न करेगा?"

"और देखो, राणा जी के बगल में मारवाड़ का रावगंगा और आमेर के राजा पृथ्वीराज खड़े हैं।"

"बड़े बीर मालूम दे रहे हैं।"

"वीर समझकर ही तो राणा ने इन्हें आमन्त्रित किया होगा। राणा जी के पीछे तो अनेक लोग है। ईडर का राजा रायमल वीरमदेव मेड़तिया, नरसिंहदेव, डूँगरपुर का रावल, उदयसिंह, चन्द्रभाँड़ चौहान तथा माणिकचन्द चौहान आदि हैं।" कुछ रुक कर—"और कुछ पीछे दूर पर दिलीप, रावत रत्नसिंह काँतलोत, रावत जोगा सारंग देवाते, नरवध हाड़ा आदि भी अपने सरदारों के साथ खड़े हैं।"

"वास्तव में वीर तो चुन-चुन कर ही राणा जी लाये हैं। युद्ध देखने योग्य होगा।"

"जरा और पीछे तो देखो। मेदिनीराय, कल्याणमल, रावत बाँगसिंह, वीरसिंह देव, खतेसी रायमल, झालाअज्जा, परमार गोकुल दास, सोनगरा रामदास आदि भी सेना के साथ बाबर का सामना करने आये हैं।"

"अरे ! यह क्या ?"

"क्या हो गया ?"

"तुर्कों के चेहरे पर घबराहट के चिन्ह दिखाई दे रहे हैं।"

"जिसके नाम से शत्रु काँपते हैं उसकी मार खा चुकने पर भी भयभीत नहीं होंगे ?"

"तो फिर क्यों लड़ने को तैयार खड़े हैं।"

"यह तो बाबर की जिद है। सिपाही तो पहले से ही इन्कार कर रहे हैं।"

"बाबर को उन्हें कटाने से क्या मिल जायेगा ?"

"हिन्दुस्तान की हुकूमत।"

"और अगर हार गये तो ?"

"स्वर्ग पहुँच जायेंगे।"

"क्या ये मरने वाले सभी सिपाही स्वर्ग जाते है ?"

"विश्वास तो ऐसा ही किया जाता है कि जो वीर रण में अपने प्राण देता है वह स्वर्ग जाता है।"

"मुझे तो इन बेचारे तुर्क सैनिकों पर तरस आ रहा है।"

"ज्यादा तरस न खाओ वरना बिना खाये रह जाओगे।"

"बेचारे बिना मौत मारे जायेंगे।"

"अगर ये नहीं मरेंगे तो हम लोग बिना भोजन मर जायेंगे।"

"तुम्हें तो हमेशा भोजन ही भोजन की सूझती है।" तुनुक कर गिद्ध ने कहा।

"अरे भाई, तीन दिन से भूँखा हूँ।"

"क्या भोजन नहीं मिला ?"

"मिला क्यों नहीं, लेकिन उस बेकार के भोजन को कौन खाता। मैं तो इन वीरों को आज पेट भर कर खाऊँगा।"

"मुँह में पानी तो नहीं आ रहा है ?"

"पानी तो नहीं मगर भूँख के मारे प्राण जरूर मुँह तक आ रहे हैं।"

"उधर देखो राजपूतों ने हमला बोल दिया।" गिद्ध ने चीख कर कहा।

"मैं तो डर गया कि कहीं मेरे ही ऊपर हमला हो गया।"

"उधर देखो दक्षिण की तरफ तुर्क कट-कट कर गिरने लगे। अल्लाहो अकबर चिल्ला रहे हैं। बेचारे आफत में फँस गये हैं। भाग भी नहीं पा रहे हैं।"

"मगर वे भी तो राजपूतों को मार रहे हैं।"

"हाँ, लेकिन उनके जब दस गिरते हैं तब राजपूत एक गिरता है। अरे, यह क्या ? मुगुल तो पीछे हटने लगे।"

"राजपूतों की मार के सामने कौन टिक सकता है ?"

"वह देखो बाबर उसी ओर बढ़ रहा है।"

"बाबर है चालाक। अच्छे मौके पर आ गया। फिर डटकर संघर्ष होने लगा मगर बाबर तो लौटा जा रहा है।"

"और सेना लेने जा रहा होगा।"

"नहीं, वह तो चीन तैमूर के पास पहुँच गया। कुछ कहा भी तो है उसने। अरे यह क्या चीन तैमूर ने राजपूतों के पार्श्व भाग पर धावा बोल दिया। राजपूत कट रहे हैं। यह अचानक आक्रमण हुआ है; फिर भी राजपूत डटकर सामना कर रहे हैं।"

"जरा मजबूती से बैठना। घबड़ाना नहीं।"

"क्या कोई आफत हम लोगों पर भी आने वाली है ?"

"बाबर उस्ताद अली के पास पहुँच गया है। तोपों की मार जरूर होगी।"

गिद्ध का इतना कहना था कि तोपों से गोले बरसने लगे। गिद्ध गिरते-गिरते बचे।

"मैंने अगर न पकड़ लिया होता तो गिर ही पड़ते"

"मैं क्या जानता था कि इतनी तेज आवाज होती है तोपों में।"

"अब तो नहीं गिरोगे ?"

"नहीं, क्या बादल गरज रहे हैं ?"

"नहीं; यह तोपों की आवाज है।"

"सूर्य भी तो नहीं दिखाई दे रहा है ?"

"आकाश धुयें से भर गया है।"

"गिद्ध ऊपर देखने लगते हैं"

"ऊपर क्या देख रहे हो। उधर देखो। मुगल सैनिक बाईं ओर धावा बोल रहे हैं।"

"तोपे तो गजब ढा रही हैं। जो भी राजपूत सामने पड़ जाता उसकी धज्जी-धज्जी उड़ जाती है।"

"लेकिन फिर भी तो वे आगे बढ़ रहे हैं। तोपों को चुनौती दे रहे हैं।"

"चुनौती नहीं दे रहे हैं, प्राण गवाँ रहे हैं।"

"प्राणों की चिंता उन्होंने कब की है ? जीवन को तो वे लोग खेलवाड़ समझते हैं।"

"मर रहे हैं, मगर चेहरों पर भय का कहीं नाम भी नहीं है।"

"वह देखो बाबर सलहदी से कुछ बातें कर रहा है।"

"सलहदी तो राजपूत है ?"

"है, मगर बाबर की बात बड़े ध्यान से सुन रहा है। अरे, यह क्या वह तो सेना लेकर मुगलों की ओर से आ रहा है।"

"राजपूतों को मारने भी तो लगा है। इसकी सेना तो काफी बड़ी है।"

"तीस-चालीस हजार से कम न होगी। वह देखो, राजपूत उसकी ओर देख-देखकर दाँत पीस रहे हैं। उसी को मारने लगे।"

"अरे भाई, जरा जोर-जोर से बोलो। घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिग्घाड़, अस्त्रों-शस्त्रों की झंकार, सैनिकों की चिल्ल-पुकार और तोपों की हजारों मेघों के समान गर्जना के कारण कुछ सुनाई नहीं दे रहा है।"

"सुनो राणा की आवाज, 'बहादुरों आगे बढ़ो, काली का खप्पर भरो। रणचण्डी की लाल-लाल जिह्वा रक्त की प्यासी है उसको बुझाओ। राजपूतों में नया जोश आ गया। अंधाधुंध मार करने लगे। राणा जी गरज रहे हैं। वीर जूझ रहे हैं। अ हा हा। हमारा भोजन खूब हो गया। जय जगदम्बे कह-कह कर राजपूत नंगी तलवार लेकर पिल पड़े हैं। किसी का हाथ कट रहा है, किसी का सिर तो किसी का पैर। हाथी घोड़े भी तो कट रहे हैं। वाह ! क्या हाथी की सूंड़ में चन्द्र भाण चौहान ने हाथ मारा है। सूंड़ कट जाने से रक्त ऐसा बह रहा है मानों कोई पहाड़ी झरना सहसा फूट पड़ा हो। उसकी चिग्घाड़ तो हृदय दहला देने वाली है वह भागने लगा। सैनिकों को वह कुचल रहा है।"

"क्या हाथी को देख रहे हो ? इधर देखो राणा जी को क्या हो गया ?

"क्या हो गया राणा जी को ?"

"राणा जी को तीर लग गया है।"

"हौदा में तो दिखाई नहीं दे रहे हैं ?"

"उसी में गिर पड़े हैं। आस-पास के राजपूत चिंतित दिखाई दे रहे हैं। देखो सुनो, वह राजपूत क्या कह रहा है—"महाराणा जी को शीघ्र यहाँ से हटा देना चाहिये।"

यही उचित होगा।" दूसरे राजपूत ने कहा।

"लेकिन इस अवस्था में उन्हें रण से हटाना उनकी वीरता को कलंकित करना है। इससे राजपूत जाति कलंकित हो जायगी।"

"युद्ध नीति का पालन करो। इस समय इनका हटाना श्रेयस्कर होगा।"

"तो फिर पालकी मंगाइये।"

"पालकी आ गई। वह उसमें लेटाये गये। पालकी दूर जा रही है।" गिद्ध ने कहा।

"राणा जी अगर होश में होते तो ऐसा कभी न करने देते।"

"अब तो वह चले गये। इधर देखो युद्ध का क्या होता है ?"

"अब राजपूतों का जीतना कठिन है।"

"यह तुम क्या कह रहे हो ? वह देखो मुगुल सेना पीछे हट रही है।"

"इधर भी तो देखो यहाँ क्या हो रहा है ?"

"क्या हो रहा है ?"

"सुनो।

सभी गिद्ध ध्यान से सुनने लगते हैं।

"रावत जी ! आप राणा जी के हाथी पर विराजिये।"

"राणा जी कहाँ गये ?"

"मेवाड़।"

"क्यों, वह तीर लगने से मूर्छित हो गये थे। ऐसी अवस्था में उनका यहाँ रुकना उचित नहीं था, इसलिये उन्हें मेवाड़ भेज दिया गया है।"

"लेकिन मैं और इस हाथी पर।"

"हाँ, हाँ, इस समय आप ही इस पद के उपयुक्त हैं। आप की शक्ल राणा जी से मिलती-जुलती है। शत्रु आप को पहचान नहीं पायेंगे। चलिये शीघ्रता करिये और राजचिन्ह धारण करिये।"

"मैं राजचिन्ह न धारण कर सकूँगा।"

'क्यों ?"

"मेरे पूर्वज मेंवाड़ को छोड़ चुके थे। मैं एक क्षण के लिये भी राज चिन्ह धारण नहीं कर सकता।"

"तो फिर आप ही बतलाइये कौन इस पद के उपयुक्त रहेगा ?"

"झाला को क्यों नहीं सौंपते यह कार्य ?"

"झाला उपपुक्त रहेंगे ?"

"उनकी उपयुक्ततता पर भी किसी को सन्देह हो सकता है।"

"झाला ने तनिक भी आनाकानी किये बिना राजचिन्ह धारण कर लिया। कुछ ही राजपूत इस परिवर्तन से परिचित थे।"

गिद्ध ने कहा—"वह देखो राजपूतों का अग्रिम भाग तोप की मार से कमजोर हो रहा है। बाबर ने सुरक्षित सेना भी तो भेजी हैं।"

"अरे, उनके हाथों में तो बन्दूखें हैं। राजपूत गोलियों की मार से अपनी रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। गोलियाँ उन्हें भूँज रही हैं और राजपूत भुँज रहे हैं। बाईं ओर से सेना की एक टुकड़ी और आ गई। ये नये-नये सैनिक न जाने किधर से आते जा रहे हैं ?"

"यही तो बाबर का रण कौशल है। उसकी व्यूह रचना को समझ लेना शत्रु के लिये कठिन होता है। अब तो राजपूत बायें पार्श्व से भी कमजोर दिखाई दे रहे हैं।"

"वह देखो, दाहिने पार्श्व पर बाबर ने स्वयं हमला बोल दिया है। बाबर का घोड़ा तो हवा से बातें कर रहा है। बाबर दोनों हाथों से तलवार चला रहा है। अब तो राजपूत चारो ओर से घिरे हैं। उनके निकलने का कोई मार्ग नहीं है।"

"उन्हें मार्ग की आवश्यकता भी क्या थी ? वह भागने के लिये थोड़े ही युद्ध क्षेत्र में आये है। अब तो राजपूत मरने के लिए मार रहे हैं। एक-एक राजपूत काल का रूप धारण किए हुये है।"

"वह देखो उस्ताद अली ने पुनः तोपों से भीषण अग्नि वर्षा प्रारम्भ कर दी है। राजपूत तेजी से धराशायी हो रहे हैं। चूड़ावत ने बाबर को ललकारा है। मगर इसके पूर्व कि वह आक्रमण कर सके तोप के गोले के चपेट में आ गया। लाशों पर पैर रख-रख कर राजपूत मर रहे हैं। अल्लाहो अकबर की ध्वनि के साथ एक नवीन सैनिक टुकड़ी आई और शेष राजपूतों को समाप्त करने लगी। एक-एक राजपूत बीन-बीन कर मारा गया, परन्तु रणांगण से भागा एक भी नहीं।

६६

सूर्यास्त हो चुका था। प्रकाश अपनी अन्तिम सांसें ले रहा था। अन्धकार का घनत्व बढ़ता जा रहा था। राणा जी की पालकी चली जा रही थी। कहार थके हुए थे। उनके मार्ग में पैर सीधे न पड़ रहे थे। रात्रि की कालिमा के कारण मार्ग के गड्ढे तथा खन्दक साफ दिखाई न देते थे। किसी गड्ढे के आ जाने के कारण यदि कहीं पालकी ले जाने वालों का पैर उसमें पड़ जाता तो कुछ अर्थ हीन अस्फुट स्वर उनके मुँह से निकल पड़ता। अचानक एक बड़ा गड्ढा आया और डोली जोरों से हिल गई। इससे राणा जी की मूर्छा भंग हो गई। उन्होंने नेत्र खोले। इधर–उधर देखा। बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हें

अपनी स्थिति का ज्ञान होते हुये देर न लगी। उन्होंने तत्क्षण पालकी के बाहर झाँकते हुये कहा—"कौन रामसिंह ?"

पालकी रुक गई। चारो सरदार वहीं रुक गये। पीछे आने वाले सरदार भी पालकी को रुकते देखकर खड़े हो गये। राणा जी ने पालकी से बाहर आने की चेष्टा करते हुये कहा—"यह क्या किया तुम लोगों ने ?"

"अब आपकी तबियत कैसी है ?" रामसिंह ने साहस एकत्र करके आगे बढ़ते हुये कहा।

"रणस्थल से घसीट कर तबियत पूँछते हो ? बोलो, मैं कहा हूँ ?"

"बासवा गाँव के जंगल में।"

"और युद्ध का क्या हुआ ?"

सभी मौन। कोई कुछ न बोला। इस मौन से राणा का क्रोध भभक उठा। घायल सिंह की भाँति उनकी गरज फूट पड़ी—"क्या सब गूँगे हो गये हो ? मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते ?"

"सब समाप्त हो गया।" रामसिंह ने सिर नीचा किये हुये उत्तर दिया।

रामसिंह का उत्तर सुनते ही राणा जी ने अपने मस्तक पर हाँथ दे मारा और स्वर फूट पड़ा—"हाय रे भाग ! यही सुनने के लिये तूने मुझे जीवित रखा। यह सुनने के पूर्व मैं मर क्यों न गया !" समक्ष खड़े सैनिकों की ओर बढ़कर रामसिंह के दोनों कन्धे पकड़ कर झकझोरते हुये कहा—"तुम मुझे रणांगण से क्यों उठा लाये ? मुझे वहीं क्यों न मर जाने दिया ?"

"आप मूर्छित हो गये थे। आपका मूर्छितावस्था में वहाँ रहना उचित न था। सभी सेनापतियों की आज्ञा का मैंने पालन किया।"

"हाय ! उन लोगों ने मुझे रण की मृत्यु के आनन्द से वञ्चित

कर दिया। अब मैं अपने इस नारकीय जीवन को लेकर क्या करूँगा?" कह कर राणा ने रामसिंह की कमर से तलवार खींचने की चेष्टा की परन्तु रामसिंह ने राणा जी का हाथ पकड़ते हुये कहा—"यह आप क्या कर रहे हैं ?"

"कलङ्कित जीवन से मृत्यु अच्छी है।"

"परन्तु आत्महत्या ?"

"नहीं, तुम्हारे हाथों में क्या इतनी भी शक्ति नहीं रह गई है जो मुझे इस अपमानित जीवन से मुक्त कर सको ?"

"महाराज ! अभी रामसिंह की भुजाओं में तुर्कों के दाँत खट्टे करने की शक्ति है। मैं नहीं चाहता कि आप निराश हों।"

"क्या अब भी कोई आशा शेष रह गई है ?"

"हाँ, है। आप स्वस्थ होकर सैन्य शक्ति का संगठन करिये और शत्रु से बदला लीजिए।"

"रामसिंह ! गिरे हुये घोड़े और हारे हुये सैनिक का पुनः उठना बड़ा कठिन है।"

"हर असम्भव को जीवन में सम्भव कर दिखाने वाले महाराज के मुँह से ये शब्द !"

"आश्चर्य न करो मेरे मित्र ! समय सब करा लेता है। मनुष्य समय का दास है। न मालूम कितने वीरों ने समय से टक्कर ली परन्तु क्या कोई इस पर विजय प्राप्त कर सका ? अब मैं नहीं चाहता कि इस पराजित रूप में चित्तौड़ जाऊँ। मैं मेवाड़ राज्य की सीमा में भी पैर नहीं रखना चाहता। अगर मुझे इस संसार से विदा नहीं कर सकते तो कहीं दूर ले चलो—दूर—बहुत दूर—इतनी दूर जहाँ मेवाड़ के स्त्रियों, बच्चों का करुण क्रन्दन मेरे कानों तक न पहुँच सके।" राणा जी कहकर पालकी में जा बैठे।

पालकी पुनः चल पड़ी।

६७

खानवा की विजयोपरान्त बाबर ने संध्या समय अपने वीर सेना पतियों को एकत्र किया और ओज पूर्ण स्वर में वह बोला—"साथियों ! आज आपलोगों ने जो बहादुरी दिखाई है उसे तवारीख कभी न भुला सकेंगी। राजपूती ताकत हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी ताकत थी। बहुत से लोगों ने हिन्दुस्तान पर हमले किये मगर इस ताकत का मुकाबला कोई न कर सका। तुर्क और अफगान की मिली-जुली ताकत ने उसके भी दाँत खट्टे कर दिये, मगर एक ताकत अभी हिन्दुस्तान में और बाकी है जिससे अभी खतरा पैदा हो सकता है।"

"वह कौन है ?" अब्दुल अजीज ने पूछा।

"वह है मेदनी राय।"

"उसकी क्या मजाल जो हमारा मुकाबला कर सके ?"

"दुश्मन को कभी कमजोर न समझना चाहिये। बुझता हुआ चिराग भी एक बार बुझने के पहले भड़क उठता है। मुझे मालूम हुआ है कि राणा मैदाने-जंग छोड़कर भाग गया है। वह जरूर मेदनीराय की मदद से बदला लेने की कोशिश करेगा।"

"तब तो इसी वक्त उस पर भी हमला कर देना चाहिये।" अब्दुल अजीज ने कहा।

"मेरा भी यही ख्याल है। जितना वक्त गुजरेगा उतना ही दुश्मन ताकतवर भी होता जायगा। हमें राजपूतों को फौजी ताकत बढ़ाने का मौका नहीं देना चाहिये।"

"तो फिर कल सुबह हम चन्देरी के लिये कूँच करेंगे।"

सभा भंग हो गई।

६८

मेवाड़ की सीमा पीछे छूट रही थी और राणा की पालकी आगे बढ़ रही थी। राणा जी को समझा बुझा कर रणथम्भौर के किले में ले जाया गया। राणा जी वहीं रहने लगे। ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे थे त्यों-त्यों उनकी उदासीनता बढ़ती जा रही थी। वह दिन-रात गुम-सुम बने रहते। कभी किले के बाहर न निकलते।

एक दिन किले के द्वार पर रोडरमल चाच्चल्या आया और द्वार-पाल से बोला—"मैं राणा जी से मिलना चाहता हूँ।"

"वह किसी से नहीं मिलते।" द्वारपाल ने उत्तर दिया।

"लेकिन मेरा उनसे मिलना अत्यन्त आवश्यक है।"

"उनकी आज्ञा के विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता।"

"मेरे आगमन का समाचार तो उन तक पहुँचा सकते हो?"

कुछ क्षणों तक विचार करने के उपरान्त द्वारपाल ने कहा—"अच्छा!" यह कह कर अन्दर चला गया।

कुछ देर के पश्चात् वह बाहर आया और रोडरमल से कहा—"वह आपसे नहीं मिलना चाहते।"

रोडरमल उत्तर सुनकर कुछ देर तक खड़ा सोचता रहा, तत्पश्चात् उसने एक पत्र लिखा और द्वारपाल को पकड़ाते हुये कहा—"राणा जी को इसे दे दो जाकर।"

पत्र राणा जी के पास पहुँचा। राणा जी ने उसे पढ़ा और कुछ देर विचार करने के उपरान्त मिलने की स्वीकृति दे दी।

रोडरमल चाम्बल्या ने अन्दर प्रवेश किया और राणा जी के समक्ष आकर राजकीय अभिवादन किया।

राजकीय अभिवादन को देखकर राणा जी ने कहा–' अब मैं इस अभिवादन के योग्य नहीं रह गया।"

"यह कथन आपके मुँह से शोभा नहीं देता। सोना तपाए जाने पर ही कुन्दन बनता है। मनुष्य के धैर्य और वीरता की परीक्षा संकट आने पर ही होती है। सम्भवतः आप अपने प्राचीन गौरव को भुला बैठे हैं। उसे स्मरण करिये और अपना कर्तव्य पथ निर्धारित करिये।" कहकर ओजपूर्ण स्वर में वह गाने लगा—

सतबार जरासन्ध आगल श्री रँग,
बिमुहा टीकम दीघ बग।
मेलि घात मारे मधु सूदन,
असुर घात नाँखे अलग ॥१॥
पारथ हेकरसाँ हथणापुर,
हटियो त्रिया पंडतां हाथ।
देख जमा दूर जोधणा की घो,
पछै तका की घो सज पाथ ॥२
इकराँ रामतणीं तिय रावण,
मन्द होगो दह कमल।
टीकम सोहिज पथर तारिया,
जग नायक ऊपराँ जल ॥ ३ ॥
एक राड़ भव माँह आवत्थी,
अमरस आणें कम उर।
मालतणा केवाँ ऋण माँगा,
साँगा तू सालै असुर ॥ ४ ॥

राणा जी नेत्र बन्द किये हुए गीत सुन रहे थे। ज्यों-ज्यों गीत की पंक्ति आगे बढ़ रही थी त्यों-त्यों कृष्ण और जरासंध का युद्ध, द्रोपदी पर अत्याचार करने वाले दुर्योधन की दशा, सीता हरण और अकेले समुद्र पर पत्थर तैरा कर रावण का वध करना तथा सीता को पुन: प्राप्त करना आदि चित्र से राणा के बन्द नेत्रों के समक्ष एक एक करके आ रहे थे। अन्तिम पंक्ति के समाप्त होते ही राणा के नेत्र खुल गये और रोडरमल को गले से लगा लिया और गद्‌गद्‌ वाणी में बोले —"जिस कार्य को इतने दिनों तक कोई न कर सका उसे तुम्हारे इस गीत ने कर दिया। अब मैं शक्ति एकत्र करूँगा और शत्रु से अवश्य बदला लूँगा।"

रोडरमल के हर्ष का पारावार न रहा। प्रसन्नता जलकणों के रूप में नेत्रों से झलकने लगी। उसने गद्‌गद्‌ कण्ठ से कहा—"धन्य हैं राणा जी आप! आपको शत्रुओं पर अवश्य विजय प्राप्त होगी। हमारी मंगल कामनायें आपके साथ हैं। अब मुझे आज्ञा दीजिये।"

"इतनी शीघ्रता क्यों?"

"मुझे अपने उद्देश्य में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। अब और अधिक रुक कर आपका समय नष्ट नहीं करना चाहता।"

"दुःख है कि आज मैं चित्तौड़ की गद्दी पर नहीं हूँ, फिर भी मैं तुम्हें तुम्हारे इस कार्य के लिए धकाण गाँव देता हूँ।"

रोडरमल ने सिर झुका कर पुरस्कार मे प्राप्त गाँव को स्वीकार किया और विजयोल्लास से सिर ऊँचा किये हुए चल दिया।

कुछ समयोपरान्त राणा जी बाहर निकले और सैनिकों को एकत्र करके सैनिक शक्ति बढ़ाने की घोषणा कर दी।

सैनिकों की भर्ती प्रारम्भ हो गई। दूर-दूर से आ-आकर सनिक भर्ती होने लगे। इसी बीच मे चन्देरी पर बाबर के आक्रमण का

समाचार प्राप्त हुआ। जो भी अवघड़ सेना का निर्माण हो सका था राणा जी उसी को लेकर चल पड़े। इरिच तक पहुँचते-पहुँचते संध्या हो गई। राणा की आज्ञानुसार यहीं डेरा डाल दिला गया। डेरों में सैनिक विश्राम करने लगे। लेटे हुए एक सैनिक ने कहा—"राणा जी का स्वभाव जिद्दी हो गया है।"

"इसीलिये तो किसी की बात तक ध्यान से नहीं सुनते। कल ही की बात है। कूच करने के पूर्व मैं राणा जी से मिलने गया तो बात भी पूरी न कह पाया था कि उन्होंने ऐसा डाँटा कि मुझे सिर पर पैर रख कर भागना पड़ा।"

"समझ में नहीं आता कि राणा जी उस बात पर ध्यान क्यों नहीं देते कि सैनिकों की इच्छा के विरुद्ध युद्ध करने पर असफलता ही हाँथ लगेगी।"

"उनको तो इस ससय बदला लेने की धुन सवार है।"

"हम लोगों के सिर पर मौत मड़रा रही है।"

"उससे छुटकारा पाने का कोई मार्ग नहीं है?"

कुछ देर तक सोच कर सैनिक ने कहा—"एक तरकीब है।"

"क्या?"

"अगर राणा जी के रसोइये को मिला लिया जाय तो काम बन सकता है।"

"यह कौन सी बड़ी बात है। वह तो मेरा बचपन का मित्र है। मुझे विश्वास है कि वह मेरी किसी भी बात को मानने से इन्कार नहीं कर सकता।"

"तो फिर अभी जाओ और यह पुड़िया हाथ में लेते जाओ।" इधर उधर देखने के उपरान्त उसने कान में कुछ कहा। दूसरे सैनिक ने कहा—"समझ गया। अभी लौट कर आता हूँ।" कह कर वह चला गया।

रसोइये के हाथ में पुड़िया देते हुए उसने कहा—"इसे राणा जी के दूध में मिला दो।"

"यह क्या है ?"

"यह एक दवा है।"

"और तो कुछ नहीं है ?"

"और कुछ भला कैसे हो सकता है। इतने दिनों से वैद्य जी चिकित्सा करते आ रहे हैं। वह भला कोई ऐसी-वैसी औषधि देंगे ?"

"यों ही पूछ लिया। मैं कुछ कह थोड़े हो रहा हूँ।"

"खैर, पूछना तो अच्छा होता है।"

रसोइये ने दूध में वह पुड़िया घोल दी और राणा जी के डेरे की ओर चल दिया। राणा जी ने दुग्ध पान किया और विश्राम के लिए लेट गये।

कुछ ही रात व्यतीत हुई होगी कि राणा जी को बेचैनी अनुभव होने लगी। इस समय वह डेरे में अकेले थे। उन्होंने द्वार पर खड़े सैनिक को पुकारा। सैनिक ने अन्दर प्रवेश किया। राणा जी ने उसे देखते ही कहा—"जरा, रामसिंह को तो बुला लाओ।"

द्वारपाल रामसिंह को बुला लाया। राणा जी ने रामसिंह को समक्ष देखकर कहा—"मेरी तबियत कुछ घबड़ा रही है।"

"क्या हो गया राणा जी ?" रामसिंह ने दीपक के प्रकाश में राणा जी की ओर देखते हुए कहा।

"यों ही कुछ बेचैनी अनुभव हो रही है। बोलने में भी कष्ट हो रहा है।"

"आपका तो शरीर नीला पड़ गया है।"

"चलो अच्छा हुआ !" राणा जी ने मुस्कान चेहरे पर लाते हुए कहा।

"क्या अच्छा हुआ राणा जी ?"

"शत्रु के हाँथ नहीं मारा गया। मित्र के हाँथ ही मृत्यु बदी थी।"

रामसिंह बाहर निकले और अन्य सहयोगियों को तत्क्षण एकत्र किया। राणा जी को डोली में लिटा कर वापस किले की ओर ले चले। राणा जी की स्थिति बिगड़ती जा रही थी। साथ में चलने वाले वैद्य जी उपचार भी करते जा रहे थे परन्तु समस्त औषधियां प्रभावहीन होती जा रही थीं। सारा शरीर ऐंठा जा रहा था। गहरी नीलिमा में तन डूबा हुआ था। बड़ी कठिनाई से रुक-रुक कर साँस ले पा रहे थे। रात्रि बीत चली थी। तारागण एक-एक करके विलीन हो रहे थे। कालपी आ गया था। वैद्य जी के कथनानुसार राणा जी की पालकी रोक दी गई थी। उन्हें बाहर निकाला गया। राणा जी ने आकाश की ओर देखा। उनके तन का रंग और आकाश का रंग एक था। उनका हाँथ उठकर मस्तक तक गया और आकाश के अन्तिम तारे के साथ पृथ्वी का यह तारा भी सदा के लिये डूब गया।